

2





मीक्षा—स्वामी दयानन्दजी सन्ध्या के समय में आचमन करना बतलाते हैं और साथ ही साथ उस आचमन का फल भी बतलाते हैं कि इस से कंठ का कफ दूर होता है इसके ऊपर मिश्रजी कुछ आपत्ति करते हैं वह यह कि (१) क्या सन्ध्या में सभी लोग कफ पित्त ग्रसित होते हैं (२) जल से कफ की शान्ति नहीं होती किन्तु वृद्धि होती है इसके ऊपर पं० तुलसीरामजी विमर्श हैं "कण्ठस्थ कफ की निवृत्ति कण्ठ में थोड़ा जल पहुँचने से अवश्य होती है" जिस प्रकार से स्वामी दयानन्दजी आचमन से कण्ठस्थ कफ की निवृत्ति बतलाते हैं उसी प्रकार एक मनुष्य हम से कहता था कि कफ की निवृत्ति नहीं होती किन्तु दो लड़का होते हैं जिस प्रकार से पं० तुलसीराम स्वामी दयानन्द के अर्थ की पुष्टि करते हैं इसी प्रकार उस के पक्षपाती भी यही कहते थे कि जरूर लड़के होते हैं अब मैं विप्रियन्मात्र भी संदेह नहीं। हम ने कहा कुछ प्रमाण दो आचमन से सन्तानोत्पत्ति बतलाने वाले ने उत्तर दिया कि स्वामी दयानन्दजी ने क्या प्रमाण दिया जो मुझ से मांगते हो पं० तुलसीराम भी इतने फड़फड़ाये कि कहीं पर कुछ जरा सा भी ऐसा लेख मिल जावे कि जो जल से कफ की निवृत्ति बतलाता हो हजार बार पन्ने उथलते पर भी जब न मिला तब हार कर यही लिख दिया कि उस समय में थोड़ा सा कफ रहता है इस कारण थोड़े से जल से उस कफकी निवृत्ति हो जाता है हमने एक मित्र एक दिन इसपर त्रिराशिक(अर्वा) बनालाये और हम से बोले कि पं० तुलसीराम के हिस्साव लगाया है जरा सुन लीजिये हमने कहा क्या है वह सुनाने लगे कि पं० तुलसीराम के लेखानुसार थोड़े जल से थोड़े कफ की निवृत्ति और बहुत जल से बहुत कफ की निवृत्ति इस हिसाब से यदि ऐसे मनुष्य को कि जिस को कफ के कण्ठ से नाँद न आती हो यदि एक हण्डा, या मसक, जल पिला दिया जावे तो वह कफ कण्ठ से छूट कर इतने घर्घटे लगाता है कि पड़ोसियों को भी नहीं सोने देता। एक बच्चा हमारे पास आकर रोने लगा हमने पूछा कि यह क्यों उसने उत्तर दिया कि पहले चैत के महीने में कुछ मनुष्य रोग से पीड़ित हुआ करते थे और उनसे कुछ हमको मिल जाया करता था किन्तु पारसाल से गाँव में सत्यार्थप्रकाश आगया है उसको पढ़कर कफ पीड़ित मनुष्य आचमन कर अच्छे हो जाते हैं अब लड़का कोई पूछता भी नहीं यदि पहिले से हम को सत्यार्थप्रकाश के इस लेखका पता लग जाता तो फिर न तो हम बनवारीलाल पाठ-

शाला में भरती होते और न वैद्यकशास्त्र पर परिचित रहने। इतने में एक आर्यसमाजी आगया उसने कहा कि वैद्यजी अभी आप कफ को क्या लिये फिरते हो हमारे यहां सब रोगों की दवाइयां तैयार हो गईं मुनिये हम आप को दो चार सुनाते हैं यदि पैर के अंगूठे पर सन्ध्या के समय पानी छिड़का जावे तो चाहे कैसा भी अन्धा हो फौरन आंख खुल जाती है अगर पैर की छोटी अंगुली पर सन्ध्या में पानी छिड़का जावे तब तो एक आंख वाला दोनों नेत्रों से देखने लगता है यदि सन्ध्या का पानी एक बूंद कान में डाल दिया जावे तो फिर नय पुनः समी प्रकार के आतशक और सुजाक भाग जाते हैं यदि एक बिन्दु जल कमर पर डाल दिया जावे तो फिर डाक्टर वर्मन की धातु पुष्ट की गोलियों की जरूरत नहीं। यह सुन कर हमने पूछा कि इस का कहीं प्रमाण है तब उस ने उत्तर दिया कि प्रमाण का पचड़ा तो केवल सनातन धर्मी लगाते हैं हमारे मज़हब में तो यह बात है कि जो सम्भव असम्भव लिख दिया वह पत्थर की लकीर है यदि इतने पर भी आप कमर पर कोई चींचपड़ करे तो फिर उसको मुंहतोड़ उत्तर देने के लिये मायूजीराज पं० तुलसीरामजी तैयार रहते हैं।

हमको एक सिविल सर्जन मिले वह कुछ और ही कहते थे वह हमसे पूछते थे कि आप हमको ऐसे मनुष्यों के नाम लिखवाओ कि जिन्होंने कफ रोग पर केवल जल (औषधि) दिया हो हम ऐसे मनुष्यों को फिर तैयार करके जिला मजिस्ट्रेट को भेजेंगे ताकि जिलाधीश उनके ऊपर भयदमा कायम करके और पुलिस द्वारा गिरफ्तार करवा अदालत भेजे अदालत में हम उनको सजा करवावेंगे कफ में जल देना अच्छा करना नहीं बल्कि इरादतन मार डालना है।

पं० तुलसीरामजी यह भी लिखते कि पं० बालाप्रसादजी ने जो यह लिखा कि जल कफ रोग को बढ़ाता है वह बात सच नहीं है इलाज नहीं किन्तु सामान्य प्रकार के कंठ में कफ रहता है वह कफ रोग का कारण है और हम यह अवश्य कहेंगे कि कंठ में कफ का रुकना या उत्पन्न होना एक रोग है और उस को जल का दूर कर देना जल को कफ रोग का औषधि बनाना गलत है फिर पं० तुलसीराम का लिखना न रोग है न इलाज है यह कितना विचार करना है।

मिश्रजी ने यह लिखा कि जल तो कफ रोग का उत्पन्न करता है इसके ऊपर पं० तुलसीरामजी तर और मिलाकर लिखते हैं कि यदि जल तर होने से कफ रोग को उत्पन्न करता है यह नियम हो तो जितने वैद्यक के प्रयोगों में मिश्री गुड़ शहद

गुड़ची आदि तर वस्तु खांसी के रोग में प्रयुक्त की हैं सब व्यर्थ होजावें इसके ऊपर हमारा कथन यह है कि प्रथम तो मिश्रजी ने तर शब्द का प्रयोगही नहीं किया जब ऐसा नहीं किया तब फिर उन के नाम से तर शब्द मिला लेना यह एक अयोग्य बात है दूसरे क्या पं० तुलसीरामजी संसार में जितने तर पदार्थ हैं उन सब का एकही गुण है या भिन्न भिन्न गुणों का एक गुण माना जावे तो हम पं० तुलसीरामजी से पूछते हैं कि दूध घन बना मठा ये कष्टक हैं या तर ? वैद्यक के अनुसार यह तर हैं और तर होकर भी कफ को बढ़ाते हैं जब तर पदार्थों में भी भेद है और तर भी कफ को बढ़ाते हैं फिर सभी तर कफ को दूर करते हैं इस लेख को कौन मानसक्ता है।

इस के आगे पं० तुलसीरामजी लिखते हैं कि आपने जो मनु के श्लोक लिख दिये उस से स्वामीजी के लिखे फल का तो निषेध नहीं आया किन्तु आचमन के प्रकार का वर्णन है इसके ऊपर पं० तुलसीरामजी को ६२ वां श्लोक एकबार फिर पढ़ना चाहिए इस श्लोक में आचमन का फल महर्षि मनु ने पवित्र होना लिखा है। मनु तो आचमनका फल पवित्र होना मातते हैं और स्वामी दयानन्द कफ दूर होना। अब मनु के इस श्लोक से स्वामी दयानन्द के फल का निषेध हुआ या नहीं जब कि मनु कहते हैं कि आचमन का फल पवित्र होना है फिर ऐसी शक्ति किस वैदिक मनुष्य में है कि जो मनु के वर्ण पर पाना कर कर प्रमाणशून्य स्वामी दयानन्द के कहे फल को मान ले आप मान या न मान किन्तु मनु के बतलाये आचमन के फल द्वारा स्वामी दयानन्द के बतलाये हुए फल का निषेध तो अवश्य होता है।

पं० तुलसीराम इन श्लोकों पर यह लिखते हैं कि “ब्राह्मणादि वर्णों की उत्तरोत्तर न्यून जल से शुद्धि का प्रयोजन यह है कि अपने अपने वर्णानुसार उनको उतनी उतनी शुद्धि भी न्यूनाधिक अपेक्षित है” यह तो हम भी मानते हैं और मनु का अभिप्राय भी यही है किन्तु इस लिखने से तुलसीराम के कौन से कार्य की सिद्धि हो गई क्या इस लिखने से मिश्रजी का लेख अशुद्ध हो गया या कि स्वामी दयानन्द का बतलाया कफ निवृत्ति फल सत्य हो गया।

किन्तु यह लेख कुछ न कुछ आर्यसमाज में ही भेद करनेवाला हो गया। सिकंदराबाद के गुरुकुल के उत्पन्न पर जनमेजय का व्याख्यान यह बतला रहा है कि ईश्वर के सन्मुख ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र सब एक से हैं उस व्याख्यान में एकता की पुष्टि में यह भी प्रमाण दिया है कि सूर्य चन्द्र पृथिवी आदि सब के

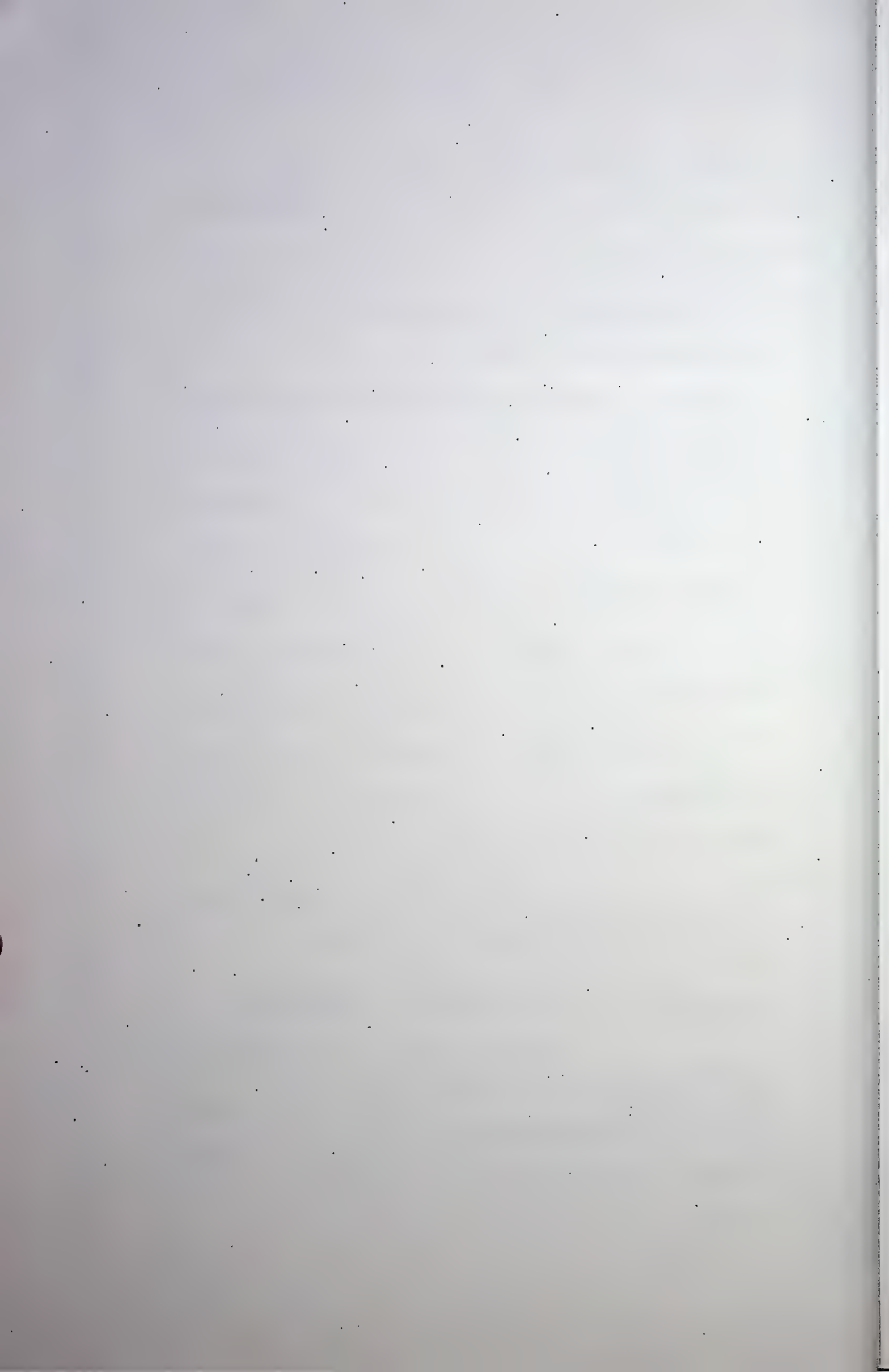
लिये एकसी है। कहना यह है कि वर्तमान आर्यसमाजियों की दृष्टि में ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र सब एक हक रखते हैं उनकी दृष्टि में मनु के यह श्लोक अमान्य है फिर आप इनको मानकर आचमन में मट्ट डालने दूध ब्राह्मणादि का सत्व पृथक् पृथक् स्वीकार करते हैं इस के ऊपर हम को कहना पड़ता है कि आप समाज में पार्टियां बनाना चाहते हैं और नहीं तो यह दिखलाना चाहते हैं कि समाजी लोग डेढ़ डेढ़ चावल की खिचड़ी अलग ही पकाते हैं।

इस के आगे पं० तुलसीराम लिखते हैं कि "स्वामीजी" ने जितने कर्म लिखे उनको तो आप भी मानते हैं परन्तु उनका पुष्टि क लिये कुछ युक्ति भी लिख दी तो क्या होगया अर्थात् पंडितजी का कहना यह है कि आचमन तो तुम भी करते हो और उस आचमन की पुष्टि में कफ निर्गन्धि यज्ञ बनला दी तो पं० ज्वालाप्रसाद चिढ़े क्यों। इस के ऊपर हम यह कहते हैं कि किन्हीं मनुष्य ने लिखा कि यज्ञोपवीत पहिनना वैदिक और शुभकारक है तथा उस में लाभ भी है यदि किसी वक्त दीपक में बत्ती न रहे तो जनेऊ को तोड़कर बत्ती बनाकर दीपक में डाल सकता है। अब यहां पर हम पं० तुलसीराम से पूछते हैं कि इस पुरुष ने यज्ञोपवीत के महत्व को बढ़ाया या घटाया? यदि पं० तुलसीराम कहें कि बढ़ाया है तब ऐसी दशामें हम पं० तुलसीराम से पूछते हैं कि क्या वास्तव में यज्ञोपवीत इसी लिये बना है कि उसको तोड़कर दीपक की बत्ती बना ली जावे? यदि पं० तुलसीराम कहें कि इसने तो यज्ञोपवीत की बत्ती बनाना यह बात नहीं है कि महत्व को ही नष्ट कर दिया तो फिर हम क्यों न कहें कि स्वामीजी ने यज्ञोपवीत की गति में मनु के लेख का स्वाहा होगया।

इस के आगे पं० तुलसीराम लिखते हैं कि स्वामीजी के लेख को आप न मानिये परन्तु वेद वचन को कैसे न मानियेगा देविये यजुर्वेद। ३६। १२

शन्नोदेवीरभिष्टय आपोभवन्तु पीतये । शंयोरभिसूवन्तु नः

इस का आध्यात्मिक अर्थ तो पंचमहायज्ञविधि के लिखे अनुसार है परन्तु आधिदैविक और आधिभौतिक अर्थ पर दृष्टिपात कीजिये—देव्यः आपः नः पीतये शंभवन्तु । नोऽस्मान् अभिष्टये शंयोरभिसूवन्तु । अर्थात् दिव्य जल हमारे पीने के लिये सुखदायक हो और वह हम को नानाप्रकारित सुख को वर्षावे । तात्पर्य यह है



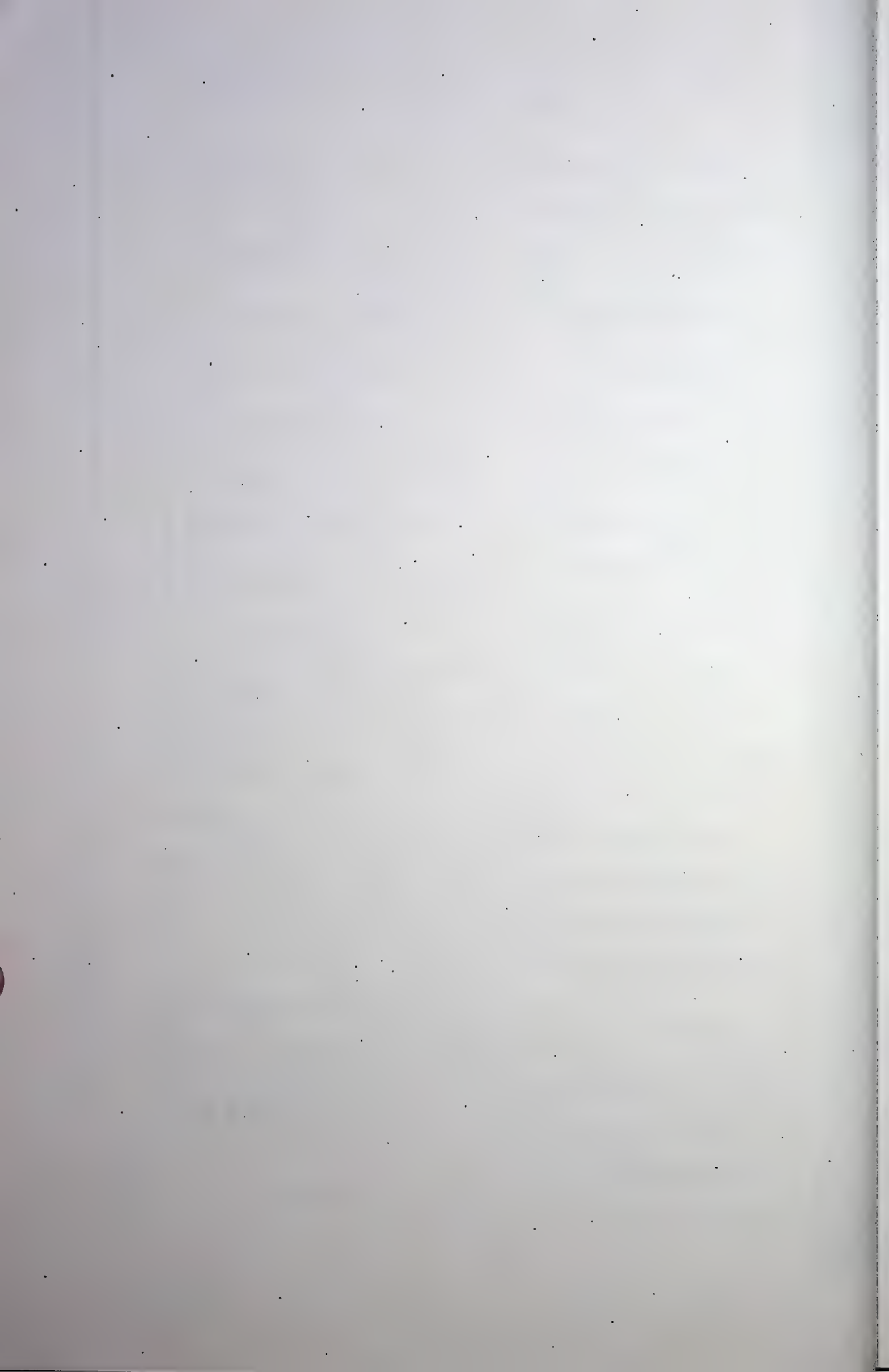
कि उत्तम दिव्य जल से (जैसा कि मनु अ० २ श्लोक ६१ में स्वच्छ जल से आचमन लिखा है) आचमनादि करने से सुख की प्राप्ति होती है अर्थात् शारीरिक सुख तृप्ति शान्ति आदि का लब्ध जल को प्रयोग में लाना चाहिये । यही कारण इस मन्त्र के आचमन करने में नियन्त्राग होने का है ।

पं० तुलसीरामजी का मत है कि अर्थ से त्रयर्दस्ती यह सिद्ध करना चाहते हैं कि आचमन से कफ दूर होता है । एक दुसरा आर्यसमाजी कहता था कि जब शरीर में फोड़ा होजाय तब इस मन्त्र को पढ़ना चाहिये फोड़ा तुरन्त अच्छा होजाता है और स्वामी दयानन्दजी "अभिष्टय" का अर्थ यह समझते हैं कि इष्ट सुख की सिद्धि के लिये जल हमको सुखकारक हो जियेता था अर्थ हुआ कि जो सुख हम चाहें वही सुख हम को जल देवे स्वामीजी जलों को समस्त सुखों का भण्डार कहते हैं किसी भांति का भी तुम सुख चाहो वह सब आप को जल ही दे देगा प्रत्यक्ष में जल से फोड़ा अच्छा नहीं होता, बुझार भी नहीं जाता, किसी की आंख का दर्द भी दूर नहीं होता फिर जब कोई भी जल से स्नान करता तब आचमन से केवल कफ कैसे दूर हो जावेगा यह सब टाळने का उपाय है जल पूजक और सिद्ध होती हैं । यदि आप कभी जल पूजक सिद्ध नहीं होजावेगा इस के ऊपर हमारा उत्तर यह है कि हम तो स्वामी दयानन्दकृत इस अर्थ को या तुलसीराम के अर्थ को मानते ही नहीं किन्तु हम मन्त्र के अर्थ में जलों के देवता गायत्री से प्रार्थना करते हैं कि वह हम को सुखदायक हो परन्तु दशा में हम जड़-पूजक नहीं ठहर सकते किन्तु जो समाज देवताओं के स्नान के भय से केवल जलों से सुख की प्रार्थना करती है वह जड़-पूजक क्यों नहीं ? इस के ऊपर समाज क्या उत्तर देती है ? स्वामीजी मार्जन से आलस्य की निवृत्ति लिखते हैं इसके ऊपर पं० ज्वालाप्रसाद लिखते हैं कि अभी तो वह स्नान करके आया है स्नान से भी जिसका आलस्य न गया तो फिर जल से जल के भय से कफ चला जावेगा और हमने मान भी लिया कि स्नान करने में भी जिसका कफ न दूर हुआ हो तो फिर उसको हुलास क्यों न सुंघा दी जावे या चाह व साफ़ स्नान किया ही जावे । सब से उत्तम उपाय तो यह है कि एमोनिया की गांजा गंध से कि जिग से सूच्छा तक भी दूर हो जावे । इस के उत्तर में पं० तुलसीरामजी कल दं दं से लिखते हैं कि महाशय प्रथम तो यह बात है कि जल के छीटा पड़ने से जिगा नित्यता होती है वैसी स्नान से नहीं दूसरी बात यह है कि मला प्रातः गंध्या में स्नान करके बैठते हैं परन्तु सायं

संख्या में स्नान का नियम नहीं तीसरी बात यह है कि जाड़े में भी एक बार नित्य स्नान करना उत्तम कर्म है और गर्मी में दो बार या जितने बार से देह शुद्ध रहे। इस के ऊपर पहिली श्रुति में हम कह सकते हैं कि पं० तुलसीराम का लेख प्रत्यक्ष के विरुद्ध है। जिस मनुष्य का आलस्य स्नान से दूर न हुआ, लोठों और कलशों भर धम धम पानी के गिरने से भी दूर न हुआ उस कुम्भकरण का आलस्य ढाई रत्ती जल के छीटेबाजी से दूर होजावेगा ? भला क्या कोई मनुष्य इस बात को मान सकता है कि स्नान करने पर भी आलस्य रह जाय। हम इश्वर से प्रार्थना करते हैं कि कृपा कर ऐसे आलसियों का जन्म या इस दुनिया में जन्म न ल्या जावे जो स्नान कीजिये। सब से अच्छा तो यह है कि जो मनुष्य स्नान से दूर न होजावे जो स्नान के समय में आंखों पर इतने छोटें मांस के टुकड़े आलस्य दूर न होजावे इन कुम्भकरण आर्यसमाजियों को दम न लेने दें जिससे कभी आलस्य उतर जावे अभि- प्राय यह है कि कितना भी आलसी क्यों न हो किन्तु स्नान से आलस्य अवश्य उतर जाता है और सायंकाल की संख्या में यदि कोई स्नान न करे तो कुछ पाप है ? जिस को आलस्य आ रहा हो उस को तो स्नान आवश्यकताय है फिर सूंघनी तथा चाह व काफी का पीना अथवा पेमोनिया की शीशा का सूंघना कि जिस से आलस्य का भूत पास भी न आसके यह काम क्यों न कर ले विद्या वारिधि के इस लेख पर पं० तुलसीराम उत्तर क्यों नहीं देते ? ... कि कुछ बन नहीं पड़ता। जिन को आलस्य न हो वह मार्जन क्या ... मार्जन की सफाई होगई।

आगे पं० तुलसीराम लिखते हैं कि जो स्नान की कर्तव्यता की अपेक्षा संख्या की कर्तव्यता उत्तम मानते हैं इस कारण से यह लिख दिया कि जो संख्या न करे वह द्विजाति वर्ण से बाहर निकाल दिया जावे जिन संख्या न होने पर द्विजाति का बाहर निकालना लिखा है वगैरा स्नान न करने पर नहीं लिखा।

पं० तुलसीराम क्या यह सिद्ध करना चाहते हैं कि स्नान तो छः महीने न करे और संख्या रोज करे ? देवताजी ! स्नान होनेके पश्चात् ही संख्या होती है। संख्या के प्रायश्चित्त में स्नान का भी प्रायश्चित्त हो गया। शास्त्रकारों को यह खूब मालूम था कि बिना स्नान के संख्या होना ही नहीं अनर्थक वे यह समझते थे कि इस दण्ड में स्नान का दण्ड भी आ गया।



पं० ज्वालाप्रसादजी ने एक कटाक्ष यह किया कि आप के चेले तो कोट पतलून पहिन कर सन्यास ले गये। ऊपर पं० तुलसीराम लिखते हैं कि यदि स्वामीजी पुरुषार्थ न करने तो गिरजा छुड़ा कर सन्यास कौन सिखलाता। यह पं० तुलसीराम का भ्रम है। स्वामीजी ने कोट पतलून छोड़ना नहीं सिखलाया किन्तु पहिनना सिखलाया है और उदाहरण के लिए स्वामीजी सन्यासी हो कर भी आप ही कोट पतलून पहिनने लग गये थे। अभिप्राय यह है कि जिन्होंने देश के भेस से ही छुट्टी पा ली वे क्या खाक सन्यास करेंगे ! आजकल प्रतिनिधि के बड़े बड़े पद के अधिकारी कोट पतलून वाले कितने सन्यास करते हैं यह पं० तुलसीराम को लिस्ट बनाने पर शक होगा। कोट पतलून वाले वैदिक धर्म की रक्षा करते हैं या भक्षण करते हैं इसके लिये आप को सम्बन्ध १६७१ का अपना वेदप्रकाश देखना चाहिए कि जिसमें आपके और पं० तुलसीराम के लेख छपे हैं। पं० तुलसीराम को याद रखना चाहिये कि कोट पतलून वाले त्रिकाल में भी वैदिक धर्म की रक्षा नहीं कर सकते इसके लिये हम नमस्ते आभ्या तथा पं० अखिलानन्द आदि आर्यसमाजी पंडितों को या उनके लेखों को या आप के लेख को प्रमाण में दे सकते हैं।

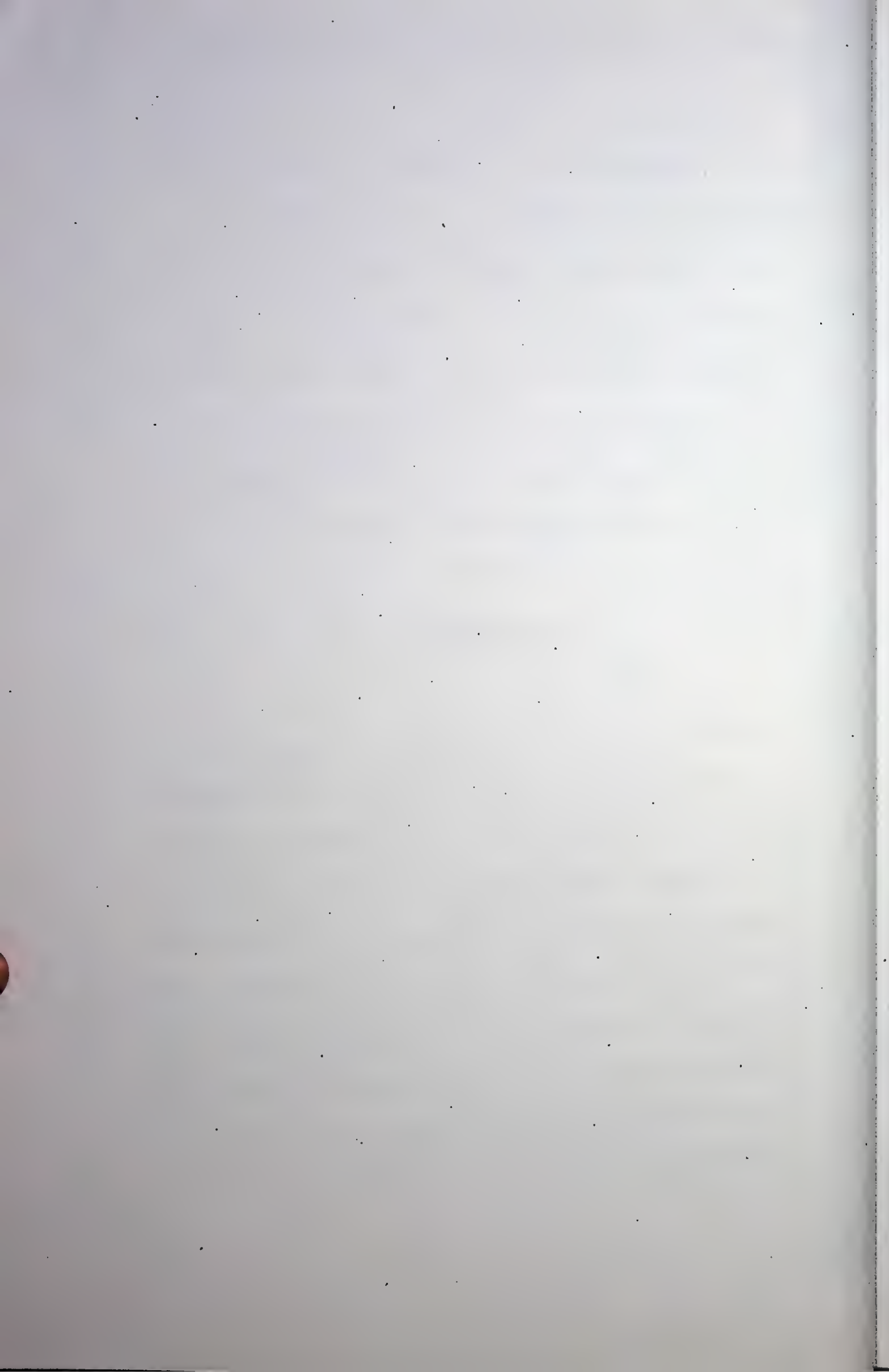
स्वामी दयानन्दजी ने सन्यास में निराकार ईश्वर की मानसिक परिक्रमा लिखी है इसके ऊपर पं० ज्वालाप्रसाद लिखते हैं कि स्वामीजी और स्वामीजी के लिखे सत्यार्थप्रकाश का ईश्वर तो निराकार है फिर निराकार की परिक्रमा कैसी ? पं० तुलसीराम इसका कुछ उत्तर तो दे नहीं सकते किन्तु परिक्रमा का अर्थ बदलते हुए लिखते हैं कि परिक्रमा का वह अर्थ नहीं जो आप ठाकुरजी की परिक्रमा समझते हैं कि बीच में ठाकुरजी को करके उनके चारों ओर घूमना। किन्तु परि=सब ओर, क्रम=घूमना अर्थात् सब ओर जावे और जहां जावे वहां परमात्मा को ही पावे, पूर्व पश्चिम दक्षिण उत्तर सब ओर जावे परमात्मा को ही पावे। यह परिक्रमा है क्या सच ही इसी का नाम परिक्रमा है। सत्यना करने कि हम मेरठ गये और वहां हमें पं० तुलसीराम मिले फिर हम प्रसन्न हुए वहां पर भी हमको पं० तुलसीराम मिल गये बस पं० तुलसीराम के मित्रान्वानुकूल हमने तुलसीराम की परिक्रमा की और पं० तुलसीराम ने हमारी। परिक्रमा का यह अर्थ त्रिकाल में भी नहीं हो सकता परिक्रमा का अर्थ खास चारोंतरफ घूमना है उस निराकार सर्वव्यापक के चारों तरफ घूमना यह त्रिकाल में भी नहीं हो सकता और जिस के चारों तरफ घूमा जावे वह परिमित शरीरी होगा और परिक्रमा करना यह भी मूर्तिपूजन है।

स्वामी दयानन्दजी ने जल के समीप जाकर सन्ध्या करनी लिखी इसके ऊपर मिश्र ज्वालाप्रसादजी लिखते हैं परन्तु जिसे कफ ने घेरा हो वह तो आपके मतानुसार कोठी बंगले या ऊसर में बैठकर जप करे इसके ऊपर पं० तुलसीराम कहते हैं कि आप कोठी बंगलों पर क्यों चिढ़े हैं यदि कोठी बंगलों में सुन्दर फव्वारे लगे हों, एकान्त हो, पुष्पादि के गमलों से सुसज्जित हो तो क्या हानि है। इस प्रसंग में शास्त्रीय प्रमाणों से काम न लेकर आपन टटालवाजी बहुत की है, अतः हमको अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं। पं० ज्वालाप्रसादजी न तो कोठी बंगलों से चिढ़ते हैं और न मसखरी करते हैं किन्तु यह पृच्छते हैं कि जिसके गले को कफ ने घेरा हो वह जलके समीपही जाकर सन्ध्या करे या कोठी बंगले में करले इसका उत्तर न तो आप देते हैं और न दे सकते हैं। पं० ज्वालाप्रसाद कोठी बंगलों से चिढ़ते हैं, मसखरी करते हैं, इत्यादि शब्द लिख कर टाटमटाला करते हैं आप जितनी टालम टोला करेंगे स्वामी दयानन्द के लेख की उतनी ही पाल प्रकट होंगी।

सन्ध्याकाल ।

सत्यार्थप्रकाश—

सन्ध्या और अग्निहोत्र सायं प्रातः दो ही काल में करे दो ही रात दिन की संधिवेला हैं अन्य नहीं, न्यून से न्यून एक घंटा ध्यान अवश्य करे जैसे समाधिस्थ होकर योगी लोग परमात्मा का ध्यान करते हैं वैसे ही सन्ध्योपासन भी किया करे। तथा सूर्योदय के पश्चात् और सूर्यास्त के पूर्व अग्निहोत्र करने का समय है उसके लिए एक किसी धातु वा मट्टी की ऊपर १२ वा १६ अंगुल चौकोन उतनी ही गहिरी और नीचे ३ वा ४ अंगुल परिमाण से वेदी इस प्रकार बनावें अर्थात् ऊपर जितनी चौड़ी हो उसकी चतुर्थांश नीचे चौड़ी रहै। उसमें चन्दन पलाश वा आम्रादि के श्रेष्ठ काष्ठों के टुकड़े उम्मी वेदि के परिमाण से बड़े छोटे करके उसमें रखे उसके मध्य में अग्नि रखें पृथः उम पर समिधा अर्थात् पूर्वोक्त इन्धन रखदे एक प्रोक्षणीपात्र ऐसा और तीमरा प्रणीतापत्र इस प्रकार का और एक इस प्रकार की आज्यस्थाली अर्थात् घृत रखने का पात्र और चमसा ऐसा



सोने चांदी वा काष्ठ का बन्दा के प्रणीता और प्रोक्षणी में जल तथा घृतपात्र में घृत रख के घृत को तपा लें प्रणीता जल रखने और प्रोक्षणी इस लिए है कि उससे हाथ धोने को जल लेना सुगम है। यद्वात् उस घी को अच्छे प्रकार देख लेवे फिर इन मन्त्रों से होम करे।

ओं भूरग्नये प्राणाय स्वाहा । भुवर्वायवे पानाय स्वाहा । स्वरादित्याय व्यानाय स्वाहा । भूर्भुवः स्वर्गनिवाद्यादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः स्वाहा ॥

इत्यादि अग्निहोत्र के प्रत्येक मन्त्र को पढ़ कर एक २ आहुति देवे और जो अधिक आहुति देना हो तो:-

विश्वानि देव सवितर्दुर्गितानपरा मय । यत्तद्रे तन्न आसुव ॥ यजु० अ० ३० । ३ ।

इस मन्त्र और पूर्वोक्त गायत्री पदों में आहुति देवे “ओं” “भूः” और “प्राणः” आदि ये सब नाम परमेश्वर के हैं उनके अर्थ कह चुके हैं।

तिमिरभास्कर—

यह तौ स्वामीजी ने स्मृति कही दोकाल से अधिक ईश्वरका नाम लेना क्या कोई पाप है नपस्या तौ वर्षों निरन्तर परमात्मा का ध्यान करते रहे हैं इससे दोकालमें उसका अर्चनवन्दन करे यह कहना ठीक नहीं परमेश्वरका नाम लेना सर्वथा श्रेयस्कारक है।

इससे त्रिकाल संध्या करना किसी प्रकार हानिकारक नहीं किन्तु लाभही का दायक है। हममें प्रमाण यह है कि, जहां तैत्तिरीयारण्यक में प्रभात संध्या के आचमन आये हैं वहीं मध्यान्हकी संध्या का आचमन लिखा है यथा—

ॐ आपः पुनन्तु पृथिवीं पृथिवीपृता पुनातुमाम् ।

पुनन्तु ब्राह्मणस्पतिर्ब्रह्मपृता पुनातुमाम् ॥

यदुच्छिष्टमभोज्यं च यद्वातुर्चरितंमम ।

सर्वं पुनन्तुमामापोऽमतां च प्रति ग्रह ७० स्वाहा ॥

तैत्ति० आ० अनु० २३

अर्थ—जल पृथिवी को पवित्र करें वा मेरे पार्थिव शरीर को पवित्र करें यह पृथिवी जलों से पवित्र हुई अपने गुणों से मुझे पवित्र करे यही जल ज्ञान के पति वा वेदों के धारण करने से पति आत्मा को पवित्र करें सबक पात्र करनेवाले ब्रह्म मुझको पवित्र करें जो मैंने जूठा निन्दित भोजन किया है जो मेरा बुरा कर्म है जो असत् अर्थात् जिनका धान्य ग्राह्य नहीं है उनका मैंने अन्न ग्रहण किया हो इन सब से जलके आभिषेकात् देवता मुझे पवित्र करें विशेष विवरण हमारी त्रिकाल संध्या में देखो ।

जब राजा युधिष्ठिरसे दुर्योधनजीने दुपहरको भोजन मांगा और उन्होंने स्वीकार किया तब दुर्योधनजी दुपहरकी संध्या करने गये यथा—

ते चावतीर्णा मलिले कृतवन्तो धर्मर्षणम् ॥

महाभारत वनपर्व अ० २६३ श्लो० २८ वे नदी में जाय जल में अवतीर्ण हो अधर्मर्षण जपने लगे ।

गायत्री नाम पूर्वाह्णे सावित्री मध्यमे दिने ॥

सरस्वती च सायाह्णे सैव संध्या त्रिषु स्थिता ॥ व्या०

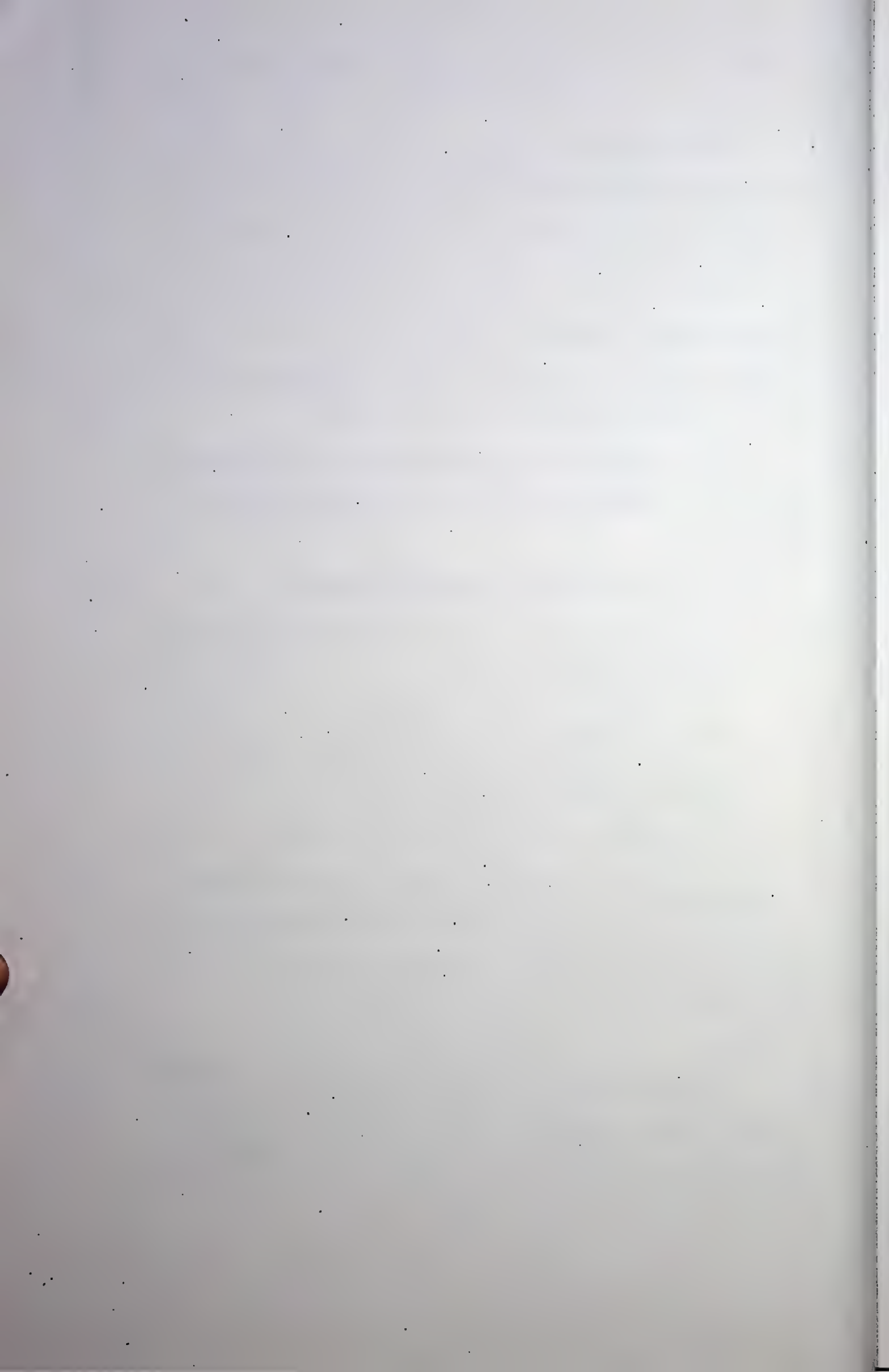
संध्यात्रयं तु कर्तव्यं द्विजेनात्मविदा मदा ॥

त्रिकालसंध्याकरणात्तत्सर्वं च विनश्यति ॥ याज्ञ०

व्यासजी कहते हैं प्रभातकी संध्या गायत्री, मध्याह्नकी सावित्री, संध्याकी सरस्वती है । याज्ञवल्क्यका वचन है कि ब्राह्मणको तीनो कालकी संध्या करनी चाहिये तथा त्रिकाल संध्या से सब पाप दूर होते हैं ।

भास्करप्रकाश—

जब आप को त्रिकाल सन्ध्या का कोई प्रमाण न मिला तो धन्य ! यही लिख दिया कि परमेश्वर का नाम श्रेयस्कर्म है । हम भी तो कहते हैं कि परमेश्वर का जितना अधिक स्मरण करो अच्छा है परन्तु प्रसंग ना यह है कि जिस सन्ध्या-



पासन के बिना किये द्विज पतित हो जाता है उसका विधान तौ स्वामीजी के लेखानुसार ही शास्त्र से केवल दो काल में सिद्ध है। यंतौ “अधिकस्याधिकं फलम्” के अनुसार त्रिकाल सन्ध्या की अपेक्षा भा ममस्त दिन उस की उपासना करो तौ क्या पाप है ? तब आप की त्रिकाल सन्ध्या जो वेद और धर्मशास्त्र की मर्यादा से भिन्न आप में प्रचरित है उस की निर्मूलता स्वामीजी ने लिखी सो ठीकही है।



मीक्षा—स्वामी दयानन्दजी ने दो काल सन्ध्या करना लिखा। मिश्र ज्वालाप्रभादजी विष्णुसहस्रनाम सिद्ध करते हुए मध्याह्न की सन्ध्या का एक प्रमाण तैत्तिरीय ब्राह्मण १३ और दूसरा प्रमाण व्यासस्मृति, और तैत्तिरीय संहिता १०.१०.१ और नौथा महाभारत वनपर्व (जिस को स्वामी दयानन्दजी ने उद्धृत किया है) प्रमाण दिये हैं। इन प्रमाणों का कुछ भी उत्तर न देकर पं० तुलसीराम जिस को मध्याह्न की सन्ध्या को वेदशास्त्र मर्यादा से भिन्न बतलाते हैं जिस में चार चार प्रमाण दिये हैं उसके लिए वेदशास्त्र मर्यादा से भिन्न लिखना यह पं० तुलसीराम ने जान बूझ कर अनुचित किया है। पाठक वर्ग इसके ऊपर विचार करें कि त्रिकाल सन्ध्या कि जिसमें सैकड़ों प्रमाण मौजूद हैं उसको तो पं० तुलसीराम वेदशास्त्र मर्यादा से भिन्न कहते हैं और जिस स्वामी दयानन्द के लेख में वेद शास्त्र पुराण इतिहास आदि कुछ भी प्रमाण नहीं उसको वेदशास्त्र मर्यादानुसार ठीक बतलाते हैं। पं० तुलसीराम लिखते हैं कि परन्तु प्रसंग तौ यह है कि जिस सन्ध्योपासना को बिना किये द्विज पतित हो जाता है उसका विधान तौ स्वामीजी के लेखानुसार केवल दो काल में सिद्ध है यदि शास्त्रकार यह लिख दें कि जो जिस में एक एक भाग सन्ध्या नहीं करता तो वह द्विजाति वर्ण से बहिष्कृत करने योग्य है क्या इससे एक वक्त की ही सन्ध्या करना शास्त्रों की आज्ञा हो जावेगा ? यदि नहीं तो फिर दोकाल की सन्ध्या न करने पर जो प्रायश्चित्त बतलाया उससे दो दो बार की सन्ध्या का होना पं० तुलसीराम ने किस युक्ति और प्रमाण से मान लिया ?

स्वाहा शब्दार्थ ।

सत्यार्थप्रकाश—

“स्वाहा” शब्द का अर्थ यह है कि जैसा ज्ञान आत्मा में हो वैसा ही जीम से बोले विपरीत नहीं जैसे परमेश्वर ने सब प्राणियों के मुख के अर्थ इस सब जगत के पदार्थ रचे हैं वैसे मनुष्यों को भी परोपकार करना चाहिये ।

तिमिरभास्कर—

यह स्वाहाशब्द का अर्थ कौन से निघण्टु निरुक्त से निकाला भला ऊपर जो आपने लिखा है कि, प्राणाय स्वाहा तौ इसका यह अर्थ हुआ कि, प्राण अर्थात् परमेश्वर के अर्थ जैसा ज्ञान आत्मामें होवे वैसा बोले भला यह क्या बात हुई इससे हवन की कौनसी कला सिद्ध होती है, सुनिये स्वाहा अव्यय है, जिसके अर्थ हवित्यागम करने के हैं जो देवता के उद्देश से अग्नि में हवि दिया जाता है उसमें स्वाहाशब्द का प्रयोग होता है जैसे “प्राणाय स्वाहा” प्राणों के अर्थ हवि दिया वा प्राणों के अर्थ श्रेष्ठ होम हो (स्वाहाकारञ्च वषट्कारञ्च देवा उपजीवन्तीति श्रुतेः) ॥

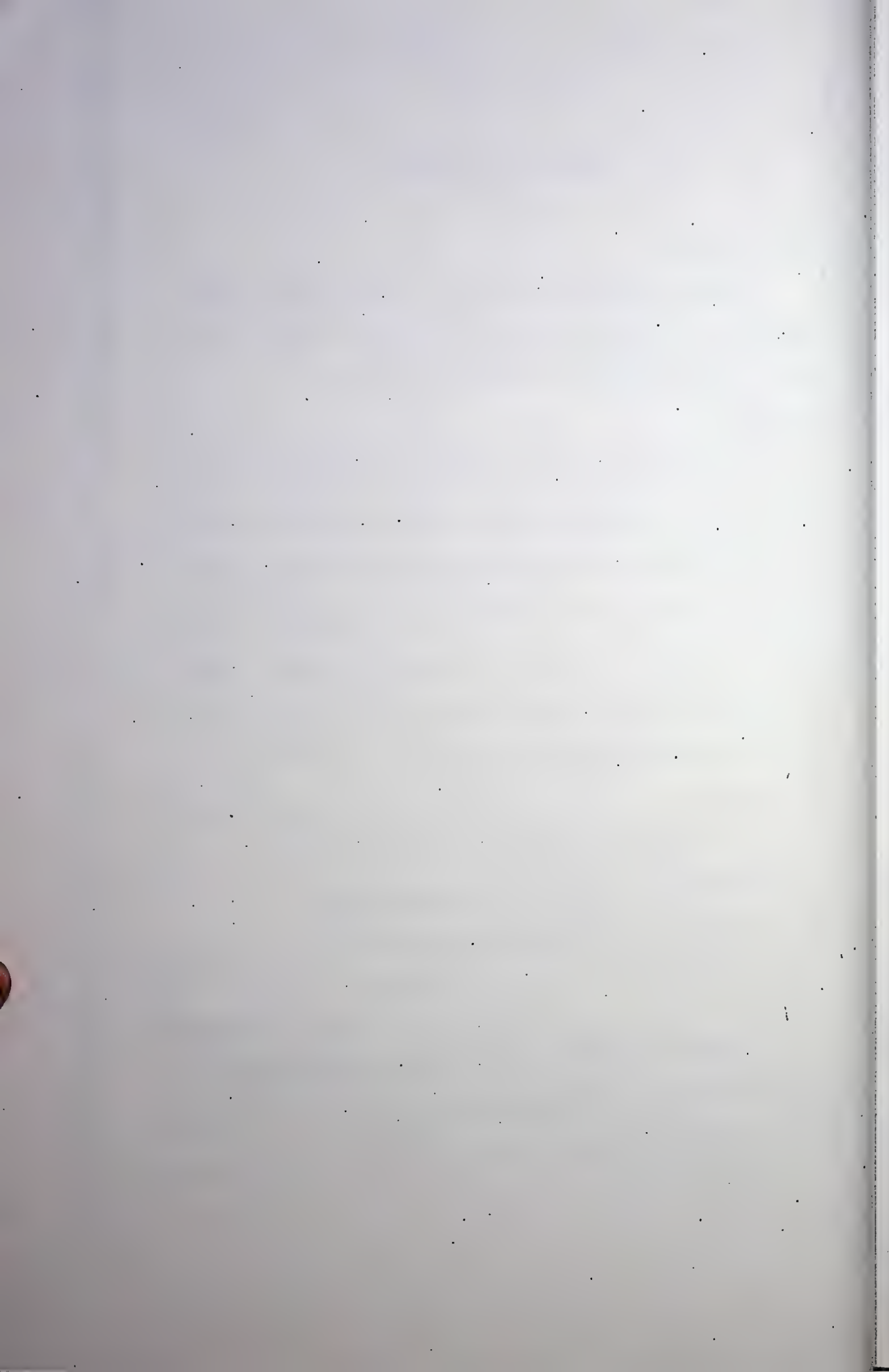
भास्करप्रकाश—

स्वाहा शब्द के उक्त स्वामीजी कृत अर्थ में प्रमाण सुनिये जो उन्होंने ने “पञ्चमहायज्ञविधि” में लिखा भी है :—

स्वाहा कृतयः स्वाहेत्येतत्सुआहेति वा स्वावागाहेति वा स्वं प्राहेति वा स्वाहुतं हविर्जुहोतीति वा तिसामेषा भवति ॥

निरु० दैवत कां० आ० ८ खं० २० ॥

इसमें से “स्वा वागाहेति” का अर्थ भी “पञ्चमहाय०” में लिख दिया है कि “यास्वकीया वाग्ज्ञानमध्ये वर्त्तते सा यदाह तदेव वागिन्द्रियेण सर्वदा वाच्यम्” । अर्थात् जैसा ज्ञान मन में हो वैसा कहे किन्तु बाहर भीतर में भेद करके कपट व्यवहार न करे । यह तौ प्रमाण हुआ । अब यह भी सुनिये कि प्राण नाम परमेश्वर का



है तो “ प्राणायस्वाहा ” का क्या अर्थ हुआ । इसका यह अर्थ हुआ कि परमेश्वर के लिये अर्थात् उसकी प्रसन्नता के लिये सत्य ही बोलना कपट न करना और आपने जो आहुति देना अर्थ लिखा है वह भी ठीक है और वह स्वामीजी ने भी “ पञ्चमहायज्ञविधि ” में निरुक्त के “ स्वाहुतं हविर्जुहोतीति वा ” इस वाक्य का प्रमाण देकर लिखा है परन्तु यहां सत्प्रार्थप्रकाश में यह समझ कर कि पञ्चयज्ञ का विधिपूर्वक लेख तो पञ्चमहायज्ञविधि में है ही वहां सब लोग पढ़ कर जानलेंगे कि इसलिये संक्षेप से सन्ध्योपासनादि की शिक्षा के प्रसङ्ग में थोड़ा सा लिख दिया । संक्षेप के कारण जैसा “ पञ्चमहा० ” में स्वाहा शब्द के कई अर्थ निरुक्त के प्रमाण से लिखे हैं वे विस्तारभय से यहां नहीं लिखे और “ स्वाहा अव्यय है ” यह जो आपने लिखा तो क्या स्वामी जी ने इसके अव्ययत्व का निषेध किया है ? यदि नहीं किया तो व्यर्थ आप क्यों पुस्तक बढ़ाते हैं ?



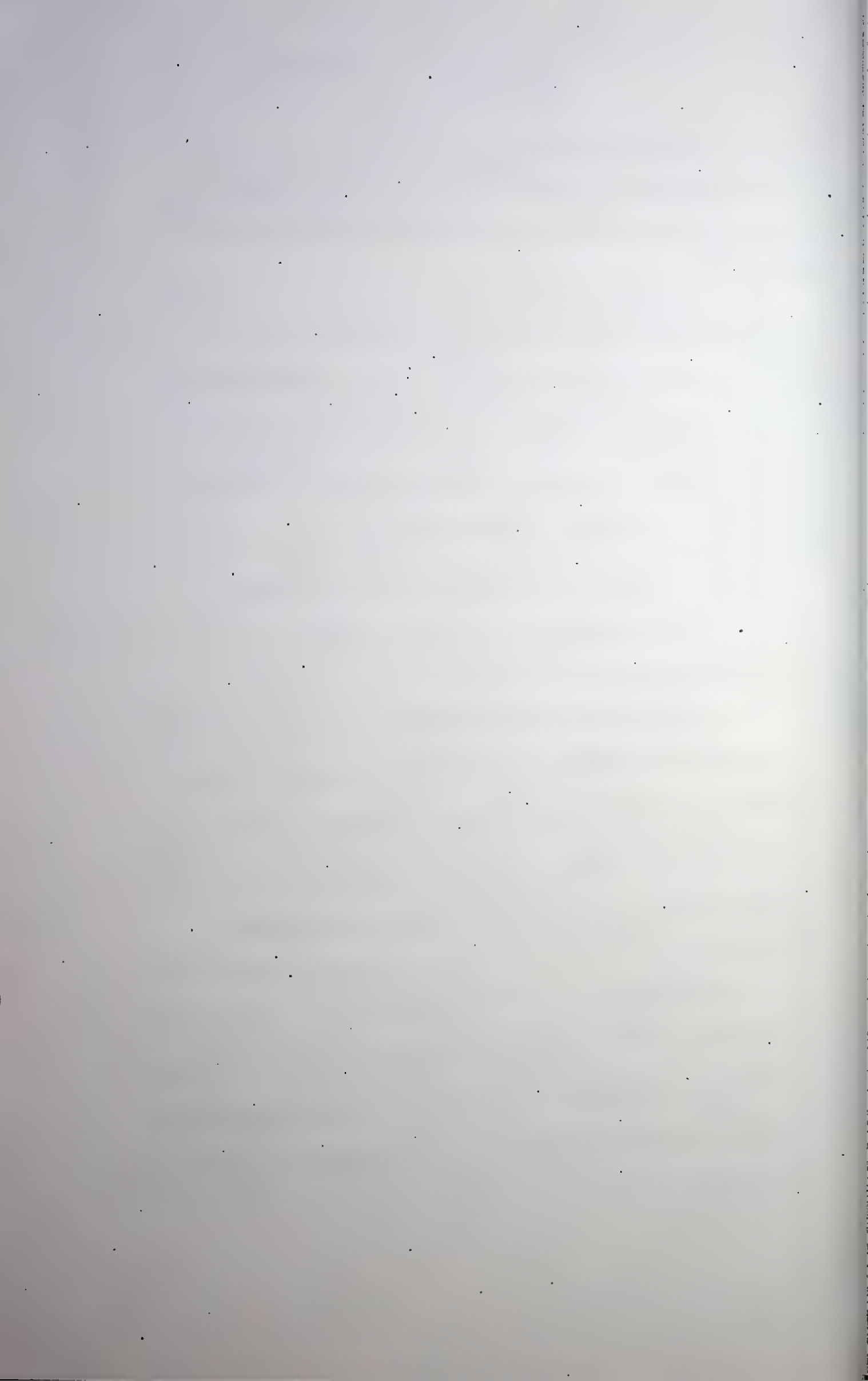
मीक्षा—स्वामी दयानन्दजी कहते हैं कि जैसा ज्ञान आत्मा में हो वैसा ही जीभ से बोले यह स्वाहा शब्द का अर्थ है इसके ऊपर पं० ज्वाला-प्रसाद लिखते हैं कि यह अर्थ कौन से निघण्टु और निरुक्त से निकाला इस के ऊपर पं० तुलसीरामजी लिखते हैं कि स्वाहा शब्द के उक्त स्वामीजीकृत अर्थ में प्रमाण सुनिये जो उन्होंने पञ्चमहायज्ञ विधि में लिखा है “ स्वाहाकृतयः स्वाहेत्येतत्सु आहेति वा स्वावागाहेति वा स्वंप्राहेति वा स्वाहुतं हविर्जुहोतीति वा तिसा मेषाभवति ” “ यास्वकीया वाग्ज्ञानमध्ये वर्त्तते सायदा हतदेववागिन्द्रियेण सर्वदा वाच्यम् ” अर्थात् जैसा मन में हो वैसा कहें किन्तु बाहर भीतर में भेद करके कपट व्यवहार न करें यह तो प्रमाण हुआ इसके ऊपर हम यह कहते हैं कि बेशक पं० तुलसीराम का दिया प्रमाण निरुक्त का है किन्तु जो अर्थ पं० तुलसीराम ने किया है वह अर्थ इस निरुक्त का हो ही नहीं सकता । पं० तुलसीराम ने (१) स्वाहाकृतयः स्वाहेत्येतत्सु आहेति वा स्वंप्राहेति वा स्वाहुतं हविर्जुहोतीति वा तिसा मेषाभवति इतने पदों का अर्थ नहीं किया केवल मंत्र की एक पूंछ स्वावागाहेति इसका अर्थ किया है (२) या स्वकीया वाग्ज्ञान मध्ये वर्त्तते तदेव वागिन्द्रियेण सर्वदा इतने शब्द पं० तुलसीराम ने अपनी तरफ से मिला दिये हैं इस भांति का अर्थ करना किसी भी विचारशील मनुष्य को तोषदायक नहीं हो सकता पं० तुलसीराम जैसे योग्य पुरुष के द्वारा ऐसे अनुचित कार्य का होना

शोकजनक है निरुक्त का असली अर्थ यह है कि स्वाहाकृति स्वाहा यह उत्तम रीति से कहै अपनी वाणी से कहै आप कहै और हवन योग्य हवि को अग्नि में छोड़ें निरुक्त के इस असली अर्थ से स्वामी दयानन्दकृत स्वाहा शब्द का अर्थ पाताल को चला जाता है ।

पं० ज्वालाप्रसाद लिखते हैं कि प्राणाय स्वाहा इस का अर्थ यह हुआ कि जैसा ज्ञान आत्मा में हो परमेश्वर के लिये वैसा ही बोलें यह कौन बात हुई और इस से हवन की कौनसी कला सिद्ध होती है इस के ऊपर पं० तुलसीराम लिखते हैं कि ठीक तो है इस का यह अर्थ हुआ कि परमेश्वर के लिये अर्थात् उसकी प्रसन्नता के लिये सत्यही बोलना कपट न करना । इसके ऊपर (१) प्राणाय इस चतुर्थतपद को पं० तुलसीराम ने षड्यंत समझा (२) प्रसन्नता इतनी इबारत अपनी तरफ से मिलाकर ईश्वर की प्रसन्नता के लिये पेसा अर्थ किया है जो अर्थ प्राणाय स्वाहा इस पद में से निकलही नहीं सकता यदि तुलसीराम को यह अर्थ करना स्वीकार था तो प्रार्थना मूल को पेसा (प्राणस्य प्रसन्नतायै) बनाते कि जिस में से पं० तुलसीरामकृत अर्थ निकलता प्राणाय स्वाहा इसका अर्थ ईश्वर की प्रसन्नता के लिये कभी हो ही नहीं सकता मनमाने अर्थ करना यह कोई पाण्डित्य नहीं है ।

फिर स्वामी दयानन्दजी ने जो संस्कार विधि में अश्विन्यै स्वाहा भरण्यै स्वाहा लिखा है पं० तुलसीराम के मन्तव्यानुसार इनका अर्थ अश्विनी नक्षत्र के प्रसन्नता के निमित्त तथा भरणी नक्षत्र की प्रसन्नता के लिए सच बोलता हूँ क्या अब जड़ नक्षत्रों की प्रसन्नता से समाज को सुख मिलेगा ? अच्छा होगा । पं० ज्वालाप्रसाद जी ने यह लिखा था कि इस अर्थ से हवन की कौनसी कला सिद्ध हुई इसके ऊपर पं० तुलसीराम ने कुछ भी उत्तर नहीं दिया उत्तर तो तब दें जब कि स्वामी दयानन्द कृत स्वाहाशब्द के अर्थ से हवन की सिद्धि होती हो ।

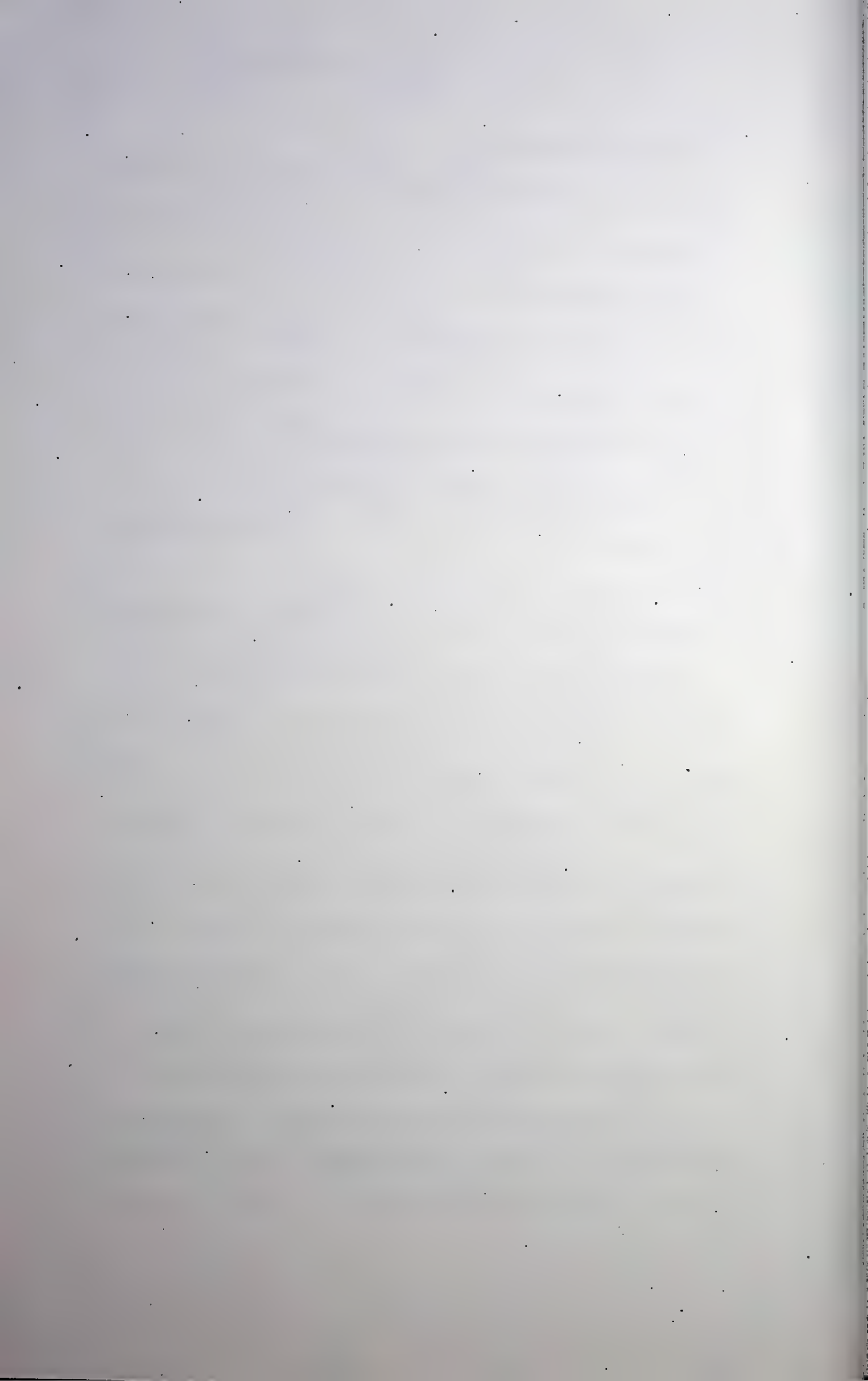
इसके अनन्तर पं० ज्वालाप्रसादजी स्वाहा शब्द का अर्थ दिखलाते हैं और उस में एक (स्वाहाकारञ्चवषट्कारञ्च देवा उपजीवन्तीतिश्रुतेः) श्रुति का प्रमाण देकर सिद्ध करते हैं कि स्वाहा शब्द देवताओं के हविदान में रहता है इसके ऊपर पं० तुलसीराम लिखते हैं कि आप ने जो आहुति देना अर्थ लिखा है वह भी ठीक है और वह स्वामीजीने भी पञ्चमहायज्ञविधिमें निरुक्तके “स्वाहुतंहविर्जुहोतीतिवा” इस वाक्य का प्रमाण देकर लिखा है परन्तु यहां सत्यार्थप्रकाश में यह समझकर



कि विस्तारपूर्वक लेख तो पञ्चयज्ञविधि में है ही वहां सब लोग पढ़कर जान लेंगे इस लिये संक्षेप से सन्ध्योपासनादि की शिक्षा के प्रसंग में थोड़ासा लिख दिया संक्षेप के कारण जैसा “पञ्चमहा०” में स्वाहा शब्द के कई अर्थ निरुक्त के प्रमाण से लिखे हैं वे विस्तार भय से यहां नहीं लिखे इसके ऊपर (१) तो पं० तुलसीराम ने जो पं० ज्वालाप्रसाद के अर्थ को ठीक माना है केवल इसी से स्वामीदयानन्दकृत अर्थ कपोल कल्पित ठहर जाता है जब कि स्वाहा शब्द का अर्थ देवताओं को हविदान है तब फिर जैसा मन में ज्ञान हो वैसाही वोलो यह कब सत्य होसका है (२) स्वामी दयानन्द ने पञ्चमहायज्ञ विधि में स्वाहा शब्द का वही अर्थ किया है जो पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्र कर गये सत्यार्थप्रकाश में लिखा अर्थ स्वामी दयानन्द ने वहां भी नहीं लिखा फिर किस अभिमान के ऊपर स्वामी दयानन्दकृत स्वाहा शब्द के इस स्थान में लिखे अर्थ को सत्य कह सकते हैं यह तो सब प्रकार से मिथ्या ही सिद्ध होता है ।

पं० तुलसीरामजी ने जो यह कहा कि स्वामीदयानन्द ने पञ्चमहायज्ञविधि में स्वाहा शब्द के कितने ही अर्थ किये हैं स्वाहा शब्द क्या ठहरा गोरखधंधा ठहरा जो चाहें वही अर्थ स्वाहा शब्द से निकल आवे स्वामीजी ने जितने अर्थ पञ्चमहायज्ञविधि में इस शब्द के किये हैं उन में एक को छोड़कर शेष समस्त कल्पित और वेदशास्त्र के विरुद्ध हैं उन को सत्य बतलाने के लिये आर्यसमाज के पास वेद शास्त्रादि का एक अक्षर भी प्रमाण नहीं फिर पेसे पेसे अनर्गल अर्थों का तैयार करना वेदशास्त्र के असली सिद्धान्त को रसातल को पहुंचाना है फिर पञ्चमहायज्ञ विधि के लेखों का प्रकरण उठाने से सत्यार्थप्रकाश लिखित स्वाहा शब्दार्थ सत्य न होगा किन्तु असत्य ही ठहरेगा जो अर्थ सत्यार्थप्रकाश में लिखा वह अर्थ तो स्वामी दयानन्दजी भी असत्य ही मानते हैं इस में पञ्चमहायज्ञविधि प्रमाण है । स्वामी दयानन्द पञ्चमहायज्ञविधि में स्वाहा शब्द के समस्त अर्थ लिखते हैं कि जितने अर्थ समाजी मत में इस शब्द के होते हैं उन अर्थों में सत्यार्थप्रकाश लिखित अर्थ का न होना साबित करता है कि वास्तव में यह अर्थ भंग के नशे में ही लिखा गया है और इस की सत्यता साबित करने के लिये समाज के पास कोई प्रमाण नहीं ।

इस अर्थ की सत्यता में जब कोई प्रमाण न मिला तब पं० तुलसीराम लिखते हैं कि स्वाहा शब्द का ठीक अर्थ तो पञ्चमहायज्ञविधि में लिखा है यहां पर तो

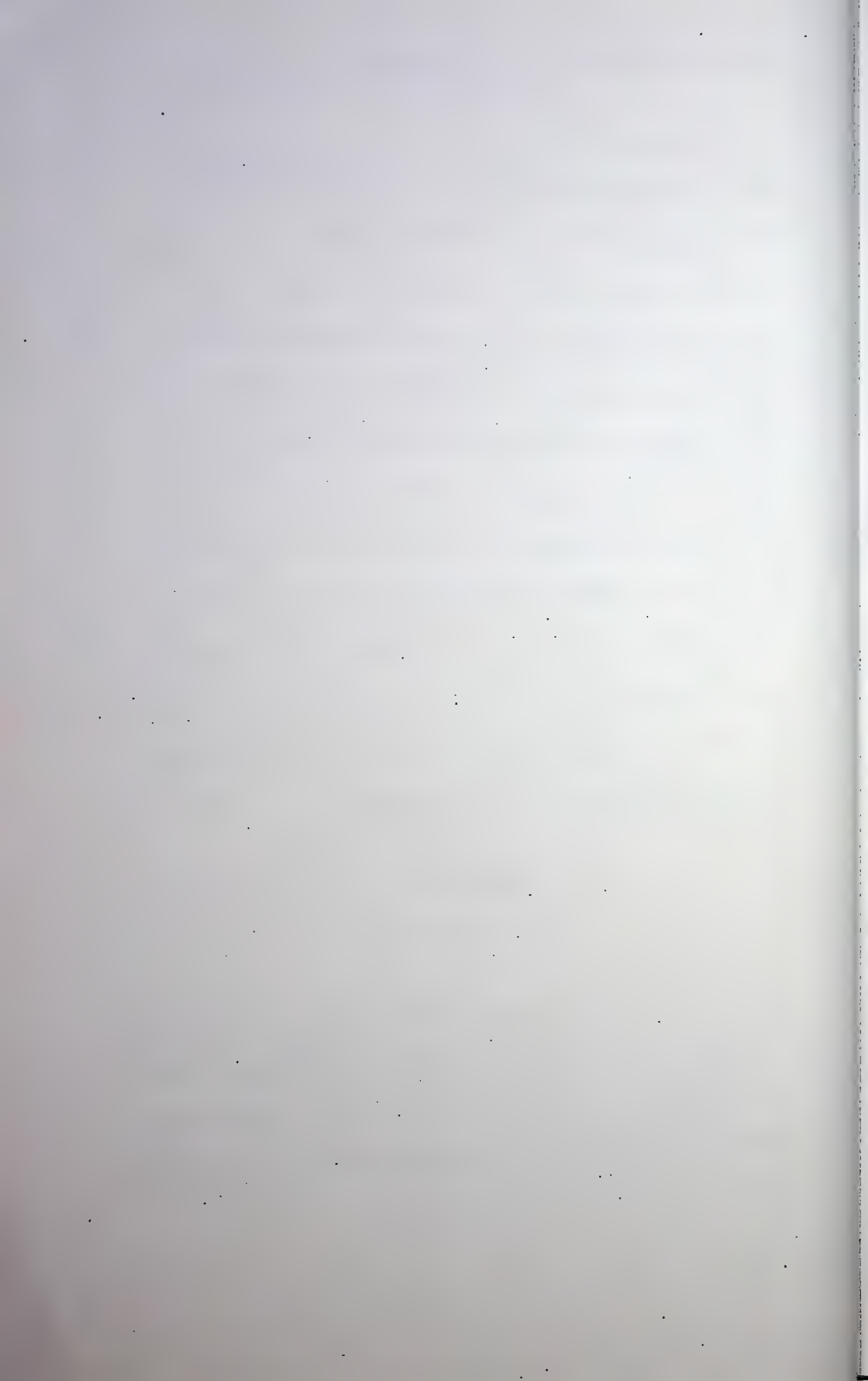


संक्षेप से अर्थ कर दिया है इस संक्षेप के मारे नाक में दम है जब पं० तुलसीराम को कुछ उत्तर नहीं सूझता तब संक्षेप का अङ्ग लगा देते हैं और यह अजीब तरह का संक्षेप है। यह ऐसा संक्षेप है कि परीक्षा में किसी विद्यार्थी से पूछा कि गज माने वह लड़का बोला कि गज माने बिल्ली यह सुनकर डिपटी साहब ने लड़के को फेल कर दिया जब मास्टर को मालूम हुआ कि लड़का फेल कर दिया गया तब आप डिपटीसाहब के पास पहुँचकर बोले कि इस लड़के को फेल क्यों किया डिपटी साहब ने उत्तर दिया कि इस ने गज के माने गलत बिल्ली बतलाए मास्टर ने पूछा कि असलियत में गज के माने क्या हैं डिपटी बोले कि हाथी यह सुनकर मास्टर बोला कि लड़के ने संक्षेप से बतलाया था जैसा संक्षेप लड़के के कथन में है वैसाही संक्षेप स्वाहा शब्द के अर्थ में स्वामी दयानन्द ने रक्खा। जिस स्वाहा शब्द का अर्थ देवताओं को हविदान देना है उसी का अर्थ जैसा मन में हो वैसा ही बोले लिखा इसी को पं० तुलसीरामजी संक्षेप कहते हैं मेरी समझ में तो आर्यसमाजी भी इस अर्थ को संक्षेप नहीं कह सकते नहीं मालूम पं० तुलसीराम की बुद्धि इस को संक्षेप कैसे मानती है आशा है कि यह संक्षेप हमको समझा दिया जावेगा। पं० ज्वालाप्रसादजी ने लिखा कि “स्वाहा” शब्द अव्यय है इस के ऊपर पं० तुलसीराम कहते हैं कि अव्यय होने में हमारी क्या हानि इस के ऊपर हम को कहना पड़ता है कि इस को अव्यय मानने से स्वामीकृत अर्थ फर्जी होजाता है क्योंकि अव्ययार्थ में स्वाहा शब्द का अर्थ “स्वाहा-देवताभ्योदाने” लिखा है हम को कहना पड़ता है कि पं० तुलसीराम लेख में विचार नहीं करते कागज रंगने में ही प्रशंसा समझते हैं।

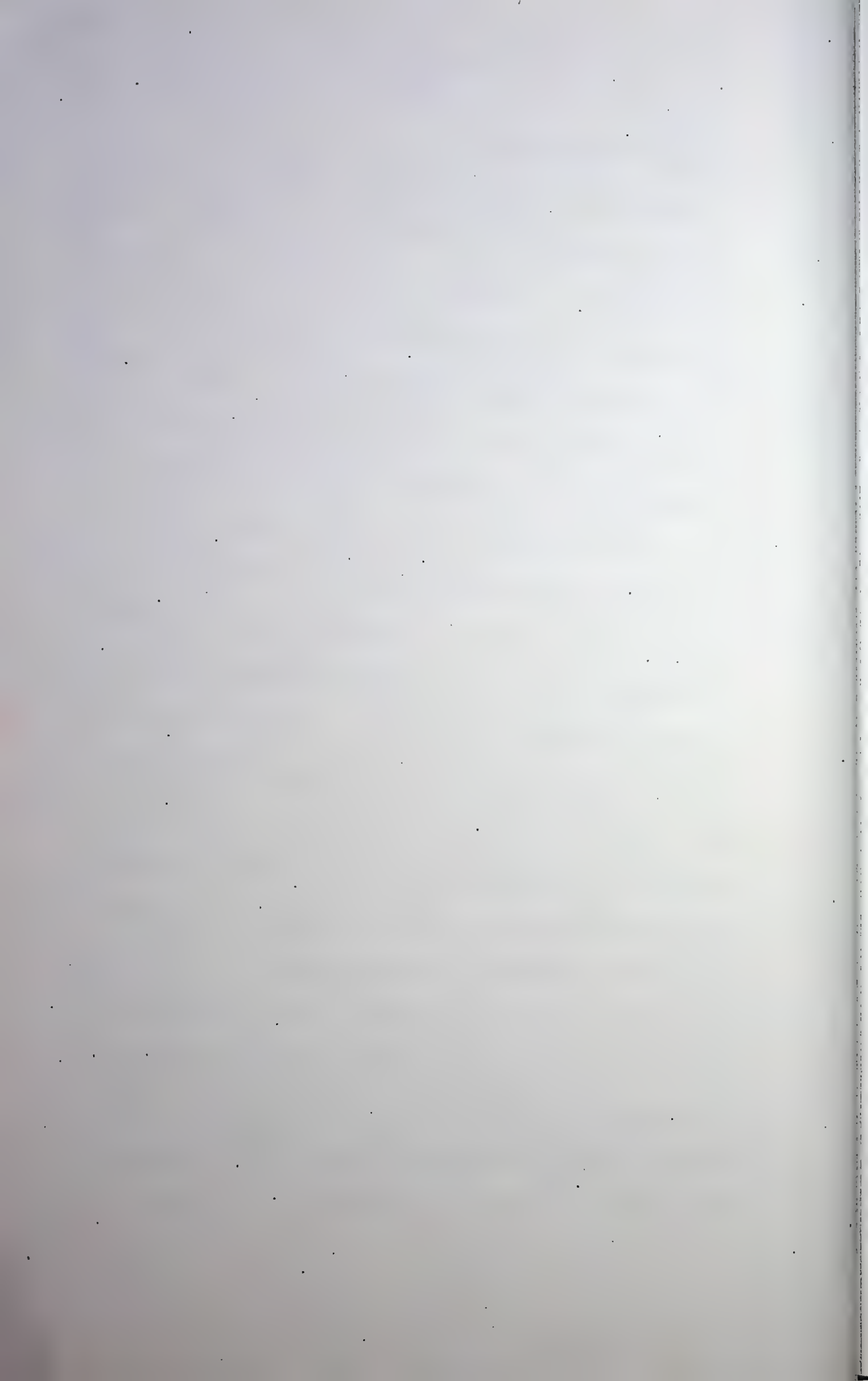
हवनफल ।

सत्यार्थप्रकाश—

(प्रश्न) होम से क्या उपकार होता है? (उत्तर) सब लोग जानते हैं कि दुर्गन्धयुक्त वायु और जल से रोग, रोग से प्राणियों को दुःख और सुगन्धित वायु तथा जल से आरोग्य और रोग के नष्ट होने से सुख प्राप्त होता है। (प्रश्न) चन्दनादि घिस के किसी के लगावे या घृतादि खाने को देवे तो बड़ा उपकार हो अग्नि में डाल के व्यर्थ नष्ट करना बुद्धिमानों का काम नहीं। (उत्तर) जो तुम



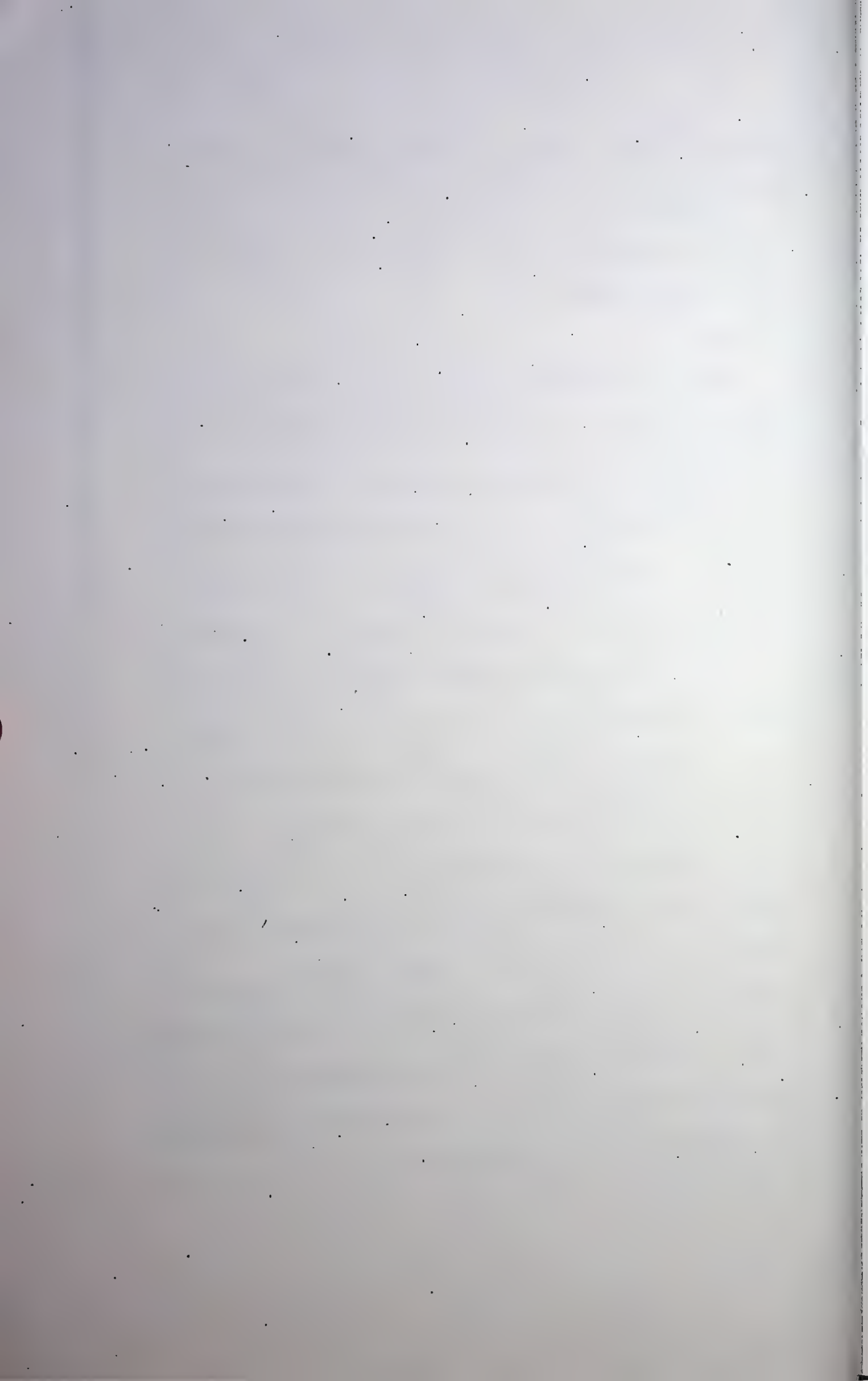
पदार्थविद्या जानते तो कभी ऐसी बात न कहते क्योंकि किसी द्रव्य का अभाव नहीं होता । देखो जहां होम होता है वहां से दूर देश में स्थित पुरुष के नासिका से सुगन्ध का गृहण होता है वैसे दुर्गन्ध का भी । इतने ही से समझ लो कि अग्नि में डाला हुआ पदार्थ सूक्ष्म होके फैल के वायु के साथ दूर देश में जाकर दुर्गन्ध की निवृत्ति करता है । (प्रश्न) जब ऐसा ही है तो केशर कस्तूरी सुगंधित पुष्प और अतर आदि के घर में रखने से सुगंधित वायु हो कर सुखकारक होगा । (उत्तर) उस सुगन्ध का वह सामर्थ्य नहीं है कि गृहस्थ वायु को बाहर निकाल कर शुद्ध वायु का प्रवेश करा सके क्योंकि उसमें भेदकशक्ति नहीं है और अग्नि ही का सामर्थ्य है कि उस वायु और दुर्गन्ध युक्त पदार्थों को छिन्न भिन्न और हलका करके बाहर निकाल कर पवित्र वायु का प्रवेश कर देता है । (प्रश्न) तो मन्त्र पढ़ के होम करने का क्या प्रयोजन है ? (उत्तर) मन्त्रों में वह व्याख्यान है कि जिससे होम करने के लाभ विदित हो जाय और मन्त्रों की आवृत्ति होने से कण्ठस्थ रहें वेद पुस्तकों का पठन पाठन और रक्षा भी होवे । (प्रश्न) क्या इस होम करने के बिना पाप होता है ? (उत्तर) हां ! क्योंकि जिस मनुष्य के शरीर से जितना दुर्गन्ध उत्पन्न हो के वायु और जल को बिगाड़ कर रोगोत्पत्ति का निमित्त होने से प्राणियों को दुःख प्राप्त करता है उतना ही पाप उस मनुष्य को होता है । इसलिए उस पाप के निवारणार्थ उतना सुगन्ध वा उससे अधिक वायु और जल में फैलाना चाहिए । और खिलाने पिलाने से उसी एक व्यक्ति को सुखविशेष होता है जितना घृत और सुगन्धादि पदार्थ एक मनुष्य खाता है उतने द्रव्य के होम से लाखों मनुष्यों का उपकार होता है परन्तु जो मनुष्य लोग घृतादि उत्तम पदार्थ न खावें तो उनके शरीर और आत्मा के बल की उन्नति न हो सके इससे अच्छे पदार्थ खिलाना पिलाना भी चाहिये परन्तु उससे होम अधिक करना उचित है इसलिये होम करना अत्यावश्यक है । (प्रश्न) प्रत्येक मनुष्य कितनी आहुति करे और एक एक आहुति का कितना परिमाण है ? (उत्तर) प्रत्येक मनुष्य को सोलह सोलह आहुति और छः छः माशे घृतादि एक एक आहुति का परिमाण न्यून से न्यून चाहिए और जो इससे अधिक करे तो बहुत अच्छा है । इसलिए आर्यवरशिरोमणि महाशय ऋषि, महर्षि, राजे, महाराजे लोग बहुतसा होम करते और कराते थे । जब तक इस होम करने का प्रचार रहा तब तक आर्यावर्त्त देश



रोगों से रहित और सुखों से पूरित था, अब भी प्रचार हो तो वैसा ही हो जाय। ये दो यज्ञ अर्थात् एक ब्रह्मयज्ञ जो पढ़ना पढ़ाना संध्योपासन ईश्वर की स्तुति प्रार्थना उपासना करना। दूसरा देवयज्ञ जो अग्निहोत्र से ले के अश्वमेध पर्यन्त यज्ञ और विद्वानों की सेवा संग करना परन्तु ब्रह्मचर्य में केवल ब्रह्मयज्ञ और अग्निहोत्र का ही करना होता है।

तिमिरभास्कर—

प्रथम तौ अग्निहोत्रों की विधि ही वेदविरुद्ध लिखी गई है, दूसरे यज्ञपात्रों की आकृतियां सब मनः कल्पित लिख दी हैं, वेद में कहीं इनकी ऐसी रचना नहीं है। तीसरे अग्निहोत्र का प्रयोजन जो जल वायुकी शुद्धि होना सिद्धान्त किया है सो यह भी शास्त्र और युक्ति दोनों के विरुद्ध है यदि स्वर्ग फल न होकर अग्निहोत्र ही जलाकर जल वायुकी शुद्धि के निमित्त है, तौ इन पांच आहुतियों से क्या होगा, किसी घी के आढतिये की दूकान में आग लगा देने की चाहिये, जो सैकड़ों मन घी जलकर खूब जलवायुकी शुद्धि होकर अनेक अनेक लोकोपकार होजाय, पदार्थविद्या को जाननेवाले पंडित लोग इस बातको जानते हैं, कि जलवायुकी शुद्धि तो परमेश्वर के प्राकृतिक नियम सेही होती रहती है, सूर्यकी आकर्षण शक्ति जलकी तरलता और वनमें अनेक सुगन्धि पुष्प औषधियोंका उत्पन्न होना वायुकी प्रसरण शक्ति सुगन्धित पुष्पादिकों के परमाणुओं का वायुमें मिलना ऋतुका परिवर्तन इन सब कारणों से जलवायुकी शुद्धि होती है और यदि जलवायुकी शुद्धि परही तात्पर्य हो तौ ऐसा उपाय न करै कि, कमखर्च और बाला नशीन गन्धककी धूनी दिया करै, जिससे डाक्टर लोग (हैजे) तककी वायु शुद्ध करलेते हैं और जलकी शुद्धिको दमड़ीकी फट-करी वा निर्मली के बीज ठीक हैं, और देखो गायत्री में स्वाहा लगाकर होम करना भी लिखा है, भला इसमें कौन से अग्निहोत्र के लाभका अर्थ है (अर्थ इसका पूर्व प्रकाश कर चुके हैं) अग्निहोत्र का अर्थ तौ है नहीं पर घी फूँके जाइये प्रथम इससे स्वामीजी ने



चुटिया बँधवाई फिर रक्षा की फिर जप किया अब घी फूँका एक गायत्रीही से कितने काम लिये हैं, आगे जब और विद्याकी उन्नति होगी तब इसमें इंजन लगाकर चलावेंगे और पंख लगाकर बेलून उड़ावेंगे, जब हवन से वायुकी शुद्धिमात्र होती है, तो प्रातःसंध्या का नियम वृथा है फिर तौ चाहे जब आग में घी डालें और उस के लिये स्नानादिक की कुछ आवश्यकता नहीं चाहें जब चूल्हे वा भट्ठी में घृत भोंकें, फिर क्यों इकतालीस ४१ बयालीस ४२ पृष्ठ में चमचा थाली प्रोक्षणीपात्रादिका विधान लिखा केवल पत्नी भर भर कै डाल देना लिख दें और मंत्र पढ़नेसे होम के लाभ विदित होते हैं यह भी आप का कथन मिथ्याही है भला आपने जो गायत्री मंत्र और (विश्वानिदेव) इन दो मंत्रों से हवन करना लिखा है इन मंत्रों से कौनसा हवन का लाभ प्रतीत होता है फिर आप लिखते हैं कि, इसप्रकार करने से मंत्र कंठ रहेंगे ठीक है जब मंत्र कंठ करनाही इष्ट है तौ याद करनेवाले बिनाही हवनके किये परिश्रम कर कंठ करसक्ते हैं और जब मंत्र कंठ करनेही का लाभ है तौ स्वाहा लगाने की फिर क्या आवश्यकता है चाहें जहाँ के मंत्र पढ़ दिये फिर नियत मंत्रसे आहुति देनी यह क्यों लिखा है इससे यह कहना स्वामीजी का ठीक नहीं कि, केवल जलवायुकी शुद्धि होती है, हवनसे स्वर्गलोककी भी प्राप्ति होती है, यथा यजुर्वेदे।

अयन्नो अग्निर्वरिवस्कृणोत्वयम्मृधः पुर एतु प्रभिन्दन् । अर्य
वाजांजयतु वाजसाता वय ७७ शत्रूंजयतु जर्हषाणः स्वाहा ॥

अ० ५ मं० ३७ यजु०

अर्थ—यह अग्नि हमारे धनको सम्पादन करो यह अग्नि संग्रामों को विदीर्ण करता आगे आओ यह अन्न विभाग निमित्त अन्नों को हमें देने के लिये शत्रुओं को जीतो उसके लिये श्रेष्ठ होम हो “अग्निही यह हवि देवताओं के पास पहुंचाता है और यजमान का कल्याण करता है” यथा—

सीद होतः स्वउ लोकेचिकित्वान्तसादयायज्ञ ७ सुकृतस्ययोनौ ।
देवावीर्देवान्हविषायजास्यग्नेबृहद्यजमानेवयोधाः ॥

यजु० अ० ११ मं० ३५

भावार्थ—हे देवताओं के आह्वान करनेवाले अग्नि देवता सब कुछ जाननेवाले तुम अपने लोकमें ठहरो और २ श्रेष्ठकर्म यज्ञ के स्थान कृष्णाजिन परही यज्ञ को स्थापन करो, हे अग्ने ! जिस कारण देवताओं के तृप्ति करनेवाले तुम हव्यसे देवताओंको पूजते हो, इसीकारण यजमान में बड़ी आयु और अन्नको धारण करो (कृष्णाजिनं वैसुकृतस्ययोनिरिति) श० ६, ४, २, ६ ।

स ७ सीदस्वमहा ७ २ ॥ असि शोचस्व देववीतमः । विधूममग्ने
अरुषस्मियेद्ध्यसृजप्रशस्तदर्शतम् ॥ अ० ११ मं० ३७

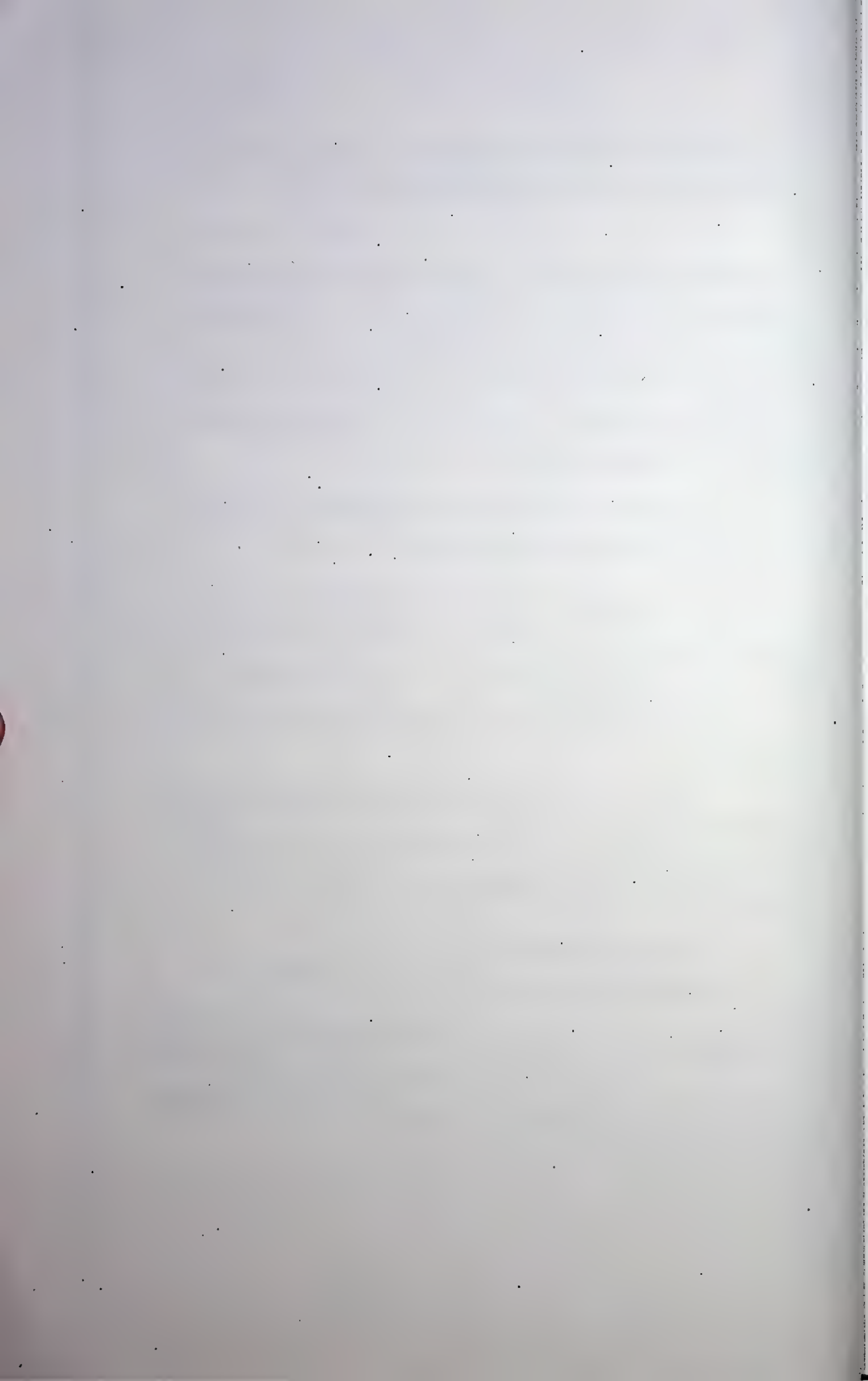
अर्थ—हे यज्ञके योग्य उत्कृष्ट अग्नि देवताओंके अत्यन्त तृप्त करनेवाले तुम महान् हो पुष्करपर्णपर भले प्रकार बैठो, प्रहीतहो, दर्शन योग्य शान्तरूप धूम्रको छोड़ो ३७ और अग्निहोत्रसे पाप भी दूर होते हैं अघनाशन प्रकरणमें (यद्ग्रामे यदरण्ये) श्रुतिका अर्थ देखो ॥

इसीप्रकार सामवेदमें भी अग्निको देवताओं का दूत लिखा है इत्यादि वेदों में अनेक प्रकार से अग्निकी स्तुति परलोक प्राप्त्यर्थ लिखी है अब जो मनुजी हवनके लाभ कहते हैं सो श्रवण कीजिये—

स्वाध्यायेन ब्रतैर्होमैस्त्रैविद्येनेज्यया सुतैः ॥

महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः । मनु० २ । २८

सब विद्या पढ़ने पढ़ाने ब्रतोंके करने हवन करने त्रैविद्य नामक ब्रत करने तथा यज्ञादिके करने से यह शरीर ब्रह्म प्राप्तिके योग्य होता है मुक्तिके साधनमें मनुजी ने हवनभी लिखा है अब लौकिक लाभ सुनिये—



अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते ॥

आदित्याज्जायतेवृष्टिर्वृष्टेरन्नंततःप्रजाः ॥ अ० ३ श्लो० ७६

जपो हुतोहुतो होमः प्रहुतो भौतिको बलिः ॥

ब्राह्म्यं हुतं द्विजाग्र्यार्चा प्राशितं पितृतर्पणम् ॥ ७४ ॥

स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्यादैवे चैवेह कर्मणि ॥

दैवकर्मणि युक्तोहि विभर्तीदं चराचरम् ॥ ७५ ॥

यजमान करके अग्निमें डाली आहुति सूर्यको पहुंचती है सूर्य से अच्छी वृष्टि समयपर होती है वृष्टिसे अन्न और अन्नसे प्रजा होती है ७६ अहुत अर्थात् जपहुत हवन प्रहुत अर्थात् भूतबलि ब्राह्म्यहुत श्रेष्ठ ब्राह्मणकी पूजा प्राशित आहुति पितृतर्पण ७४ मनुष्य वेदाध्ययन में सर्वदा युक्त होकर अग्निहोत्रमें भी सर्वदा युक्त होय तौ यह सम्पूर्ण जगत् को धारण करता है ॥ ७५ ॥

पूर्वासंध्यांजपंस्तिष्ठन्नैशमेनोव्यपोहति ॥ पश्चिमांतुसमा-
सीनोमलं हन्तिदिवाकृतम् ॥ मनु० अ० २ श्लो० १०२

प्रातःकालकी संध्या करनेसे रात्रिका, संध्याकालकी संध्या करनेसे दिनका किया पाप दूर होता है इसीप्रकार हवनसे भी पाप दूर होता है क्योंकि वेदमंत्र पापक्षयकारक होते हैं और जिनकी विधि है वोही हवनमें उच्चारण किये जाते हैं इससे यह सिद्ध हुआ कि, हवन करने से पाप निवृत्ति होता है और पुण्य होता है ॥

भास्करप्रकाश—

आप कृपा करके वेदाक्त आकृति लिखते तौ जाना जाता कि स्वामीजी ने वेदविरुद्ध लिखा । परन्तु आप के प्रमाणशून्य कथनमात्र से कोई नहीं मान सक्ता ।

हम भी आप से कह सकते हैं कि यदि अन्न से क्षुधानिवृत्ति होती है तौ क्या किसी हलवाई की दूकान लूट खाइयेगा वा अनाजमण्डी का चर्वण कर लेना उचित होगा ? जैसे आप किसी की घृत की दूकान में आग लगाने से कहते हैं । प्राकृत नियम से जैसे दुर्गन्धयुक्त पदार्थों के बदले सुगन्ध का प्रसाद परमात्मा करते

हैं वैसे ही मनुष्यों के उत्पन्न किये गये दुर्गत फैलाना रूप पाप की निवृत्ति के लिये वा अग्नि वायु जल आदिभौतिक देवऋण की निवृत्ति करने अर्थात् जलादि अशुद्ध को शुद्ध करने के लिये परमात्मा ने वेद में हम को हवन का फल बताया है। यथा—

वसोः पवित्रमसि द्यौरस पृथिव्यसि मातरिष्वनो घर्मोसि० ।

इत्यादि । यजुः अ० १ मं० २

“यज्ञो वै वसुः” शतपथ १।५।४।९। वसु जो यज्ञ है वह पवित्र है। दिव्यगुणयुक्त है। विस्तार युक्त है, वायुशोधक है। मूल मन्त्र में मातरिष्व शब्द वायु के लिये है। “मातरिष्व के वायुः” निरु० ७।२६॥ इत्यादि शतशः प्रमाण वेदों में यज्ञफल सूचक हैं जिन्हें विस्तारभय से यहां कहां तक उद्धृत करें। गन्धक में सुगन्ध है वा दुर्गन्ध जो यह भी नहीं जानता उससे गन्धक की गन्ध आप ही को भावेगी। निर्मली से जल की मट्टी ही केवल नीचे बैठ सकती है, अन्य रोगकारक वस्तु नहीं। परन्तु वायु और मेघों तक की शुद्धि करके यज्ञ संसार भर का उपकार करता है! यदि प्रत्येक मनुष्य पूर्वकालिक ऋषियों के समान गौ आदि पालें और नित्य हवन यज्ञ करें तौ थोड़ी आहुति न रहें किन्तु भारत के २० करोड़ आर्यवंशियों की १०।१० आहुति मिलकर २ अरब प्रतिदिन की आहुतियों से समस्त देश में आनन्द मङ्गल हों जावे। परन्तु वेद में तौ देवतों (जल वायु आदिकों) का दूत “अग्नि” लिखा है जैसा कि हम नीचे लिखेंगे और आप स्वयं देवदूत बनकर सूर्य चन्द्रादि भौतिकदेवों के नाम की सामग्री पुजवाकर अपने घर लेजाने की ही परिपाटी स्थिर रखना चाहते हैं तब भला यह लोकोपकार कैसे हो ॥

मुख्यमन्त्रों में जैसे अग्नये स्वाहा। सोमायस्वाहा। वायवेस्वाहा। वरुणायस्वाहा। प्राणायस्वाहा। इत्यादि में वायु जल प्राण आदि के अर्थ तौ हैं ही परन्तु हवन की सामग्री विशेष हो तौ गायत्री आदि मन्त्रों से परमात्मा की स्तुतिप्रार्थनोपासना करता जावे और शेष सामग्री को अग्नि में चढ़ादेवे यह तात्पर्य स्वामीजी का है। किसी मुख्य यज्ञ की कोई आहुति विशेष तो गायत्री से स्वामीजी ने नहीं लिखी। जो अग्निहोत्र के विशेष मन्त्र “समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोध-

यतातिथिम् । आस्मिन्हव्याजुहोतन" इत्यादि हैं उनमें तौ अग्नि में समिधाहोम घृतहोमादि का अर्थ स्पष्ट है ही । दुर्गापाठ के तुल्य—

“गर्जगर्जक्षणमूढ मधुयावत्पित्राम्यहम्” मदिरा की आहुति वेदमें नहीं लिखी ॥

स्वामीजी ने यदि रक्षादि कार्य किये तौ अनर्थ क्या किया परन्तु आप तो अपने बड़ों को मानते हैं कि उन्होंने ने गायत्री के जप से ही इतना सामर्थ्य बढ़ाया था कि धोती निराधार आकाश में सुखाते, जल से अग्नि जलाते, किसी का प्राण चाहते तौ ले लेते इत्यादि । और इसमें संदेह नहीं कि हम आप के समान गायत्री को सामर्थ्यहीन नहीं समझते, जैसा आप का भाई धर्म से विधर्म हो जावे तौ आप की गायत्री गङ्गा यमुना आदि कुल नहीं कर सकती । यहां यह बात नहीं, किन्तु आपके मुरादाबाद में और अन्यत्र शतशः पतित भाइयों का उद्धार इस सामर्थ्यवान् गायत्रीमन्त्र से हम ने किया और देखिये आगे आगे क्या करेंगे, घबराते क्यों हो । गायत्री मन्त्र की विचित्र शक्ति को देखना क्या क्या काम देती है । कदाचित् आप भी तौ भूत प्रेत गायत्री से दूर किया करते हैं और यजमानों से दक्षिणा लिया करते हैं । फिर बिना दक्षिणा मांगे स्वामी जी ने गायत्री से रक्षा और होमादि का विधान किया तौ बुरा क्या किया ॥

प्रातःसायं ही सब कामों के प्रथम और सब के पश्चात् प्रधान कार्य करने चाहिये । तथा वेद ने भी “सायं सायं गृहपतिर्नो० प्रातः प्रातर्गृहपतिर्नो०” (अथर्ववेद कां० १९ अनु० ७ मं० ३ । ४ ॥) प्रातःसायं ही इसका विधान किया है । समय भी यही ऐसा है जिसमें प्रायः चित्त स्थिर शान्त और अन्यकामों से निश्चिन्त होता है इत्यादि अनेक कारण हैं जिनसे प्रातः सायं समय ही उत्तम है । शुद्धिकारक कर्म करते हुवे क्या देह का शुद्ध करना आवश्यक नहीं जो स्नान को व्यर्थ बताते हो ! पात्रों के बिना यह कार्य सिद्ध नहीं होता जैसा उस कार्य के लिए बनाये हुए विशेष पात्रों से और यूँ तौ कड़ाही का काम तवे और थाली का काम तंबिये आदि से अभाव में लिया ही जाता है और अभाव में हवन भी स्थण्डिल पर करते ही हैं, परन्तु जिस जिस कार्य के लिये जो जो पात्र बनाये गये हों वह वह कार्य उन उन पात्रों से जैसा उत्तम होता है वैसा अन्यथा कदापि नहीं हो सकता इस कारण पात्रविशेष का लिखना सार्थक है ॥

हम आप के किए अर्थों को मानलें तब भी कोई हमारे पक्ष की हानि नहीं क्योंकि जल वायु की शुद्धि से शौर्य धैर्य आरोग्य बल पुष्टि आदि बढ़ते हैं जिस से धन, जय, अन्न, कल्याण की प्राप्ति होती है। इससे वह बात खण्डित नहीं होती जो हम ने ऊपर यजुः अ० १ मं० २ से वायु की शुद्धि यज्ञद्वारा सिद्ध की है। और अग्नि को देवदूत अर्थात् वायु आदि देवतों को उनके लिये दिया हुआ भाग पहुंचाने और उससे उनको प्रसन्न अर्थात् स्वच्छ शुद्ध अनुकूल करनेवाला तौ हम भी मानते हैं, स्वामीजी ने भी माना है। परन्तु आप तौ अग्नि के स्थान में अग्निमुख ब्राह्मणों (नाममात्र) के ही द्वारा सब देवतों की पूजा सामग्री के चढ़ कराने की रीति ही अच्छी समझते हैं। अग्नि के द्वारा (जो देवदूत है) देवभाग उनको प्राप्त कराना तौ आप “ आग में झोकना फूंकना ” आदि कठोर शब्दों से व्यवहार करते हुवे अच्छाही नहीं समझते। और द० ति० भा० पृ० ३२ । पं० २५ और पृ० ३३ पं० ३ में जो मनु के अ० ३ श्लोक ७६ । ७४ । ७५ से यह लिखा है कि “ विद्या पढ़ने पढ़ाने, व्रत, हवन, ३ वेद पढ़ने और यज्ञादि के करने से ब्रह्म प्राप्ति के योग्य होता है। अग्नि में डाली आहुति सूर्य को प्राप्त होती, उस से वृष्टि, वृष्टि से अन्न, अन्न से प्रजा को उत्पन्न करती है। ७६ । आहुतजप, हुत हवन, प्रहुत, भूतबलि, ब्राह्महुत श्रेष्ठब्राह्मण की पूजा, प्राशितश्राद्ध । ७४ । अग्निहोत्र में युक्त होय तौ जगत् को धारण करता है ” इत्यादि का उत्तर यह है कि वेदादि के पढ़ने से आभ्यन्तर और हवनयज्ञ से बाह्य जलादि की शुद्धि होकर अन्तःकरण की शुद्धिपूर्वक मनुष्य, परब्रह्म की प्राप्ति के योग्य होता है, इस में विवाद ही किसे है। परन्तु आप स्वामीजी के विरुद्ध वायु आदि की शुद्धि को हेतुता न हो, ऐसा कोई फल यज्ञ का बतावें। किन्तु आप तौ आहुति से वर्षा और अन्नादि द्वारा प्रजा का धारण पोषण मनु के प्रमाण से लिखते हैं, जिसे स्वामीजी और हम लोग निर्विवाद मानते हैं और वह वायु की शुद्धि वृद्धि होकर अन्नादि शुद्ध पदार्थ खाने योग्य उत्पन्न होवें तभी संसार का धारण पोषण होसकता है, सो ठीक है। हमें आपके समान पक्षपात नहीं कि ठीक बात आप लिखें और स्वामीजी के लेख की पुष्टि करें, तब भी हम न मानें। श्लोक ७४ में अहुत, प्रहुत, हुत, प्राशित, ब्राह्महुत ये पञ्चमहायज्ञों के नामान्तर हैं, इससे हमारा कोई विरोध नहीं, आप की विशेष इष्टसिद्धि नहीं, व्यर्थ पुस्तक बढ़ाई गई है। और पृ० ३३ पं० १४

में मनु के श्लोक में जो संध्या और हवन से पाप निवृत्ति लिखी है, सो ठीक है, संध्या के द्वारा आभ्यन्तर रागद्वेषादि और हवन से वायुविकारादि बाह्यदोष निवृत्त होते हैं, इस में स्वामीजी के लेख का खण्डनही आपने क्या किया। देवयज्ञ का विशेष मण्डन देखना हो तो मेरा व्याख्यान “दैविकदैवपूजा” देखिये।



मीक्षा—स्वामी दयानन्दजी के बतलाये यज्ञपात्रों को पं० ज्वालाप्रसादजी कहते हैं कि वेदविरुद्ध हैं इस के ऊपर पं० तुलसीरामजी लिखते हैं कि प्रमाणशून्य तुम्हारे कथन को कोई नहीं मान सकता पं० तुलसीराम ने पीछे आज तक जितना भास्करप्रकाश लिखा है दयानन्द के जितने सिद्धान्तों की पुष्टि की है सब बातोंही में की है प्रमाण कहीं पर नहीं लिखा तथापि पं० तुलसीराम के प्रमाणशून्य अनेक लेखों को समाज मानती है किन्तु पं० ज्वालाप्रसादजी के लेख को नहीं मानती भला इससे बढ़िया धर्म निर्णय का कोई भी और तरीका संसारमें मिलसकता है इस रीतिसे धर्मका निर्णय होगा या कि जिह्मजिद्दा।

एक आर्यसमाजी ने किसी पुस्तक में लिखा कि समाजियों को तीस रोजे अवश्य रखने चाहिये क्योंकि इनका विधान वेद में लिखा है इस को पढ़कर किसी दूसरे आर्यसमाजी ने लिखा कि वेद में रोजे का रखना लिखा ही नहीं अतएव रोजा रखना वेद विरुद्ध है किसी ने दूसरे मनुष्य के लेख के खंडन में लिखा कि प्रमाणशून्य तुम्हारे लेख को कोई नहीं मान सकता यदि यह मामला प्रतिनिधि के पास चला जाय तो प्रतिनिधि इसका क्या फैसला करेगी यह हम जानना चाहते हैं। प्रतिनिधि कुछ भी करे किन्तु न्याय यह बतलाना है कि पहिले मनुष्य के लेख की पुष्टि के लिए वेद प्रमाण होना चाहिए पहिला मनुष्य या उसके पक्षपाती जब तक यह सबूत न दे दें कि वेद के अमुक मंत्र में रोजे रखना लिखा है तब तक न इस लेख की पुष्टि होगी और न रोजे रखने के लेख को कोई सत्य ही मानेगा इस इंसाफ का त्याग करके जो तीसरा मनुष्य रोजे रखवाने की डिगरी देता है उसके लेख में कितनी विद्वता और कितनी सचाई है इसका निर्णय पाठकों के ऊपर छोड़ा जाता है।

जिसांतरह से यहां पर प्रथम मनुष्य या उसके पक्षपातियों से रोजे रखने में वेद का प्रमाण मांगना इंसाफ है इसी प्रकार स्वामी दयानन्द और उसके पक्षपातियों

से यज्ञपात्रों में वेद का प्रमाण मानना क्या इन्साफ नहीं है और जिस प्रकार से रोजों के रखने में तीसरे मनुष्य का लेख कुछ भी कदर नहीं रखता इसी प्रकार से पं० तुलसीराम का लेख क्या किसी की दृष्टि में तोषदायक हो सकता है ? जब तक आर्यसमाजी स्वामी दयानन्द के लिंग यज्ञपात्रों में वेदादि शास्त्रों का प्रमाण न दें तब तक इन्साफपसंद मनुष्य यह कैसे मान सकता है कि स्वामी दयानन्द के बतलाये यज्ञपात्रों में वेदादिशास्त्र प्रमाण है इन पात्रों की पुष्टि वेदादिशास्त्र त्रिकाल में भी नहीं कर सकते समस्त पात्रों की आकृति तथा लंबाई चौड़ाई मनगढ़न्त है इसी कारण से तुलसीराम प्रमाण न देसके प्रमाणशून्य पं० ज्वालाप्रसाद के लेख को कोई नहीं मान सकता इतना लिखकर सिर आई बलाय को टालकर किनारे हुए ।

क्या कोई आर्यसमाजी संसार में पेसा है कि जो स्वामी दयानन्द के यज्ञपात्रों को वेद शास्त्रानुकूल सिद्ध करदे ? हमारा यह विश्वास है कि जब तक जमीन सूर्य बने रहेंगे तब तक कोई भी आर्यसमाजी स्वामी दयानन्द के पात्रों में प्रमाण नहीं दे सकता । कोई कोई सभ्य मनुष्य यह भी कहेंगे कि आर्यसमाजी लोग वेदोक्त यज्ञपात्रों को नहीं बतलाना चाहते क्योंकि उनके बतलाने से स्वामी दयानन्द के पात्र फर्जी ठहरते हैं किन्तु आप क्यों नहीं बतलाते यदि आप बतलायेंगे तो पाठकों को यज्ञपात्रों का तो ज्ञान होगा इस विचार को मद्देनजर रख कर यज्ञ के पात्रों का वर्णन नीचे लिखते हैं—

अथ यज्ञपात्राणि कात्यायन सूत्रे ।

वैकङ्कतानि पात्राणि १ खादिरः २ स्फ्यश्च ३ पालाशी जुहुः ४ आश्वत्थ्युप्रभृत् ५ वारणान्यहोमसंयुक्तानि ६ बाहुमात्र्यः ७ पाणिमात्रपुष्करास्त्वग्विलाह ८ समुखप्रसेका मूलदंडा भवन्ति ९ अरन्निमात्रः सुवोऽगुष्ठपर्ववृत्तपुष्करः ८ स्फ्योऽस्याकृतिः ९ आदर्शाकृतिप्राशिन्नहरणं चमसाकृतिवा १० चत्वालोत्करावन्तरेणसञ्चरः ११ प्रणीतोत्कराविष्टिषु १२

कातीये यज्ञपात्राणि सर्वाणि वैकङ्कतानि यथा उलूखलमुसल
कूर्चेडापात्री शम्याशृतावदानमेक्षण भूर्युपवेशान्तर्धान कटप्राशित्र
हरणषड्वर्तब्रह्म यजमानासनहोतृषदनादीनि ।

अर्थ—यज्ञपात्र सामान्यतः विकङ्कत (वेहली कंठाय) वृक्ष के होने चाहिये यह स्वादु कण्टक और ग्रंथिल कंठाय है चीते के पैर के समान इसकी जड़ होती है १ खैरका सुत्र २ तथा इसी की सामान्य इष्टि में स्पष्ट होती है ३ जिससे अग्नि में आहुति दी जाती है वह जुहू ढाक की घनानी चाहिए ४ जुहू के निकट धरी जाती है यह उपभूत पीपल की होनी चाहिए ५ उलूखल मुसल आदि होम से पृथक् कार्य में आने वाले यज्ञपात्र सामान्यतः चरना वृक्ष के होने चाहिए ६ जो एक स्थान में निश्चल धरा रहै वह ध्रुवा विकङ्कत का होना चाहिए तीनों सुत्रे वाहुमात्र (डेढ़ हाथ) लंबे हों हाथ के चुल्लू के समान मुख की गहराई वाले त्वच भाग की ओर से खुदे मुखवाले चीरी लकड़ी के भीतर से जिनका मुख न खुदा हो हंस के मुख की समान घृत गिरने के निमित्त एक ढालू नाली जिनमें बनी हो मूल अर्थात् काष्ठ के अग्रभाग की ओर जिनका दण्ड (मुख) हो ऐसे तीनों सुत्रे बनावे ७ सुत्रा चौबीस अंगुल लंबा हो अंगुष्ठ के पौरे प्रमाण गहरा और उतनाही गोलाकार मुख हो ८ तलवार की आकृति वाली (दुधारा खांडा) स्पष्ट बनावे ९ दर्पण के समान गोल व चमस तुल्य चतुष्कोण प्राशित्र प्रहरण बनावे १० उत्तर वेदी जिनमें बनाई जाती है ऐसे चत्वाल वाले वरुण प्रयास महाहविष् पशुयाग और सोमयागों में चत्वाल और उत्कर के बीच से सबके निकलने का सञ्चर मार्ग होता है ११ दर्श पौर्णमासादि इष्टियों में प्रणीता और उत्कर के मध्य से सञ्चर मार्ग माना जाता है १२ उलूखल मुसल कूर्च इडापात्री पुरोडाश पात्री शम्या शृता वदानमेक्षण अभि उपवेश अन्तर्धान कट प्राशित्र हरण षड्वर्त ब्रह्मा यजमान और होता के आसन यह अहोमसंज्ञक पात्र चरना के बनाने चाहिये ।

क्रम से लक्षण—

उलूखलं च मुसलं स्वायते स्वदृढे तथा ।

इच्छा प्रमाणे भवतः शूर्प वैण्वमेवच ॥ १ ॥

अन्यञ्च—

खादिरं मुसलं कार्यं पालाशः स्यादुलूखलः ।
 यद्वोभौवारणौकार्यौ तदभावेऽन्यवृक्षजौ ॥ २ ॥
 कौशः क्रूचोवाहुमात्रो मकराकारउच्यते ।
 इच्छाप्रमाणातुदृशत्प्रोक्ता पापाणसम्भवा ॥ ३ ॥
 उपलोवर्तुलः प्रोक्तो वितस्तिपरिमात्रकः ।
 इडापात्रीतथाचान्या रत्निमात्राप्रकीर्तिता ॥ ४ ॥
 प्रोताहविर्धानपात्री विपुलाद्वादशांगुला ।
 पिष्टपात्रीचसैवोक्ता चतुस्त्राप्रकीर्तिता ॥ ५ ॥
 पुरोडासस्यपात्रीतु चतुस्त्रासमानतः ।
 स्वातेनवर्तुलेनैव युतायज्ञेप्रशस्यते ॥ ६ ॥
 शम्याप्रादेशमात्रीस्यात्खादिरः स्फ्यप्रकीर्तितः ।
 खड्गाकारोरत्निमात्रो वज्ररूपोमखेस्मृतः ॥ ७ ॥
 अंगुष्ठपर्वमात्रन्तु तीक्ष्णाग्रं पृथुवक्रकम् ।
 श्रितावदानं प्रादेश मात्रदीर्घमुदाहृतम् ॥ ८ ॥
 इध्मजातीयमिदमार्धं प्रमाणं मेऽक्ष्णं भवेत् ।
 अभ्रिस्तीक्ष्णमुखाज्ञेया खादिरारत्निसंमिता ॥ ९ ॥
 उपवेशोरत्निमात्रो हस्ताकारस्तुखादिरः ।
 अन्तर्धानकटः प्रोक्तो द्वादशांगुलसंमितः ॥ १० ॥
 अर्धचन्द्रसमाकारः किञ्चिदुच्छ्रितशीर्षकः ।
 षडंगुलप्रमाणन्तु षड्वर्तचतुस्त्रकम् ॥ ११ ॥
 तथाचोभयतः खातं वारणं तत्प्रक्षते ।
 यजमानासनं पत्न्याः आसनं च पृथक् पृथक् ॥ १२ ॥

होत्रासनंतथाब्रह्मासनंविस्तारयोगतेः ।

अरत्निमात्राण्येतानि कथितानिमनीषिभिः ॥ १३ ॥

अर्थ—उलूखल मूसल काष्ठ के होने चाहिये पत्थर के नहीं अच्छे पुष्ट और दृढ़ बने हों लम्बाई इच्छानुसार करें अथवा नाभि मात्र ऊंचे करे खैर का मूसल और ढाक का उलूखल बनावे कहीं गुलर का बनाना लिखा है अथवा दोनों वरना वृक्ष के बनावे यह नहो तो अन्य यज्ञीय वृक्ष के हों पर वरना मुख्य है छाज बांस का ही हो सिरंकी आदि का नहीं कुशाका कूर्च बाहु मात्र मकराकार बनावे अग्निहोत्र में अग्निहोत्र हवणी व स्त्रुव कूर्च पर धरी जाती है शिल पत्थर की इच्छानुसार बनावे लोढ़ा गोल एक बिलस्त के परिमाण का हो इडापात्री दो प्रादेश २४ अंगुल लम्बी बीच में संकुचित पतली निर्माण करें भाग परिहरण के समय में इस में सब पुरोडाशादि हवियों के अंश लेकर यजमानों को ऋत्विज पांच भाग धरके उपह्वान करते हैं इसी को पंचावत्तइडा कहते हैं दूसरी हविष धरने की बड़ी पात्री को पिष्टपात्री कहते हैं पुरोडाशपात्री १२ अंगुल लम्बी चौड़ी समचतुष्कोण अर्थात् जिस इष्टि में जितने पुरोडाश हों उतनीही पुरोडाशपात्री रखें शम्या १२ अंगुल लम्बी हो जिसे गाड़ी के जुपमें लगाते हैं जो लोकमें सला कहाती है यह इष्टियोंमें हविष पीसते समय उत्तरको अग्र भाग कर शिल के नीचे लगाई जाती है और सोमयागमें सोम ले चलने के समय शकट में बैल जोतने के समय लगाई जाती है यह खैर की होती है और स्फ्य खड्ग के आकार अरत्नि (२४ अंगुल) लंबा दृढ़रूप होता है शृतावदान एक प्रादेश मात्र लंबा अंगुष्ठ के पोरुषभर जिसका मुख मोटा चौड़ा हो अग्रभाग इतना तीक्ष्ण हो कि जिससे पक्क पुरोडाश के टुकड़े हो सकें इसी से इस की शृतावदान संज्ञा है । सामिधेनी ऋचाओं में चढ़ाने वाली समिधा जिन जिन ढाकवेल कंभारी आदि वृक्षों की होती हैं उन्हीं काष्ठों में किसी का प्रादेश मात्र लंबा अग्रभाग करके उसमें करछी के सदृश गोल अंगुष्ठ के पोरुष की समान व्यासवालाचरु के अवदान करने का पात्र मेक्षण कहाता है एक अरत्नि मात्र लंबा अग्र भाग में तीक्ष्ण अभ्रिवेदी खोदने के निमित्त बनानी चाहिए यह भी खैर की हो कपालोपधानादि के समय अग्नि के अंगार संभालने के निमित्त हस्ताकार खैर का एक अरत्नि मात्र लंबा उपवेश बनावे आधे चंद्रमा की समान बारह अंगुल का अन्तर्धान कट कुछ ऊंचे शीर्षवाला बनावे

पत्नी संयाज में देवपत्नियों को आहुति देते समय यह गार्हपत्यकुण्ड से पूर्व में किया जाता है दोनों ओर खानों वाला बारह अंगुल लम्बा षड्वर्त होता है इस में आग्नीध्र के भोजन को छाया पृथिवी सम्बन्धी दो भाग रखे जाते हैं यजमानासन पत्न्यासन होत्रासन ब्रह्मासन यह चौबीस अंगुल लम्बे हों चतुष्कोण हों वरना के बने हों सब पात्र मूल जानने के निमित्त मूल की ओर कुछ गोल और मोटे हों अग्र-भाग की ओर वैसा चिन्ह न हो । निथ्य अग्निहोत्र होम के निमित्त अग्निहोत्र हवणी नामक स्त्रुव विकङ्कतका होना चाहिए पौर्णमासादि इष्टियों में यही प्रोक्षणीपात्र होता है अग्निहोत्र होम का स्त्रुव विकङ्कतका ही हो पौर्णमासादिकस्त्रुव खैर का हो सोमयाग में ग्रहचमस और द्रोण कलशादि पात्र विकङ्कतके होने चाहिए उनमें हविर्धान (सोम ले चलने का शकट) अधिप्रवण (सोम कूटने की चौकी) परिप्लवा संभरणी आदि होम से भिन्न कार्यों के पात्र वर्णन के ही हों षोडशी याग का पात्र खादिर का हो अश्वदाभ्य ग्रहग्रहण का पात्र गलर का हो वाजपेय याग में ११ सोम ग्रहपात्र और १७ आसव ग्रहपात्र वर्णन के ही होते हैं कोई आसव ग्रहपात्र मट्टी के कहते हैं यज्ञपार्श्व ग्रंथ में यज्ञ के चमस नाम सोम पीने के पात्रों का इसप्रकार वर्णन है—

चमसानांप्रवक्ष्यामि दण्डास्तुश्चतुरंगुलाः ।

त्र्यंगुलस्तुभवेत्स्कन्धो विस्तारश्चतुरंगुलः ॥ १४ ॥

विकंकतमयाःश्लक्ष्णास्त्वग्विस्तारश्चमुसाःस्मृताः ।

दशांगुलमितादीर्घाश्चतुरंगुलविस्तृताः ॥ १५ ॥

चतुरंगुलस्वाताश्च दण्डास्तुद्वयंगुलामताः ।

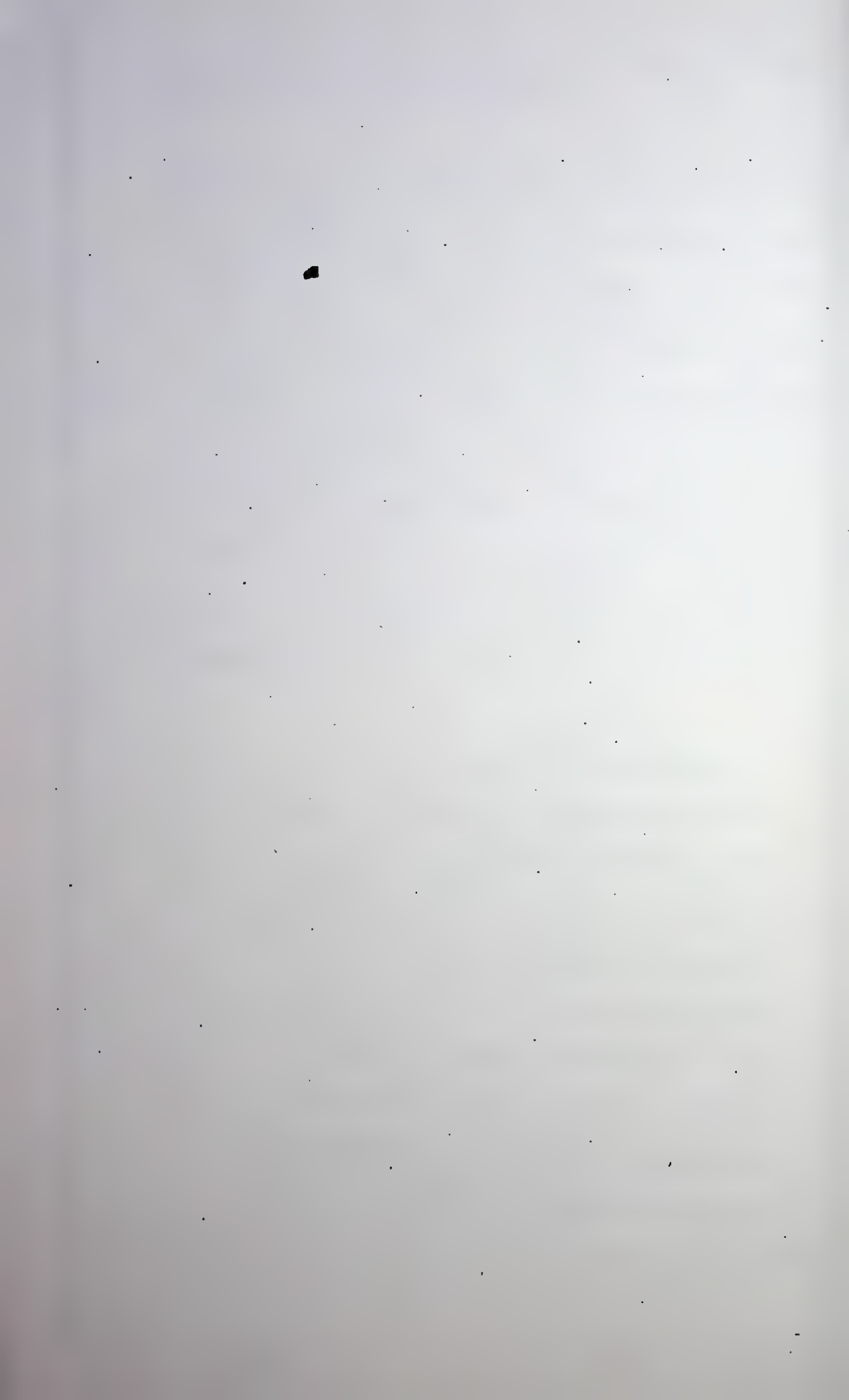
षडंगुलमितोच्छ्रायास्तेषांदण्डेषुलक्षणम् ॥ १६ ॥

अन्येभ्योवापिवाकार्या तेषांदण्डेषुलक्षणम् ।

होतुर्मंडलएवस्याद्ब्रह्मणश्चतुरमूकः ॥ १७ ॥

उद्गातृणाञ्च त्र्यस्त्रिःस्याद्याजमानःपृथुःस्मृतः ।

प्रशास्तुस्वतष्टःस्यादुत्तष्टोब्रह्मशंसिनः ॥ १८ ॥



पोतुंग्रेविशाखीस्यान्नेष्टुः स्याद्विगूहीतकः ।

अच्छावाकस्य रास्नाव आग्नीध्रस्य मयूखकः ॥ १९ ॥

इत्येतेचमसाः प्रोक्तान्द्विजायज्ञकर्मणि ।

पलाशाद्वावदाद्धान्यवृक्षाद्वाचमसाः स्मृताः ॥ २० ॥

नैयग्रोघाश्चममाश्चतुर्ग्राः प्रस्थोदकग्राहिणः ॥

इति निगमेर्विशेषः । स्मृत्यर्थसारे—

समित्पवित्रं वेदं च सुसलोत्सवं गृहान् ।

नाभ्युत्सासन्द्युपस्वाञ्छम्यामुक्पुष्कर्णच ॥ २१ ॥

शाखास्वरूपविषयानिचरूपांमेक्षणानिच ।

कुर्यात्प्रादेशमात्राणि महावीरास्त्रयस्तथा ॥ २२ ॥

द्रोणकलशः पलशतग्राही पारिल्लवाकृतिः ।

जानुमात्रमुलूखलं पालाशम् । पञ्चविंशतिपलमिडापात्रम् ॥

मुसलंखादिरंय्यरत्नि । अरत्निप्रमाणाद्व्यदित्यादि ॥

अर्थ—सब चमसों की डंडी चार अंगुल होनी चाहिए उनकी डंडी के समीप तीन अंगुल के स्कंध हों उनकी लम्बाई चार अंगुल हो यह सब विकङ्कतके हों चिकने बने हों उनमें त्वचा की ओर से गढ़ा खुदा हुआ हो (सब चमस दश अंगुल लम्बे चार अंगुल चौड़े चार अंगुल खातवाले दो अंगुल के दण्ड और छः अङ्गुल ऊँचे हों) अथवा अन्य यज्ञीय वृक्षों के बने हों पर उनके डंडों में ऐसे चिन्ह करने चाहिए जिससे विदित हो जाय कि यह अमुक ऋत्विज का है होता का गोलाकार ब्रह्मा का चतुष्कोण उद्गाता का त्रिकोण यज्ञमातृ का हाथ की बराबर लम्बा प्रशास्ता का नीचे से छिन्न ब्राह्मणाच्छन्नीका ऊपर से छिन्न पोता का अग्रभाग में विशाखावाला नेष्टा का अग्रभाग में ग्रहीत (जिन्में गन्ध और दुहरी रेखा हों) अच्छा वाक का रास्ना व आग्नीध्र का मयूख के आग्रभाग में तीक्ष्ण हो यह सब चमस यज्ञ कर्म में पञ्चाश वा अन्य वृक्षों के बने हों उनमें इतना विशेष है किन्यग्रोध वृक्ष के लौकोप में रखा जाय उसका नाम हो तथा समिध पवित्र वेद सूसल

उलूखल ग्रहनाभि हण्डी चौकी उपरवशम्या स्रच्चोके मुखशाखा स्वरूप कृष्णविषाणा
चरुओं के मेक्षण (कुर्छी) तीनों महावीर यह सब प्रादेश मात्र बनावै सौ पल रस
समानेवाला तौबे के आकार द्रोण कलश बनावै जानु मात्र व सवा हाथ लम्बा ढाक
का उलूखल यज्ञ में बनावै पच्चीस पल रस समानेवाला इडा पात्र बनावै खादिर का
मूसल ३ अरदिन ढाई हाथका लम्बा हो २० वा चौबीस अंगुलकी सिल होनीचाहिण ।

आजस्थालीतैजसीवा मृनमयीवप्रकीर्तिता ।

द्वादशांगुलजिस्तीर्णा प्रादेशौच्चाशुभास्मृता ॥ २३ ॥

आजस्थालीसमानैव चरुस्थालीप्रशस्यते ।

प्रणीतावारणाग्राह्या द्वादशांगुलसम्मिता ॥ २४ ॥

स्वातेनहस्तलंबदाकृत्यापञ्चपत्रवत् ।

खादिरोवाहुमात्रस्तु जुह्वुक्कमंज्ञकःसुवः ॥ २५ ॥

अरन्निमात्रोहंसास्यो वर्तुलोंगुश्चपर्ववत् ।

अर्धपर्वप्रणाल्याच युक्तोनासाकृतिर्भवेत् ॥ २६ ॥

उपभृत्सुग्ध्वासुक्च पुस्करसुक्तथैवच ।

अग्निहोत्रस्यहवणीतथावैकङ्कतःसुवः ॥ २७ ॥

एतेचान्येचवहवाः सुवभेदाप्रकीर्तिताः ।

वर्तुलोस्याःशंकुमुखा पर्यवाताःममानकाः ॥ २८ ॥

अश्वत्थोयःशमीगर्भः प्रशस्तोर्वाममुद्भवः ।

तत्पयाप्रांमुखीशाखा उदीचीचोर्ध्वगापिवा ॥ २९ ॥

अरणिस्तन्मयीप्रोक्ता तन्मध्येचोत्तरारणिः ।

सारवद्धारवंचात्रमोविलीचप्रशस्यते ॥ ३० ॥

संसक्तमूलोयःशम्यः सशमीगर्भउच्यते ।

अलाभेत्वशमीगर्भा दाहगेदविलम्बितः ॥ ३१ ॥

चतुर्विंशतिरंगुष्टैर्दध्यषडपिपार्थिवम् ।

चत्वारउच्छ्रयेमानमरण्योःपरिकीर्तितम् ॥ ३२ ॥

अष्टांगुलःप्रमस्थः(प्रमन्थः)स्याच्चात्रस्याद्द्वादशांगुलम् ।

ओविलीद्वादशैवस्यादेतन्मन्थनयंत्रकम् ॥ ३३ ॥

अंगुष्ठांगुलमानंतु यत्रयत्रोपदिश्यते ।

तत्रतत्रबृहत्पर्वगृथिभिर्मिनुयात्मदा ॥ ३४ ॥

गोवालैःशणसंमिश्रैस्त्रिभृतममलात्मकम् ।

व्यामप्रमाणंनेत्रस्यात्प्रमथ्यस्तेनपावकः ॥ ३५ ॥

मूर्द्धाक्षिकर्णवक्त्राणि कंधराचापिपंचमी ।

अंगुष्ठमात्राण्येतानिद्वयंगुलंवक्षउच्यते ॥ ३६ ॥

अंगुष्ठमात्रंहृदयंगुष्ठमुदरंस्मृतम् ।

एकांगुष्ठाकटिर्जंघा द्रोवस्तीक्ष्णौचगुह्यकम् ॥ ३७ ॥

उरुजंघेचपादौच चतुस्त्रयेकैर्यथाक्रमम् ।

अरण्यवहवाह्येते याज्ञिकैःपरिकीर्तितः ॥ ३८ ॥

यत्तद्गुह्यमितिप्रोक्तं देवयोनिस्तुमोच्यते ।

अस्यांयोजायतेवन्हिः सकल्याणकृदुच्यते ॥ ३९ ॥

यजमानस्यपात्रीच पत्नीपात्रीतथैवच ।

मखेकृष्णाजिनंग्राह्यं तदखण्डंविशिष्यते ॥ ४० ॥

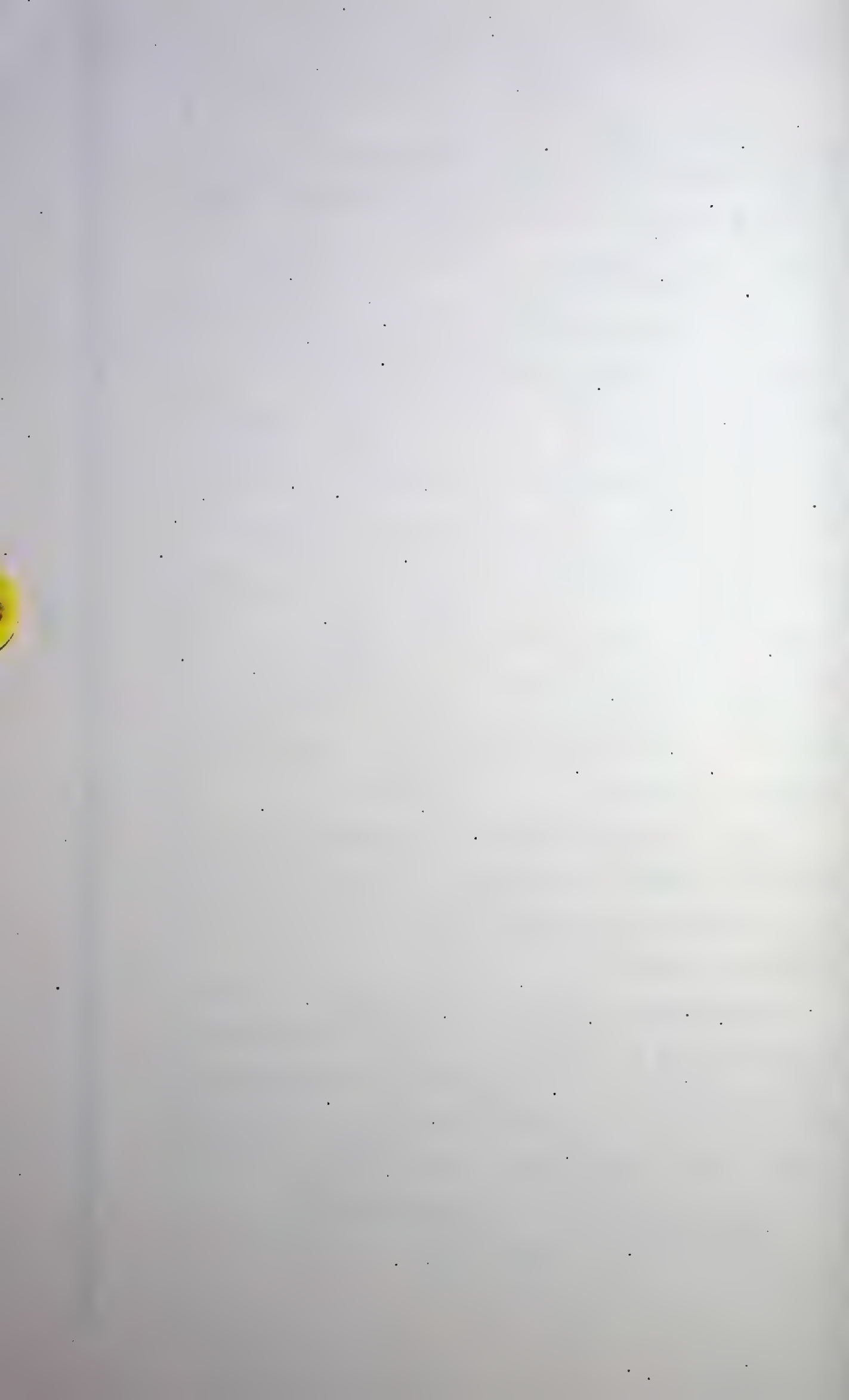
अर्थ—आज्यस्थाली चाँदी वा मिट्टी की बनावै जो विस्तार में बारह अंगुल की प्रादेशमात्र ऊँची हो आज्यस्थाली की समान ही चरुस्थाली होती है प्रणीतापात्र वरने का बनावै यह बारह अंगुल का हो हथेली की समान खुदा हुआ आकृति में कमलपत्र की समान हो जुहूसंज्ञक सूत्रा खैर का बना हुआ बाहुमात्र लम्बा हो २४ अंगुल लम्बा हो अंगुष्ठ के पोरुप के समान गहरा हंस के मुख की समान घृत गिरने के निमित्त ढालू नाली से युक्त नासिका की समान आकृति हो उपभत् सूक ध्रुवासूक

पुष्कर सुक अग्निहोत्र हवणी वैकंकत सुव यह तथा और भी अनेक सुवों के भेद हैं यह गोलमुख शंकुमुख पर्व में खुदेहुए समानही होने हैं अब अरणीको कहते हैं जो पीपल अच्छी भूमि में उत्पन्न हुआ हो उस के मध्य में शमी का वृक्ष उगा हो उसकी जो पूर्व उत्तर वा ऊपर को गई शाखा हो उस की अरणी होती है उसी के मध्य की उत्तर अरणी होती है और रचे हुये सारवाले काष्ठ की ओविली बनती है जो शमी के मूल का काष्ठ है उसको शमीगर्भ कहते हैं यदि शमीगर्भ न मिले तो ऊपर के ही काष्ठ की निर्माण करै २४ अंगुष्ठ लम्बी और छः अंगुल चौड़ी हो और चार अंगुल की ऊँची हो यह अरणी का मान है. १८ अंगुल का प्रमथ होता है १२ अंगुल का चात्र हो ओविली १२ अंगुल की हो इसप्रकार यह मन्थन यन्त्र बनता है जहां जहां अंगुष्ठ अंगुल का मान दिया है वहां वहां बड़े पोरण की ग्रंथि से प्रमाण मानें गोबाल और सन मिलाकर तिलड़ी रस्सी करै यह रस्सी व्याममात्र* बड़ी हो इस से अग्नि मथी जाती है शिर नेत्र कान मुख कंधे यह सब एक अंगुष्ठमात्र हों छाती दो अंगुल की अंगुष्ठमात्र हृदय तीन अंगुष्ठ का उदर एक अंगुष्ठ की कटि दो की बस्ती अंगुष्ठ का गुह्यस्थल उरु जंघा चरण यह क्रम से चार तीन एक अंगुष्ठ के हैं यह अरणी के अवयव यज्ञ के ज्ञाताओं ने कहे हैं जो गुह्यस्थल है वही देवयोनि है इससे जो अग्नि उत्पन्न होती है वह कल्याणकारी कहाती है यजमानपात्री पत्नीपात्री अरतिमात्र की लेनी और यज्ञ में अखंडित कृष्णाजिन मृगचर्म ग्रहण किया है पीछे यज्ञपात्रों की आकृति और उनके नाम लिखे हैं। इति यज्ञपात्राणि।

पाठकवर्ग ! अब विचार कर देखें कि वास्तव में दयानन्दजी ने जो यज्ञपात्र रक्खे हैं वह इन से मिलते हैं या नहीं जब कि इन शास्त्रोक्तपात्रों से न मिलें तो क्या उनको कल्पित कहना या आर्यसमाज के द्वारा उनका त्याग होना कोई पाप है प्रतिनिधि इसपर विचार करेगी।

स्वामी दयानन्दजी ने लिखा कि हवन से जल वायु शुद्ध होता है पं० ज्वाला-प्रसादजी लिखते हैं कि यदि ऐसा है तो फिर इन थोड़ी सी आहुतियों से क्या होगा किसी आहुतियेकी दुकान में आग लगा दीजिये ताकि एकदम जलवायु बिल्कुल स्वच्छ निर्मल होजावे इस के ऊपर पं० तुलसीराम लिखते हैं कि आप किसी हलवाई की दुकान लूट खाइये या अनाज की मण्डी में चरवण कर कीजिये ताकि हमेशा को

* दोनों भुजाओं को मिलाकर जो घेरा बनता है उसे व्याम कहते हैं।



भूख बिदा होजावे पाठक विचार करें पं० ज्वालाप्रसादजी का लेख तो ठीक है अग्नि हजारों मन घी को दो चार घण्टे या एक दिन में खा सकती है किन्तु पं० तुलसीराम का कथन तो सर्वथा मिथ्या और असम्भव है जो पं० ज्वालाप्रसाद को हलवाई की दूकान खाना लिखा। मनुष्य एक नादाद रखता है पेट भरने पर वह नहीं खासकता चाहे आप कितने ही जिद्दी आर्यसमाजी को ले आये किन्तु वह एक दिन में १० मन अन्न नहीं खा सकेगा नहीं मालूम पं० तुलसीराम ने असम्भव लेख क्यों लिखा या तो क्रोध में विचार जाता रहा नहीं तो किसी शुद्धि की पान्ति में या काशी जैसे ब्रह्मभोज में पं० तुलसीराम ५० या ६० मन खाचुके हैं नहीं तो क्या पं० तुलसीरामजी असम्भव लिख देते क्या यह किसी मनुष्य की समझ में आसकता है कि पं० तुलसीराम को सम्भव (मुमकिन) असम्भव (गैर मुमकिन) का ज्ञान न हो इस के ऊपर दो लाख समाजियों को विचार करना चाहिये।

द्वितीय—हम माने लेते हैं कि समाज के रजिस्टर में नाम लिखवाने से यह शक्ति आजाती है कि वह अस्सी नव्वे मन गेज खासकता है फिर नतीजा क्या वह जितना भी खाले किन्तु उसके खाने से उसी एक मनुष्य की भूख जावेगी दूसरे की नहीं पहिले आध सेर नाज में भूख जाती थी अब ८१ मन में जाती है लाभ क्या हुआ ? कुछ नहीं। पं० ज्वालाप्रसाद के बतलाये कार्य में लाभ है थोड़ी थोड़ी आहुतियों से जल वायु थोड़ा शुद्ध होता था अब अधिक हो जावेगा नतीजा यह निकला कि अन्य समाजी को हवन करने की आवश्यकता न रही दो लाख समाजी हवन करके जिस कार्य को करते उस को उतनाही दूकान करगई अब तो जल वायु बिल्कुल स्वच्छ होगये।

पं० ज्वालाप्रसादजी लिखते हैं कि जल वायु की शुद्धि तो प्राकृत नियम से स्वतः ही होती रहती है पं० तुलसीराम इसका उत्तर देते हैं कि दुर्गन्धयुक्त पदार्थों के सुगन्ध का प्रसाद परमात्मा करने हैं वैसेही मनुष्यों के उत्पन्न किये गये दुर्गन्ध फैलाना रूप पाप की निवृत्ति के लिये वा अग्नि वायु जल आदि भौतिकदेव ऋण की निवृत्ति करने अर्थात् जलादि अशुद्धको शुद्ध करने के लिये परमात्मा ने हमको हवन का फल बतलाया है क्या मसखरी की बात है परमात्मा शुद्ध करते हैं इसी कारण से आर्यसमाजी भी जल आदि की शुद्धि करने हैं जो काम ईश्वर करेगा वही आर्यसमाजी करेंगे। ईश्वरने तो सृष्टि रची है अब आर्यसमाजी भी रचें। ईश्वर ने वेद बनाये हैं अब आर्यसमाज का प्रत्येक मनुष्य वेद बनावेगा। जो काम ईश्वर करता है उस को

तुम कैसे कर सकोगे ? दयानन्दके सिद्धान्तानुसार ईश्वर तो शरीर नहीं धारण करता तो क्या तुम भी शरीर धारण करना छोड़ दोगे ? आर्यसमाजी हवन क्या करते हैं ईश्वर की बराबरी करते हैं यदि ईश्वरने किसी आर्यसमाजी को नरक में भेज दिया तो वह आर्यसमाजी भी ईश्वर को नरकमें ढकेल देगा । (२) पं० तुलसीराम लिखते हैं कि दुर्गत फैलाना रूप पाप की निवृत्ति के लिये हवन है इसके विरुद्ध स्वामी दयानन्दजी लिखते हैं कि जो पाप होना है वह बिना भाग कभी नहीं छूटता चाहे कैसा भी प्रायश्चित्त करे तो अब इन दो बातों में से किस की बात मानें ? हवन के बताने का क्या यही प्रयोजन तो नहीं कि स्वामी दयानन्द के लेखपर हड़ताल लगादी जावे ? (३) पं० तुलसीरामजी भौतिकदेव की ऋण निवृत्त्यर्थ हवन बतलाते हैं भौतिक देव का ऋण मनुष्य के ऊपर रहता है यह किमी शास्त्र का लेख नहीं किन्तु पं० तुलसीरामजी देवयोनि सिद्ध होने के भय से डर कर भौतिक देवता मानते हैं इस में दो नतीजे निकलेंगे एक तो यह कि १ हण्डा पानी और एक थोकरी कूड़ा तथा गर्म २ तमाखू का गुल आर्यसमाज के देवता ठहरेंगे । द्वितीय जहां पर वेद में देवताओं का पूजन लिखा है वहां पर या तो इन्हीं का पूजन करना होगा नहीं तो पूजन बतलाने वाले वेद को छोड़ देना होगा । वेद ने दय्यानि में उत्पन्न देव लिये हैं और उनका ऋण इस हवन से त्रिकाल में भी नहीं छूटता बात तो यज्ञोंसे उतरता है उसको श्रुति इस प्रकार बतलाती है—

ब्राह्मणो हवै जाय मानस्त्रिभिर्ऋणैर्ऋणवाज्जायते यज्ञेन
देवेभ्यः प्रजया पितृभ्यः स्वाध्यायेनर्षिभ्यः

अर्थ—उत्पन्न हुआ जो ब्राह्मण है वह तीन ऋणों से ऋणवान् है यज्ञ से देव ऋण प्रजा से पितृ ऋण और स्वाध्याय (वेद पाठ) से ऋषि ऋण का भार उतरता है यहां पर ब्राह्मण शब्द द्विज का उपलक्षण है इस कारण ब्राह्मण शब्द से ब्राह्मण क्षत्री वैश्य लिये जाते हैं ।

इस श्रुति में देवऋण का उतारने वाला यज्ञ कहा है न कि हवन । आज कल वेदों की अनभिज्ञता तथा स्वामी दयानन्द के बहकाने से मनुष्यों का कुछ समुदाय पेसा भी होगया है कि जो हवन को ही यज्ञ कहता और मानता है किन्तु वेद ने हवन को यज्ञ नहीं माना और यज्ञ को हवन नहीं माना ।

वेदों में अग्निहोत्र, इष्टि, हवन, यज्ञ, ये कर्म पृथक् २ गिनाये हैं सब से प्रथम मनुष्य अग्निहोत्र करता है अग्निहोत्र सपत्नीक (स्त्री वाला) पुरुष ही कर सकता है जिसके स्त्री नहीं वह नहीं कर सकता । विधवाविवाह नियोग करनेवाला अग्निहोत्र का अधिकारी ही नहीं है । अग्निहोत्र करनेवाले पुरुष की स्त्री एकपत्नी सच्ची पतिव्रता होनी चाहिये नहीं तो शुभ के बदले अशुभ होगा इस कर्म में अग्नि शान्त नहीं होता यदि हुताग्नि शान्त हो जावे तो कर्ता को प्रायश्चित्त करना होगा ।

अग्निहोत्र करने के पश्चात् मनुष्य इष्टियों का अधिकारी होता है दर्श पौर्णमास आदि इष्टियों के नाम हैं यजुर्वेद के प्रथम अध्याय से इनका वर्णन चलता है । इष्टि करने के पश्चात् फिर मनुष्य यज्ञ का अधिकारी होता है यज्ञों में चैतन्य देवताओं के उद्देश्य से हवि दी जाती है । साम, वाजपेय, सौत्रामणि, अश्वमेध आदि यज्ञों के नाम हैं ।

किसी खास देवता के उद्देश्य को लेकर जो इष्टि की जावे वह होम कहलाता है । रुद्र होमादि इनके नाम हैं । रुद्र होम का वर्णन यजुर्वेद के अध्याय १६ में है इनसे भिन्न स्वामी दयानन्द का बतलाया हवन वैदिक ग्रन्थों में कहीं पर भी लिखा नहीं मिलता यह इन्होंने अपने आप चलाया है किसी समाजी में इतनी शक्ति न थी न है न होगी जो स्वामी दयानन्द के लिखे हवन को वैदिक सिद्ध कर दे ।

यद्यपि स्वामी दयानन्दजी ने वेद के अर्थ बदल कर वेद में से अग्निहोत्र, इष्टि, यज्ञ, होम, ये सब निकाल दिए और वेद को फौजी कानून इज्जन आदि तैयार करने शिल्प विद्या और साइन्स बना दिया है तथापि स्वामी दयानन्द के किये अर्थ इतने अयुक्त हैं कि पढ़ने ही फौरन मालूम हो जाता है कि स्वामी दयानन्द ने वेद का अर्थ नहीं किया किन्तु गला घोटा है दुर्जन तोषन्याय से हम यह भी माने लेते हैं कि स्वामी दयानन्द का अर्थ ठीक है तथापि यह कौन मान लेगा कि वेद में यज्ञों का वर्णन नहीं वेद में यज्ञ नहीं हैं और भारतवर्ष में अश्वमेधादि एक भी यज्ञ कभी भी नहीं हुआ स्वामी दयानन्द ने यज्ञों को वेद में से हमेशा के लिए छुट्टी दे दी और इस अनर्थ को पं० तुलसीराम आदि आदि लाखों आर्य समाजियों ने मान लिया कि वेद में यज्ञ न थीं न हैं न हो सकती हैं जब वेद से यज्ञ बिदा मांगगई तब पं० तुलसीराम लिखते हैं हवन से देवकृष्ण का भार उतरेगा । पं० तुलसीराम आदि भले ही पक्षपात में पड़कर वैदिक कर्मयज्ञों को तिलाञ्जलि दे दें किन्तु विचार-

शील मनुष्य यह कभी स्वप्न में भी नहीं मान सकता कि वेद में यज्ञ नहीं। जबकि वेद में यज्ञों का अस्तित्व मौजूद है जब कि वेद बुलन्द आवाज से कह रहा है कि यज्ञों के करने से देवऋण छुटता है फिर वेद का धक्का देकर सिर्फ पं० तुलसीराम के कहने से हवन से देवऋण का छुटना कैसे मानलें क्या कभी कोई आर्यजमाजी इस के ऊपर विचार करेगा कि देवऋण हवन से नहीं उतरता किन्तु यज्ञ से छूटता है।

पं० ज्वालाप्रसादजी ने लिखा कि जल वायु की शुद्धि तो ईश्वर प्राकृत नियम से करता रहता है इसके ऊपर पं० तुलसीराम ने लिखा कि प्राकृत पदार्थों से जैसे परमात्मा दुर्गन्धि दूर करते हैं वैसे ही हम भी करें। हम पूछते हैं कि जब परमात्मा दुर्गन्धी को हटाकर शुद्ध करदेता है तब फिर आपके शुद्ध करने की क्या आवश्यकता है? क्या आप परमात्माकृत शुद्धि को शुद्धि नहीं मानते? क्या परमात्मा की शुद्धि कुछ नीचे दर्जेकी है और आप कुछ बढ़िया शुद्धि करेंगे? क्या जितना शुद्ध करनेका ज्ञान आपको है उतना परमात्मा को नहीं यदि वास्तव में परमात्मा-प्राकृत नियम से शुद्धि ठीक कर देता है और आप उस की शुद्धि का सर्वोत्तम मानने हैं तो फिर समाज की शुद्धि करने से क्या होगा? जब कि घर में आटा पिसकर आगया तब उस पिसे हुए आटे को फिर पीसना यह भी कोई बुद्धिमत्ता है?

इसके आगे पं० तुलसीरामजी लिखते हैं ईश्वर ने हम को हवन करना वेद में बतलाया है यह लिख "बसोः पवित्रमसि" वेद का मंत्र दे इस के अर्थ में लिखते हैं कि यज्ञ पवित्र है। इसके ऊपर हमको एक छोटासा किस्सा याद आगया—एक यात्री (मुसाफिर) सड़क पर चला जाता था उसको घोड़े का कोड़ा (चाबुक) पड़ा दिखलाई दिया दौड़कर उठाया और हाथ में लेकर राग गाने लग गया कि "रह गई बात थोड़ी—जीन लगाम घोड़ी" इसका कथन है कि अब पैदल न चलना पड़ेगा सवारी करने के लिये अब थोड़ी सी कसर रह गई केवल जीन (काठी) लगाम और घोड़ी की कसर है अब आगे चलकर इसी सड़क पर कहीं वह भी मिल जावेगी बस फिर बन्दा तो घोड़ी की पीठपर दिखलाई देगा। जिसप्रकार कोड़े के मिलने से इस मनुष्य ने अपने को सवार मान लिया था इसीप्रकार पं० तुलसीराम "बसोः पवित्रमसि" मन्त्र के पवित्र पद को देखकर प्रसन्न होगए, बाग बाग होगए समझ लिया कि अब हवन से जल वायु की शुद्धि सिद्ध करने में देरही क्या रह गई। क्या कोई मनुष्य इस बातको मान लेगा कि पवित्र शब्दसेही जलवायुकी शुद्धि

निकल पड़ेंगी ? क्या कोई मनुष्य समाज के हवन को यज्ञ मान लेगा ? क्या यज्ञ पवित्र है इस इतने शब्द से जलवायु की शुद्धि समझ ली जावेगी ? फिर यह भी कोई मान लेगा "बसोः पवित्रमसि" मन्त्र की इस पृष्ठ का तो अर्थ कर लिया जावे और शेष मन्त्र "द्यौरसि पृथिव्यसि मातरिश्वनोऽथर्मोसि" छोड़ दिया जावे क्या इस मन्त्र को आर्यसमाज नहीं मानती ? यदि मानती है तो इसका अर्थ क्यों नहीं लिखा ? यदि इसका अर्थ लिख दें तो बस फिर हवन से जलवायु की शुद्धि की इतिश्री ही होजावे । मन्त्रों के टुकड़े करके अर्थ निकालना और वाक्यों के मन्त्र को फिजूल चाहियात समझना कितनी आस्तिकता है इसका निर्णय पाठकों पर छोड़ा जाता है । पं० तुलसीरामजी मन्त्र के अर्थ में "दिव्यगुणयुक्त" "विस्तरायुक्त" "वायुशोधक" यह तीन पद अपनी तरफ से मिलाते हैं यदि न मिलावें तो उनमें शुद्धि का पता ही नहीं चलेगा । खैर जो कुछ हुआ वह तो हुआ किन्तु इतनी खुशी है कि जिन शब्दों को ईश्वर वेद बनाने के समय भूल गया था और जिनके बिना वेद मन्त्र का अर्थ ही नहीं होता था आज उन शब्दों के मिलानेवाले भी मौजूद हो गए, आर्यसमाज भलेही इस कार्य को धार्मिक समझे, भले ही पं० तुलसीराम को ईश्वर का भी ईश्वर समझे किन्तु हम इस काम को पाप समझते हैं कोई भी विचारशील मनुष्य ऐसे अर्थ को तोषदायक नहीं समझता कि जिसमें अपनी तरफ से शब्द मिला मिलाकर असली अर्थ को बलि के दर्वाजे (पाताल) भेजा जाता हो ।

यदि घटाने या बढ़ाने में शक अर्थ मान लिया जावेगा तब तो अनर्थ होजावेगा किसी न किसी दिन इसी वेद में से मक्का मस्जिद गंजे नमाज भी निकल पड़ेंगी । और यदि ऐसा अर्थ करने लगें तो चोरी व्यभिचार आदि पाप भी धर्म होजावेंगे । यह खुदगर्जी और और मनुष्यों में रहता है आज खुदगर्जी में पड़कर पं० तुलसीराम कुछ के कुछ अर्थ कर रहे हैं कल को और भी करेंगे बस वेद का बचना तो बिल्कुल गैर मुमकिन हो जावेगा हमें विश्वास है कि इसप्रकार के अर्थों से प्रतिनिधि भी घृणा करती होगी ।

"बसोः पवित्रमसि" यह मन्त्र यजुर्वेद अध्याय प्रथम दर्श पौर्णमास इष्टि प्रकरण का है इस मन्त्र को बोलकर पलास शाखा में कुशा बांधी जाती है इस मन्त्र में पलास शाखा का वर्णन है इस के शाक्षी महीधर और उब्बट गिरधर आदि समस्त भाष्य तथा कातीय श्रौतसूत्र और शतपथ हैं यदि वास्तव में समाज वेद

मानती है तब तो हम दावे के साथ कह सकते हैं कि वेद जानतेही समाज आवाज उठावेंगी कि पं० तुलसीराम ने वेदों के गला घोटने में कुछ कसर नहीं रखी और वास्तव में इस मन्त्र में पलास शाखा का वर्णन है क्या कोई मनुष्य पं० तुलसीराम के अर्थ को सच्चा साबित कर सकता है ? हमें आशा नहीं कि कोई समाजी लेखनी उठावे । फिर पं० तुलसीराम यह भी कहते हैं कि शतशः प्रमाण वेद में इस बात के मौजूद हैं कि हवन से जलवायु की शुद्धि होती है क्या वेदकर्त्ता ईश्वर बार बार इसी बात को लिखता है दो मन्त्र कहे फिर एक जलवायु की शुद्धि का कह दिया फिर चार मन्त्र दूसरे प्रकरण के कहे फिर हवन की शुद्धि लिख दी फिर एक मन्त्र रेल तार का कहा कि फिर शुद्धि याद आ गई । यदि वेद ऐसा करता है तब तो वेद में पुनरुक्त (कहकर कहना) दोष आजावे और जहां पुनरुक्त दोष आया फिर वेद मानने के लायक ही न रहेगा क्योंकि गौतम न्याय शास्त्र में लिखते हैं "तद् प्रमाण्य मन्वृत व्याघात पुनरुक्त दोषेभ्यः" जिस में अनृत (झूठ) व्याघात (विरुद्ध कथन) पुनरुक्त (एक बात को कई बार कहना) ये दोष हों वह वेद भी अप्रमाण्य है । यहां पर पं० तुलसीराम का यही मतलब होगा कि इमों बहानों से वेदों में पुनरुक्त दोष बतलाकर संसार को वेदों से घृणा करा दें और यदि वास्तव में हवन के गुण जलवायु की शुद्धिकारक बारबार वेद में बतलाए हैं तो फिर उन मन्त्रों को दिखलाया क्यों नहीं जाता वेद में हवन से जलवायु की शुद्धि कहीं नहीं लिखी पं० तुलसीराम सोलह आना झूठ लेख लिखकर धमकी देते हैं यह कार्य योग्य है या अयोग्य यह विचार पाठकों के ऊपर रक्खा जाता है ।

पं० ज्वालाप्रसादजी लिखते हैं कि गन्धक को घर में क्यों नहीं रख लेते जिस से वायु शुद्ध होजावे इस के ऊपर पं० तुलसीराम कहते हैं कि गन्धक में तो दुर्गन्ध होती है यहां पर दुर्गन्ध के कारण गन्धक रखने का निषेध है यदि गन्धक में उत्तम गन्ध हो तो फिर पं० तुलसीरामजी हवन को बन्दकर गन्धक रखने की ही आज्ञा देते क्योंकि दुर्गन्ध के सिवाय और कोई हेतु ऐसा नहीं देते कि जिससे हवन ही करना पड़े और गन्धक रखने से हवन का काम न निकले अस्तु गन्धक को जाने दें उत्तम उत्तम इत्र तेल फुलेल घर में रख लें जिनसे शुद्धि होजावे अब इसके ऊपर एक भी उत्तर समाजियों के पास ऐसा नहीं कि वह फिर हवन की आवश्यकता दिखलावे इसपर तो पं० तुलसीरामजी ही क्या किन्तु किसी भी आर्यसमाजी के पास कोई हेतु ऐसा नहीं कि जिस से फिर हवन की सिद्धि हो ।

एक हवन पर ही क्या मुनहसर है स्वामी दयानन्दजी के समस्त ही सिद्धान्त ऐसे हैं । स्वामीजी के पास एक ब्राह्मण रहा करता था उसने एक दिन ऐसा तमासा किया कि मारे हंसी के पेट फूलगये वह बाल बनवाकर आया और स्वामी दयानन्दजी से बोला कि स्वामीजी मैं बाल बनवा आया स्वामीजी ने कहा कि अच्छा किया इसमें डुग्गी पीटने की क्या आवश्यकता है ब्राह्मण ने उत्तर दिया कि डुग्गी की तो कोई आवश्यकता नहीं किन्तु आज तो ऐसे बाल बनवाये हैं कि जिन की समस्त कथा स्वामीजी को तो सुनानी ही पड़ेगी स्वामी बोले आज ऐसी क्या बात है ब्राह्मण ने हँस कर कहा कि आज बाल क्या बनवाये बिलकुल सफाचट करा दिये स्वामी जी ने कहा कि सफाचट तो तुम हमेशा ही करवाने थे आज क्या हुआ ब्राह्मण देवता बोले कि आज भगवती चुटिया देवी का मन्दिर भी केश शून्य हो गया इसको सुनकर स्वामीजी बोले कि तुम बड़े नीच हो हिन्दू धर्म में सन्यासी को छोड़ कर क्या अन्य भी कोई मनुष्य चुटिया की सफाई करा सकता है ब्राह्मण ने कहा कि स्वामी आप ही ने तो लिखा है कि सन्या में चुटिया की गांठ लगा दे ताकि बाल न बिखरें अब न चुटिया रहेगी और न बाल बिखरेंगे सन्या में लिखा चुटिया में गांठ लगाने का पचड़ा अपने आप बिदा हो गया और हम भी एक निकम्मे फिजूल काम से छुट्टी पा गये इतना सुनते ही स्वामी दयानन्दजी ने नीचे को मुँहकर लिया और इनको कुछ भी उत्तर न सझा ।

चुटिया कटवाने से सन्या में चुटिया की गांठ गई शरीर शुद्ध हो तो स्नान गया आलस्य न हो तो मार्जन गया और गन्धक में दुर्गन्ध न हो तो हवन गया गन्धक को जाने दीजिए हवन का फल तो इत्र तेल फुलेल से ही सिद्ध हो जावेगा ।

पं० तुलसीरामजी ने जो गन्धक में दुर्गन्ध बतलाई है क्या इससे गन्धक की वायु शोधक शक्ति मिट गई समस्त वैद्य डाक्टर इस बात को कहते हैं कि गन्धक की धूनी देने से हैजा प्लेग की वायु शुद्ध हो जाती है चाहे उसमें दुर्गन्ध हो या सुगन्ध किन्तु वायु के शुद्ध करने की शक्ति उसमें मौजूद है हैजे प्लेग आदि वायु की शुद्धि डाक्टरों ने बतलाई है यह बात पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र ने लिखी किन्तु आप तो इसके ऊपर लेखनी ही नहीं उठाते ।

जल की शुद्धि मिश्रजी ने निर्मली से बतलाई इसके ऊपर पं० तुलसीराम लिखते हैं कि इससे तो केवल मिट्टी ही नीचे बैठती है अन्य रोगकारक वस्तु नहीं

दूर हो सकतीं। वे कौन वस्तु हैं इसका विचार उठाने पर यह पत्थ लगता है कि वे लकड़ी और घास के टुकड़े हैं जो हलकें होने के कारण पानी में बैठ नहीं सकते इनके दूर करने के लिए पानी का छानना ही काफी है छानने से एक भी नहीं रहता यदि जल को विशेष सुगन्धित बनाना है तो थोड़े से केवड़े आदि का प्रयोग ही काफी है फिर हवन का क्या होगा।

पं० तुलसीरामजी लिखते हैं कि यज्ञ से मेघों तक की शुद्धि और संसार भर का उपकार होता है। दयानन्द के हवन की पुष्टि तो कर नहीं सकते यज्ञों के फल पर दौड़ लगाते हैं। इस हवन को यज्ञ कहता कौन है? यज्ञ का जिक्र छोड़िये और दयानन्द के हवन की पुष्टि करिये जिसकी पुष्टि करने में लाचार हो कर यज्ञों पर जाते हैं। हम थोड़ी देर के लिए दुर्जनतापन्याय में दयानन्दा हवन को ही वाजपेय यज्ञ माने लेते हैं यज्ञों से संसार का उपकार तो हिन्दू ग्रन्थ कहते हैं किन्तु मेघों तक की शुद्धि तो कहीं भी नहीं लिखी यह तो केवल पं० तुलसीराम ने गढ़ी है। यज्ञ से मेघों तक की शुद्धि सिद्ध करना उतना ही कठिन है कि जितना मेघों को शुद्ध कर के पवित्र वर्षों के साथ में उनका सबन्ध सिद्ध करना है।

पं० तुलसीराम लिखते हैं कि २० करोड़ मनुष्यों की दी आहुतियों से देश में आनन्द मङ्गल दिखलाई देगा। कैसा आनन्द मङ्गल? इसका पता न दिया क्या घर घर करोड़पति जावेंगे याकि रोज विवाह अथवा लड़के हुआ करेंगे? जिस समय भंगी चमार कंजर मुसलमान ईसाई वेद पढ़कर आहुति देंगे उस समय देश का नाश हो जावेगा यह वेद का सिद्धान्त है और प्रत्यक्ष में भी देखा जाता है कि दयानन्द की कृपा से थोड़े हवनकर्ता हुए किन्तु इतने ही हवन से प्लेग चलवाई आगे न जाने क्या होगा।

पं० तुलसीरामजी अग्नि को ईश्वर का दूत मान कर कहते हैं कि तुम सूर्य चन्द्रादि भौतिका देवों के नाम की सामिग्री पुजवा कर अपने घर ले जाते हो क्या इसी में लोकोपकार समझते हो। इसके ऊपर हमारा कहना यह है कि अग्नि को देवदूत वेद में माना है इसके ऊपर हमको कोई भी मन्देह नहीं संदेह इस बात का है कि “अग्नि दूतं पुरोदधे” इस मन्त्र में यह कहीं नहीं लिखा कि जल वायु की शुद्धि

* पंजाब इस नाम की जाती है।

† समाज में ईंट गारा पत्थर आदि भौतिक देवों के सिवाय और देव ही नहीं।

होती है जब यह नहीं लिखा तब इस मन्त्र को प्रमाण में देना तुलसीराम का घबरा जाना है ।

पं० तुलसीराम को कुछ क्रोध आ गया और वेद को एकदम तिलाञ्जली दे कर लोकोपकार की धमकी के ऊपर आ गये । हम आप से पूछते हैं कि आप के भाई पं० लुट्टनलाल जो कट्टर आर्यसमाजी हैं वह जब गरुड़ बांच कर रुपये लेकर घर में आता है तब तो लोकोपकार हो जाता है या आर्यसमाजी पण्डित जिस समय यज्ञोपवीत या विवाह संस्कार करवा के माल लेकर घर में आते हैं उनसे लोकोपकार होता है । पं० तुलसीराम का हिन्सा ही बड़ा वेढंगा है जो काम आर्यसमाजी करें उसको तो वह लोकोपकार समझते हैं परन्तु यदि वही काम कोई दूसरा करे तो उससे वह लोक की हानि समझते हैं ।

पं० तुलसीराम ने यज्ञों से लोकोपकार माना है सनातनधर्मी अब भी कोई कोई किसी समय किसी यज्ञ को करता ही है परन्तु आज तक आर्यसमाज ने एक भी यज्ञ नहीं किया तो अब यन्त्रालय आर्यसमाज लोकोपकार कैसे कर रही है ? किन्तु आज आर्यसमाज वेदों का खण्डन कर जाती का बंधन तोड़ भक्ष्याभक्ष्य को खा लोक को रसातल को ले जा रही है । तुलसीराम को सोच लेना चाहिए कि जब तक आर्यसमाज ईश्वर को न मानेंगी या वेद के ठीक अर्थ को स्वीकार न करेंगी तब तक बलुभगद के चमरों को जनेऊ पहिना कर गौड़ और सनातन बनाने से लोकोपकार हर्गिज नहीं होगा ।

यदि इस देश के ऊपर ईश्वर की कृपा हो जावे और आर्यसमाज अपनी तरफ से नोन मिर्च मिलाना वेद मन्त्रार्थ में छोड़ दे, वेद के ठीक ठीक अर्थ मान ले और फिर आर्यसमाज का कोई पुरुष यज्ञ करे या घर घर यज्ञ होने लगें फिर उन यज्ञों में जो दान दक्षिणा मिले उसको लेकर ब्राह्मण जब घर आवें तो क्या उस वक्त संसार का बिल्कुल नाश हो जायगा क्या एक भी मनुष्य न बचेगा ? यदि कहो कि नहीं नहीं तो फिर हम पूछते हैं कि हमारे पुजवाने से देशोपकार क्यों नष्ट हो जाता है ? आर्यसमाजी पुजवा लावें तब तो देश का उपकार हो और सनातनधर्मी पुजवा लावे तो देश रसातल को चला जावे । वाह वाह पं० तुलसीरामजी कितना बढ़िया इन्साफ करते हैं यदि ऐसे इन्साफपसंद मनुष्य को कहीं गवर्नमेंट मजिस्ट्रेट या जज कर दे तो फिर सनातनधर्मियों का ईश्वर ही मालिक है । यह हम जोर से कहते हैं

कि पं० तुलसीराम सनातनधर्मियों की अकृ तो ठिकाने लगा दें ।

स्वामी दयानन्दजी ने गायत्री मन्त्र से हवन करना लिखा है इसके ऊपर पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र लिखते हैं कि गायत्री मन्त्र में तो हवन का महत्व भी नहीं लिखा फिर क्या कोरा घी फूंकने से काम है । इसके उत्तर में लिखते हैं कि मुख्य मन्त्रों में जैसे “अग्नयेस्वाहा” “सोमायस्वाहा” “वायवेस्वाहा” “वरुणायस्वाहा” “प्राणायस्वाहा” इत्यादि में वायु जल प्राण आदि के अर्थ तो हैं ही परन्तु हवन की सामग्री विशेष हो तो गायत्री आदि मन्त्रों से परमात्मा की स्तुति प्रार्थनोपासना करता जाये और शेष सामग्री को अग्नि में चढ़ा देवे यह तात्पर्य स्वामीजी का है । पं० तुलसीरामजी बहुत जल्दी भूल जाते हैं हम फिर याद करवाते हैं कि स्वामी दयानन्दजी ने जैसा ज्ञान मन में हो वैसा ही बोलें यह स्वाहा शब्द का अर्थ किया है अब इसी हिसाब से इन मन्त्रों के अर्थ करिये ।

जैसा ज्ञान मन में हो अग्नि के लिए वैसा ही बोलें और जैसा ज्ञान मन में हो सोम के लिए वैसा ही बोलें जैसा ज्ञान मन में हो हवा के लिए वैसा ही बोलें जैसा ज्ञान मन में हो वरुण के लिए वैसा ही बोलें और जैसा ज्ञान मन में हो जल के लिए वैसा ही बोलें स्वामी दयानन्द के मत में इन मन्त्रों का यह अर्थ हुआ । पूर्व में इस अर्थ पर पं० ज्वालाप्रसाद ने “प्राणायस्वाहा” यह आपत्ति की थी कि यह क्या अर्थ हुआ कि जैसा ज्ञान मन में हो ईश्वर के लिए वैसा ही बोलें । आप ने उत्तर दिया था कि प्राणाय नाम ईश्वर की प्रसन्नता के लिए सत्य बोलें उसीके अनुकूल अब “वायवेस्वाहा” इसका यह अर्थ होगा कि हवा की प्रसन्नता के लिए सच बोलें स्वामी दयानन्द और पं० तुलसीराम के इन अर्थों को सुन कर पांच वर्ष के बच्चे भी हँस पड़ते हैं और आप के मत में जो इनके अर्थ हुए उन में से कितना हवन का महत्व निकला जरा इसका भी पता लगे ।

फिर स्वामी दयानन्द के मत में यह सब नाम ईश्वर के हैं । ईश्वर के नामों से आहुति देकर तुम ईश्वर की शुद्धि करते हो या जलवायु की ? स्वामी दयानन्द के अर्थों के अनुसार तो यह शुद्धि ईश्वर की है क्योंकि यह सब नाम दयानन्द के मत में ईश्वर के ही हैं । पं० भोजदत्त चगैरह आर्यसमाजी मुसलमान ईसाई तथा भंगी चमारों की शुद्धि करते हैं और पं० तुलसीराम तथा दयानन्द ईश्वर की शुद्धि करते हैं इस की भी शुद्धि जरूर होती चाहिये क्योंकि यह सृष्टि के आरम्भ से आज

तक सनातनधर्मी रहा है भोजदत्त वगैरह ईसाई मुसलमान आदि की शुद्धि १५ मिनट में कर लेते हैं किन्तु जब से आर्यसमाज का जन्म हुआ आज तक सैकड़ों आर्यसमाजी "प्राणाय स्वाहा" इत्यादि मन्त्र बोल बोलकर ईश्वर की शुद्धि करते हुए थक गये किन्तु यह आज तक शुद्ध न हुआ मालूम होता है कि आर्यसमाज के मत में ईश्वर बहुत ही अशुद्ध है। पाठकवर्ग ! आर्यसमाज की इस बच्चों कैसी तहरीर पर कुछ विचार करें।

हम को नहीं मालूम कि "प्राणाय स्वाहा" इत्यादि मन्त्रों में पं० तुलसीराम जो वायु जल आदि की शुद्धि या हवन महत्व मानते हैं वह किस अर्थ से मानते हैं कोई भी अर्थ इन अक्षरों में ऐसा नहीं है कि जिस से जलवायु की शुद्धि होने या हवन महत्व निकल पड़ने की ज़रा भी गुंजाइश रखता हो नहीं मालूम तिमिरभास्कर को देखकर पं० तुलसीराम घबरा गये और कुल का कुछ लिखने लग गये या स्वामी दयानन्दजी के नशे के चक्र में पड़ गये ऐसा उत्तर देते हैं कि जिस को सुनकर बिना पढ़े भी ताली पीटते हैं।

हम पं० तुलसीराम से यह भी पूछना चाहते हैं कि "अग्नये स्वाहा" इत्यादि जो पांच मन्त्र आपने हवन के महत्व के लिये हैं यह मन्त्र आर्यसमाज के स्वतः प्रमाण वेद के हैं या ऐसा तो नहीं कि ईश्वर ने अपनी भूल से कोई बड़ा मन्त्र बना दिया हो और स्वामी दयानन्दजी ने ईश्वर के लेख को गलत और ईश्वर की बुद्धि को तुच्छ बुद्धि समझकर एक मन्त्र के टुकड़े करके कई एक मन्त्र बनाये हों या सनातनधर्मियों के कि जिन ग्रन्थों का समाज रात दिन खण्डन करती है उन्हीं (किसी झूठे पोपकृत ग्रन्थ) में से निकाल लिये हों कुछ भी हो ये हवन के पांच मन्त्र तो आर्यसमाज के स्वतः प्रमाण वेद में कोई भी आर्यसमाजी किसी भी जमाने में नहीं दिखला सकता। लीजिये हवन के लिये पहिले वेद मन्त्र तो अपने घर के बनाइये आज आर्यसमाज सनातनधर्मियों के मन्त्रों से हवन करती है कल को कुरान शरीफ की आयतें बोल बोलकर हवन करेगी कहीं इस अन्धेर का ठिकाना है। क्या इसपर कोई आर्यसमाजी विचार करेगा या सर्वदा ऊँट की पूँछ से ही ऊँट बँधा रहेगा।

पं० तुलसीराम ऐसा कोई प्रमाण नहीं दे सके कि जिस से हवन का महत्व सिद्ध हो अतएव पं० ज्वालाप्रसादजी का यह कहना सत्यही है कि कुछ ही मुँह से बोलते जावो और आग में घी फूँकते जावो।

इसके आगे पं० तुलसीराम लिखते हैं कि जो अग्निहोत्र के विशेष मन्त्र "समिधाग्निं दुवस्यतघृतैर्वोध यतातिथिम्" "आस्मिन्हव्याः जुहोतन" इत्यादि हैं उनमें तो अग्नि में समिधा होम घृत होमादि का अर्थ स्पष्ट है ही हम इस समय हवन का विचार करते हैं न कि अग्निहोत्र का पं० तुलसीरामजी नहीं मालूम हवन को छोड़ कर अग्निहोत्र के विचार पर क्यों जाते हैं । अग्निहोत्र के लिये तुलसीराम का लेख लिखना व्यर्थ है क्योंकि आज तक किसी भी आर्यसमाजी ने अग्निहोत्र नहीं लिया और न आगे को अग्निहोत्र लेने की किसी समाजी की आशा ही है किन्तु आर्यसमाज ऐसे नियमों को जारी करता है कि जिनसे अग्निहोत्र संसार से ही उठ जावेगा । उदाहरण के लिये आप देख सकते हैं कि आर्यसमाज विधवा विवाह की पक्षपाती है और यदि समस्त मनुष्य विधवा विवाह करने लगे तो समाज की दृष्टि में पूरी उन्नति हो जाय किन्तु विधवा विवाह करनेवाला अग्निहोत्र का अधिकारी ही नहीं रहता फिर पं० तुलसीराम का अग्निहोत्र प्रकरण उठाना फिजूल है ।

इसके अलावा "समिधाग्निं" लिखा है यह इनका लिखना बेमतलब है क्यों कि सनातनधर्म यह नहीं कहता कि तुम अग्नि को घृत ही न दिखाओ । सनातन धर्म का कहना तो यह है कि तुम वेद में कहा हुआ होम करो नित्य अग्निहोत्र करो इष्टि करो और यज्ञ करो । किन्तु स्वामी दयानन्दजी ने जो हवन निकाला है यह वेद विरुद्ध है और इस का फल जो वायु शुद्धि लिखा है यह अयोग्य है अग्नि होत्रादि से वायु शुद्ध होना कहीं पर भी नहीं लिखा किन्तु प्रत्यक्ष फल में वर्षा होना स्वर्ग की प्राप्ति होना संसार बन्धन दूरना इत्यादि फल लिखे हैं जब सनातन धर्म का यह सिद्धान्त है तब "समिधाग्निं" मन्त्र को लिखकर नहीं मालूम पं० तुलसीराम क्या सिद्ध करना चाहते हैं पाठक वर्ग इसके ऊपर स्वतः विचार करें । भास्करप्रकाश में इस मन्त्र से आर्यसमाज की किसीप्रकार की भी पुष्टि पं० तुलसीरामजी ने नहीं लिखी ।

जब कि हवन से आर्यसमाज के मत में केवल वायु ही शुद्ध होता है तो मेरी राय में यह बहुत अच्छा हो कि आर्यभमाजी अपने अपने घर से चन्दा मुक़रर कर दें और म्युनिसिपिल्टी के द्वारा उस स्थान में हवन होजावे जहाँ कि म्युनिसिपिल्टी के मुलाज़िम गाड़ियों में ढो ढो कर शहर के वायु बिगाड़नेवाले परमाणुओं को पट-

कते हैं ताकि हवन की वायु उस स्थान पर अपना प्रभाव बढ़ाकर दुर्गन्धि की वायु को दबा दे और जब हवन का फल केवल वायु शुद्ध करना है तो वेद के मन्त्र पढ़ने की भी कोई आवश्यकता नहीं क्या जब तक वेद मन्त्र न पढ़े जावें तब तक हवा शुद्ध न होगी। इसके ऊपर यदि कोई आर्यसमाजी यह कहे कि स्वामी दयानन्दजी ने तो लिख दिया कि वेद मन्त्र केवल इस लिये बोले जाते हैं कि वह कण्ठ रहें क्या हवन ने कण्ठ करवाने का ठेका लिया है यदि ऐसा है तब तो कालेजों में अवश्य हवन होना चाहिये ताकि लड़के बिना याद किये भी कण्ठ करके पास होजावें वेद मन्त्र तो रोज पाठ करने पर भी याद हो सकते हैं हवन से और मुखाग्र से कोई सम्बन्ध नहीं।

यह समाज का हवन फल एक बच्चों कैसा खेल है और वेद विरुद्ध है अतएव सर्वथा त्याज्य है। पं० तुलसीराम जब हवन फल की पुष्टि न कर सके तब एक दौड़ “गर्ज गर्ज क्षणं मूढ़” दुर्गा के इस पाठ पर लगा गये इस में से पं० तुलसीराम “मधु यावत्पिवाम्यहम्” इस पद से यह सावित करना चाहते हैं कि सनातनधर्मी शराब का हवन करते हैं क्योंकि आपने मधु का अर्थ शराब कर लिया है। यहां पर हम इतना अवश्य कहेंगे कि तुलसीराम ने पेसी चालाकी की है कि जैसे कोई यह लिख दे कि “अहं हरिं भजामि” इस का अर्थ यह हुआ कि मैं हरि विष्णु का भजन करता हूं। कोई मसरखरीबाज़ उस का यह अर्थ कर ले कि ओं राम राम बन्दर का भजन करता है क्योंकि हरि नाम विष्णु का है और बन्दर का भी है विष्णु अर्थ को छोड़कर बन्दर अर्थ लेना जिस प्रकार मसरखरी या अज्ञता कही जा सकती है इसी प्रकार मधु के अर्थ शहद आदि को छोड़कर शराब लेना है यदि वास्तव में मधु का अर्थ शराबही है तब तो सनातनधर्मियों का शराब का हवन करना और आर्यसमाजियों का शराब का खाना दोनों ही सिद्ध हैं। आप स्वामी दयानन्दकृत संस्कारविधि देखिये जिसमें मधु शब्दों का ढेर लग रहा है और जिसमें मधु का खाना भी लिखा है प्रथम मन्त्र “मधुवाता” दूसरा मन्त्र “मधुनक्तम्” तीसरा मन्त्र “मधुमान” चौथा मन्त्र नीचे देखिये—

ओं यन्मधुनो मध्वयं परमं ७७ रुपमान्नाद्यम् । तेनाहं मधुनो
मध्व्येन परमेण रूपेणान्नाद्येन परमो मध्व्योऽन्नादोऽसानि ।

पं० तुलसीराम प्रकरण को छोड़कर लाचार होकर जब स्वामीजी के लेख पर कुछ भी न लिख सके तब सनातनधर्म को नीचा दिखाने के लिये सप्तसती में पहुँच कर मधु का शराब अर्घ्य करके कलंक लगाया किन्तु वह कलंक दयानन्द की मिहर्बानी से आर्यसमाज के ही ऊपर आ गया ।

पं० ज्वालाप्रसाद लिखते हैं कि पहिले चुटिया बांधवाई फिर रक्षा की फिर जप किया अब घी फूँका आगे आगे इंजन लगा कर रेल चलावेंगे दुनिया के सब काम गायत्री मन्त्र ही करता रहेगा । इसके ऊपर पं० तुलसीरामजी लिखते हैं कि स्वामीजी ने यदि रक्षादि कार्य किये तो अनर्थ क्या किया परन्तु आप तो अपने बड़ों को मानते हैं कि उन्होंने ने गायत्री के जप से ही इतना सामर्थ्य बढ़ाया था कि धोती निराधार आकाश में सुखाते जल से अग्नि जलाते किसी का प्राण चाहते तो ले लेते इत्यादि । पाठकवर्ग ! पं० तुलसीराम ने गायत्री मन्त्र से चुटिया बांधने का कैसा उत्तम प्रमाण दिया कि जिस को सुन कर एक बार तो स्त्रियां भी हँस पड़ती हैं तुलसीराम को चाहिए था कि गायत्री से चुटिया बांधने में कोई वेदादि शास्त्र का प्रमाण देते किन्तु स्वामी दयानन्द के लेख में जैसे आरम्भ से अंत तक कहीं भी वेद प्रमाण नहीं यदि यही हाल यहां पर था तो साफ लिखते कि वेदादि सच्छास्त्रों में गायत्री से चुटिया बांधना नहीं लिखा यह न लिख कर सनातनधर्मियों पर कलंक लगाना चाहते हैं । आकाश में धोती का सुखना जल से अग्नि जलना गायत्री मन्त्र से मनुष्य का मार डालना यह सनातनधर्म की किस पुस्तक में लिखा है ? किखी में नहीं है तुलसीराम ने अपने मन से गढ़ कर तैयार किया है । एक तो गायत्री मन्त्र से जो जो काम स्वामी दयानन्द ने करवाये हैं उनकी पुष्टि में एक अक्षर न लिखना दूसरे स्वामी दयानन्द की भांति अपने मन से गढ़ कर सनातन धर्म पर कलंक लगाना यह आर्य समाजियों को ही शोभा देता है भाव यह है कि सनातनधर्म की किसी पुस्तकमें यह तीनों बातें नहीं हैं उत्तर टालने के लिए तुलसीराम अपने मन से लिखते हैं ।

इसके आगे पं० तुलसीराम लिखते हैं कि और इसमें संदेह नहीं कि हम आप के समान गायत्री को सामर्थ्यहीन नहीं समझते जैसा आप का भाई धर्म से विधर्म हो जावे तो आप की गायत्री गङ्गा यमुना आदि कुछ नहीं कर सकती । इसके ऊपर पं० तुलसीराम से हमको फिर पूछना पड़ा कि क्या वास्तव में गायत्री मन्त्र में आर्य

समाज की दृष्टि में इतनी शक्ति है कि वह भंगी को ब्राह्मण मुसलमान को क्षत्री आदि आदि बनादे ? यदि ऐसा है और तुलसीराम को इसका दावा है तो मिहर-बानी करके दस बीस या सौ पचास बार गायत्री मन्त्र पढ़ के एक गधे को गौ तो बनावें । इसके ऊपर यदि तुलसीराम कहें कि यह नहीं हो सकता जाति जाति ही बनती है गैर जाति नहीं इसके ऊपर तुलसीराम को सोचना होगा कि जिस प्रकार पशु जाति में गाय भैंस बकरी घोड़ा गधा आदि अवान्तर जाति हैं इसी प्रकार मनुष्य जाति में भी ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र, श्वपच, म्लेच्छ, यवन आदि अवान्तर जाति हैं जब एक म्लेच्छ यवन आदि को ब्राह्मण जो अवान्तर जाति में भिन्न है बना दिया जाता है तो फिर गधे को अवान्तर जाति में भेद और पशु जाति में अभेद रखने वाली गौ क्यों नहीं बनाते ।

इसके अलावा आप यह तो प्रमाण दें कि गायत्री मन्त्र से शुद्ध हो कर नैनीताल के भंगी बनिया बन जाते हैं यह अमुक वेद मन्त्र में लिखा है जब कि ऐसा कहीं पर भी नहीं लिखा और जब कि इस बात को स्वामी दयानन्दजी ने भी नहीं माना तब एक नया सगूफा गढ़ के तैयार करना पं० ज्वालाप्रसाद का लेख सत्य है कि आगे आगे सब काम समाज गायत्री मन्त्र से ही करेगी इससे न तो सनातनधर्म का खण्डन ही होता है और न गायत्री से चुटिया बांधने की पुष्टि होती है नहीं मालूम प्रकरण के विरुद्ध अंड घंड लेख पं० तुलसीरामजी क्यों लिख रहे हैं ।

इसके आगे पं० तुलसीरामजी लिखते हैं कि यहां यह बात नहीं किन्तु आप के मुरादाबाद में और अन्यत्र शतशः पतित भाइयों का उद्धार इस सामर्थ्यवान गायत्री मन्त्र से हम ने किया और देखिये आंग आंग क्या करेंगे घबराते क्यों हो । एक मरतबा हम मुरादाबाद गये सराय में जाकर देखा तो वहां पर न तो कोई भठियारा है न भठियारी है । हमने पूछा कि यहां के भठियारे और भठियारियां कहाँ गईं । आस पास के लोगों ने बतलाया कि आर्यसमाज ने उनकी शुद्धि कर जनेऊ पहिना उनको गौड़ ब्राह्मण बना दिया है अब कोई तो धर्मेन्द्र देवशर्मा और कोई धर्म-देवशर्मा इत्यादि नामों से विभूषित हो कर आर्यसमाज के नेता बन गये हैं और अब वे सब का एक भोजन बना कर देश का उपकार कर रहे हैं और जितनी भठियारियां थीं उनकी भी शुद्धि हो गई है अब वे गायत्रीदेवी, सीतादेवी, आदिनामधरवा कर नियोग और विधवा विवाह का प्रचार करके समाज में पूजनीया पदवी को पा

गई । हम पं० तुलसीराम से पूछते हैं कि यही करोगे कि कुछ और इससे भी बढ़िया करोगे सम्भव है कि आर्यसमाजी भाई पाखाने हां कर आवदस्त न लिया करें गायत्री से ही शुद्धि हुआ करै । हमें इस बात का जग भी रंज नहीं है कि पं० तुलसीराम गायत्री से क्या क्या काम लेंगे । सवाल तो यह है कि गायत्री मन्त्र से चुटिया बांधने पर मनुष्य की रक्षा हो जावेगी या नहीं इस का उत्तर तो पं० तुलसीराम देते ही नहीं शुद्धि का विषय छेड़ते हैं खर अच्छा है किन्तु देखते हैं कि यह शुद्धि का मामला समाज में कब तक जारी रहता है । पं० शिवचन्द्र सत्ती व पं० बद्रीदत्त जी आदि आदि तो शुद्धि को मानते ही नहीं । खुशी की बात है कि काशी के ब्रह्मभोज के मामले में भास्कर प्रकाश के कर्त्ता पं० तुलसीराम लिख गये कि इस शुद्धि को हम शुद्धि ही नहीं मानते आर्यसमाज की यह शुद्धि अंग्रेजी चाल की शुद्धि है । जब पं० तुलसीराम आप ही शुद्धि का खण्डन करने लग गये तब फिर हम को कागज रंगने की क्या आवश्यकता है ।

इसके आगे पं० तुलसीरामजी लिखते हैं कि कदाचित् आप भी तौ भूत प्रेत गायत्री से दूर किया करते हैं और यजमानों में दक्षिणा लिया करते हैं फिर बिना दक्षिणा मांगे स्वामीजी ने गायत्री से रक्षा और होमादि का विधान किया तौ बुरा क्या किया । हम जो गायत्री मन्त्र से भूत प्रेत का दूरिकरण मानते हैं इसके लिये तो शास्त्रों में लेख मिलते हैं किन्तु जो पार्थी भूत प्रेत को नहीं मानती और मन्त्रमें रक्षा शक्ति नहीं मानती और जिसके लिये वेद शास्त्र का कुछ प्रमाण नहीं मिलता वह पार्थी नहीं मालूम गायत्री से रक्षा कैसे और किसप्रकार के भय का दूरिकरण मानती है । अब रहा दक्षिणा के बाबत् इसका उत्तर पीछे हो चुका है जहां पर आपने पुजवाना लिखा था हम दक्षिणा लेते ही जायेंगे और आप अपने मन में खूब दुखित होते जाइये । स्वामीजी ने जो गायत्री में रक्षा लिखी है यह वेद विरुद्ध है जो सभा केवल वेद को मानती है उस को तो सब काम वेद से ही करने चाहिये यदि पं० तुलसीराम वेद से गायत्री मन्त्र द्वारा रक्षा होना दिखला दें तो फिर हम को कुछ उजर भी नहीं ।

यह सब हुआ किन्तु पं० ज्वालाप्रसाद के प्रश्न का उत्तर नहीं हुआ उन का तो कथन यह है कि स्वामी दयानन्द ने पहिले गायत्री से चुटिया बंधवाई फिर रक्षा की फिर जप किया फिर घी फूँका आगे इंजन लगाकर रेल दौड़ाई जावेगी इन

सब कार्यों की पुष्टि में पं० तुलसीराम ने कुछ भी प्रमाण न दिया किन्तु गायत्री मन्त्र से एक काम शुद्धि और बतला दिया जब पिछले ही कामों की कर्त्तव्यता में कोई प्रमाण नहीं तो शुद्धि में प्रमाण कहां से आवेगा पं० ज्वालाप्रसाद का यह प्रश्न नहीं था जो पं० तुलसीराम ने समझा कि गायत्री से क्या क्या काम होंगे किन्तु यह प्रश्न था कि गायत्री से बतलाये हुए कार्यों में प्रमाण क्या है ? यदि पं० तुलसीराम इस प्रश्न को समझे होते तो शुद्धि का जिक्र न उठाते और इन प्रश्नों का उत्तर देते।

स्वामी दयानन्दजी ने सायं प्रातःकाल स्नान करके पात्रों में हवन करना लिखा इसके ऊपर पं० ज्वालाप्रसादजी लिखते हैं कि स्नान की क्या आवश्यकता दो ही काल में वायु का शुद्ध करना क्यों अच्छा भट्टी रहने पर पात्रों की आवश्यकता क्या ? इसके ऊपर पं० तुलसीराम लिखते हैं कि "सायं सायंगृहपतिर्नो० प्रातःप्रातर्गृहपतिर्नो०" इस से दिखाते हैं कि हवन सायं प्रातःकाल ही होना चाहिये इस मंत्र में सायं प्रातः शब्द तो जरूर पड़े हैं परन्तु हवन करना कहीं नहीं लिखा। एक आर्यसमाजी कहता था सुबह शाम व्याख्यान देना चाहिये हमने पूछा कहां लिखा है उसने यही मन्त्र बतला दिया अब कोई २ सुबह शाम पाखाने जाना भी इसी मन्त्र से बतला दिया करेंगे मन्त्र न ठहरा भानमती का पिटारा ठहरा जो चाहें वही अर्थ इसमें से निकाल लें जब इसमें हवन करना या पाखाने जाना या व्याख्यान देना कुछ भी नहीं लिखा फिर अपनी तरफ से मनवांछित शब्द मिलाना ईश्वर को बे-वकूफ समझना नहीं तो और क्या है पं० तुलसीराम को खूब सोच लेना चाहिये कि इन चालाकियों से स्वामी दयानन्द के सिद्धान्तों की रक्षा नहीं हो सकती।

स्नान के ऊपर पं० तुलसीराम लिखते हैं कि शुद्धिकारक कर्म करते हुए क्या देह को शुद्ध करना आवश्यक नहीं। पं० तुलसीराम बतलावें कि देह का शुद्ध करना आवश्यकीय है यह किस वेद मन्त्र में लिखा है कि शुद्धि के समय में शरीर शुद्ध करो और पं० तुलसीराम यह भी दिखलावें कि जल से शरीर शुद्ध होता है यह किस वेद मन्त्र में लिखा है मनु का प्रमाण न दें क्योंकि समाज की दृष्टि में मनु स्वतः प्रमाण नहीं है इस के अलावा यदि शरीर शुद्ध हो धूल गर्दा या मलमूत्र न लगा हो तब तो तुलसीराम के लेखानुसार स्नान की भी कोई आवश्यकता नहीं क्योंकि स्नान तो शरीर की शुद्धि के लिये है और शरीर पहिले ही शुद्ध है अब स्नान की क्या जरूरत।

पात्रों में हवन करने की वायत पं० तुलसीराम लिखते हैं कि पात्रों के बिना यह कार्य सिद्ध नहीं होता और यों तो कढ़ाई के स्थान में तवा और थाली से भी काम चल जाता है इस के ऊपर हम पं० तुलसीराम से पूछते हैं कि क्या चूल्हे भट्टी को तवे थाली की उपमा दी जा सकती है तब थाली में पूरी करते हुए दिकत आती है चूल्हे भट्टी में जरा भी तकलीफ नहीं होती उपमा तो ऐसी देनी चाहिये कि जिस से उपमेय ठीक मिले । पं० तुलसीरामजी लिखते हैं कि जो पात्र जिस जिस कार्य के लिये बने हैं उन-उन पात्रों के बिना उत्तम कार्य नहीं होता इस के ऊपर हम को हँसी आजाती है पं० तुलसीराम हवन बतलाते हैं वेद में और वेद बना सृष्टि के आरम्भ में किन्तु पात्र बने दयानन्द के वक्त में सृष्टि से आज तक हवन किन पात्रों में हुआ ? यदि दैवयोग से स्वामी दयानन्द का जन्म न होता तो फिर यह हवन किन पात्रों में होता ? यदि पं० तुलसीराम यह कहें कि स्वामी दयानन्दजी ने जो पात्र लिखे हैं वे वेदोक्त हैं इसके ऊपर हम जोर देकर कह सकते हैं कि आर्यसमाज दयानन्द के पात्रों में एक भी वेदशास्त्र का प्रमाण नहीं देसकती यह सब फ़र्जी हैं दयानन्द ने अपने मन से तैयार किये हैं फिर पं० तुलसीराम यह कैसे कह सकते हैं कि जो पात्र जिसके लिये बने हों हवन के लिये तो यह पात्र बने ही नहीं ।

पं० ज्वालाप्रसादजी वेद के तीन मंत्र देकर हवन का फल दिखाते हैं कि ये मंत्र परलोक स्वर्ग प्राप्त्यर्थ अग्नि की स्तुति विधान करते हैं । अग्नि देवदूत है । अग्नि हमारा धन सम्पादन करो । संग्रामों को विदीर्ण करो । अन्न हमें देओ । शत्रु को जीतो । देवतों को हवि पहुँचाओ । यजमान का कल्याण करो । अपने लोक में ठहरो । पुष्करपर्ण पर भले प्रकार बैठो । इत्यादि अग्नि की स्तुति लिखी है इस के ऊपर पं० तुलसीरामजी लिखते हैं कि हम आप के किये अर्थों को मान लें तब भी कोई हमारे पक्ष की हानि नहीं क्योंकि जलवायु की शुद्धि से शौर्य धैर्य आरोग्य बल पुष्टि आदि बढ़ते हैं जिससे धन, जय, अन्न, कल्याण की प्राप्ति होती है इस से वह बात खण्डित नहीं होती जो हमने ऊपर यजु० अ० १ मं० २ से वायु की शुद्धि यह द्वारा सिद्ध की है और अग्नि को देवदूत अर्थात् वायु आदि देवतों का उसके लिये दिया हुआ भाग पहुँचाने और उस से उनको प्रसन्न अर्थात् स्वच्छ शुद्ध अनुकूल करनेवाला तो हम भी मानते हैं और स्वामीजी ने भी माना है ।

पं० तुलसीराम का हवनसे जलवायु की शुद्धि और उससे शौर्य धैर्य आरोग्य

बल पुष्टि का बढ़ना मानना अयोग्य है क्योंकि वेद के मंत्र में यह नहीं दिखलाया है कि हवन के धुवें से यह जल वायु शुद्ध होकर ऊपर लिखे गुणों को देते हैं और पूर्व समय में जब कि दयानन्द का बतलाया यह हवन नहीं था उस जमाने में भी इन गुणोंवाले मनुष्य होते रहे हैं आज भी पश्चिमीय देशों में जहां कि स्वामी दयानन्द के बतलाये हवन का धुवां नहीं उड़ता उपरोक्त गुणवाले मनुष्य मौजूद हैं फिर हवन के धुवें से ही शौर्यादि गुण मानना यह आग्रह करना है।

और यजुर्वेद अ० २ के मन्त्रार्थ का खण्डन पीछे हो चुका है उस में न धुवां है न हवन है और न इनके द्वारा किमी की पवित्रता है वह मन्त्र तो दर्श पूर्णमास इष्टि का है स्वामी दयानन्द के फर्जी हवन में कोई सम्बन्ध नहीं है।

और पं० तुलसीरामजी यह कहते हैं कि अग्नि को देवदूत हम भी मानते हैं वेशक पं० तुलसीराम अग्नि को देवदूत मानते हैं किन्तु जिन देवताओं का अग्नि दूत है उन को नहीं मानते। नाली का जल, सिगरेट की आग, पाखाने की हवा, पेशाब करने की जमीन, पं० तुलसीराम इन्हीं को आर्यसमाज के देवता मानते हैं जो वेद और स्वामी दयानन्द के लेख के विरुद्ध है। वेद की तो कौन कहै स्वामी दयानन्द ने भी अश्विनीकुमार, इन्द्र, कुंवर, पूषा आदि देवता संस्कारविधि में लिखे हैं जिन को हम प्रथम समुदाय में दिखला चुके हैं किन्तु पं० तुलसीराम की दृष्टि में वेदशास्त्र और स्वामी दयानन्द सब मिथ्यावादी हैं। जब आप वेदोक्त देवताओं को ही नहीं मानते तो फिर देवदूत मानने में क्या प्रयोजन सिद्ध होगा ?

नाम मात्र के ही ब्राह्मणों द्वारा देवताओं की सामग्री चटकर जाने का उलहना देना व्यर्थ है क्योंकि हम नाम मात्र के तो ब्राह्मण लेते हैं वह भी कब जब कि हम को लिखा पढ़ा ब्राह्मण नहीं मिलता है किन्तु आर्यसमाज तो "अग्निस्वाज्ञा" मंत्र का अर्थ बदल कर अग्नि के पेशा करनेवालों को देव और पितृ भाग लिखावेगी अब अगर इस बात की तहकीकात उठे कि अग्नि का पेशा कौन करते हैं तो सुनार लोहार ड्राइवर और भड़भूजे आदिही निकलेंगे। सनातनधर्मी तो नाममात्र के ब्राह्मणों को देवभाग देते हैं और आर्यसमाज ड्राइवर और भड़भूजों को। इन दो में अच्छा कौन है इसका निर्णय पं० तुलसीराम अपने आप करें।

फिर पं० तुलसीराम यह तो बतलावें कि बिना पढ़े ब्राह्मण को देव भाग देना यह हिन्दुओं के किस शास्त्र में लिखा है ? यदि कहो कि देते तो हैं तो इस देने से

देनेवालों पर पेटराज होसकता है न कि हिन्दू शास्त्र पर । यहां पर शास्त्रीय विचार हो रहा है इस में अन्य कटाक्ष करना फिजल है । पं० तुलसीराम की भांति हम भी कह सकते हैं कि आर्यसमाजी अभक्ष्य पदार्थों के खाने में ही अपने को वैदिक समझते हैं किन्तु मनुष्यों का दोष किसी के धर्मपुस्तक पर नहीं लगाया जासकता और हिन्दुओं का शास्त्र कैसे ब्राह्मण को देवभाग का देना लिखता है इसको आप नीचे देखें—

श्रोत्रियायैवदेयानि हव्यकव्यानिदातृभिः ।

अर्हत्तमायविप्राय तस्मैदत्तमहाफलम् ॥

मनु० अ० ३ श्लो० १२८

अर्थ—दाताओं को देव पित्र्यन्त अर्थात् हव्य कव्य के अन्न श्रोत्रिय जो वेद पाठी हैं तिस को यत्नसे देने चाहिये क्योंकि वेद आचार और कुटुम्ब से अति योग्य ब्राह्मण को दिया हुआ बड़े फल का देनेवाला होता है ।

इस श्लोक में देव पितृभाग का देना पढ़े हुए ब्राह्मण को लिखा है पं० ज्वाला-प्रसाद ने यज्ञ और हवन से स्वर्ग की प्राप्ति भी दिखलाई किन्तु पं० तुलसीराम इस को उड़ाये उड़ाये फिरते हैं कारण इस का यह है कि स्वामी दयानन्द ने स्वर्ग नहीं माना । समाजियों का अजब किस्म का सिद्धान्त है कि जिसको दयानन्द न मानें उसको वे वेद में होने पर भी नहीं मानते और वेद में न भी हो केवल स्वामी दयानन्द मान लें उस को आर्यसमाज वेद का सिद्धान्त कहती है और इतने पर भी समाज अपने को वैदिकधर्म को माननेवाली बतलाती है कुछ भी हो वेद से यज्ञ का फल स्वर्ग प्राप्ति सिद्ध है और इस के ऊपर पं० तुलसीराम की लेखनी कुछ भी नहीं लिख सकती ।

पं० ज्वालाप्रसाद ने घी का फंकना लिखा है इस के ऊपर पं० तुलसीराम कठोर शब्द बतलाते हैं आश्चर्य की बात है कि स्वामी दयानन्द पोष, धूर्त, स्वार्थी, भलेच्छ लिखें या वेदव्यास को कसाई के नाम से याद करें या भट्टोजी दीक्षित पर ऐसे लेख निकलें कि जिसको पढ़ कर आर्यसमाजियों की बुद्धि का परिचय मिले और यदि कोई उस लेख को अनुचित बतलादे तो उसके पास मार डालने की धमकी पहुंचे कड़ी समालोचना पर पत्रों का बाइकाट होजाय । पं० तुलसीराम की इस कार-

रवाई में एक भी कड़ा शब्द न दिखलाई दे किन्तु हवन करने की जगह यदि कोई घी फूंकना लिख दें तो कड़ा शब्द होकर आर्यसमाज की मानहानि हो जाय । भारत वर्ष के मजिस्ट्रेटों से हमारी प्रार्थना है कि कुछ रोज पं० तुलसीराम से अवश्य शिक्षा पावें जब तक ऐसा न करेंगे इनको ठीक ठीक इन्साफ करना नहीं आवेगा ।

क्या वास्तव में पं० तुलसीराम परस्पर में कठोर शब्दों के व्यवहार का त्याग करना चाहते हैं ? यदि पं० तुलसीराम सच्चे दिल से कठोर शब्दों के व्यवहार का त्याग करना चाहते हैं तो ऐसी दशा में हम आप को धन्यवाद देते हैं और साथ ही साथ इकरार करते हैं कि आइन्दा से यह पाठ दयानन्द तिमिर भास्कर से निकाल दिया जावेगा । कब ? जबकि आर्यसमाज भी अपनी पुस्तकों में से कठोर शब्दों के निकालनेके लिए तैयार हो । यह नहीं होसकता कि हम तो निकाल दें और तुम बनाये रखो दोनों को ही निकालना होगा मंजूर हो तो पत्र लिखें । फूंकना शब्द जिस तरह से पं० तुलसीराम को खटका है इसी प्रकार और और धर्मों के मनुष्यों को सत्यार्थ प्रकाश भी खटकता होगा जिसमें सैकड़ों जगह अनेक धार्मिकों के बुजुर्गों की अच्छी खबर ली गई है ।

पं० ज्वालाप्रसाद ने "स्वाध्यायन" मनु के इस श्लोक से यज्ञका फल ब्रह्म की प्राप्ति होना बतलाया इसके ऊपर पं० तुलसीराम लिखते हैं कि इसमें विवाद किसको है पं० तुलसीराम को न होगा स्वामी दयानन्द को तो है क्योंकि मनु तो ब्रह्म की प्राप्ति बतलाते हैं और स्वामी दयानन्द धर्ममें केवल वायु शुद्धि मानते हैं इसके ऊपर पं० तुलसीराम लिखते हैं कि ऐसा कोई प्रमाण दो कि जिससे धूम द्वारा वायु की शुद्धि का न होना सिद्ध होता हो । इसके ऊपर हमारा उत्तर यह है कि पहिले आर्य समाज अपने पक्ष की तो स्थापना करे अभी तक तो आर्यसमाज ने एक भी ऐसा प्रमाण नहीं दिया कि जिससे धूम द्वारा जलवायु की शुद्धि होना सिद्ध होता हो जब पक्ष की स्थापना नहीं हुई फिर उत्तर कैसा ? बिना जुर्म के सफाई मांगना पं० तुलसीराम को ही आता है ।

अब हम एक प्रत्यक्ष प्रमाण देते हैं । स्वामी दयानन्दजी ने आर्यसमाज का स्थापन किया । इस आर्यसमाज में कुछ थोड़े बहुत अंग्रेजी पढ़े लिखे मनुष्य शामिल होते गये । ऐसे ही धीरे धीरे ढवरा चला । सम्वत् १९५१ से आर्यसमाज ने जोर पकड़ा । इसके मेम्बर बढ़े । घर घर हवन होने लगे । जल और वायु शुद्ध हुये ।

इस शुद्धी के कारण भारतवर्ष में प्लेग चली यह हमारा प्रत्यक्ष प्रमाण है । आप पुरानी से पुरानी हिप्प्री देख लें भारतवर्ष में प्लेग कभी नहीं हुआ यदि हुआ तो उसी समय में हुआ जब कि स्वामी दयानन्द का बतलाया हवन आर्यसमाज के प्रत्येक घर में होने लगा । कैसी अच्छी शुद्धि हुई ? जब समाज धर्मप्रकाश का खण्डन करेंगी तब और भी कई एक प्रमाण देंगे ।

पं० ज्वालाप्रसाद यज्ञ का कितना भी महत्व दिखलावें जैसा कि “अग्नौ प्रास्ताहुतिः” इत्यादि कितने भी प्रमाण लिखें । पं० तुलसीराम उनका कुछ उत्तर तो दे नहीं सकते किन्तु यह लिख देते हैं कि आभ्यान्तर शुद्धि वैसे ही होती है और बाह्य शुद्धि हवन के धूम से शुद्ध जल वायु के द्वारा तब ये फल होता है । इस लेख को देख कर हमको एक बात याद आ जानी है वह यह है कि किसी मनुष्य ने एक मनुष्य से कहा कि हमारा राजा बड़ा विद्वान् है दूसरा आदमी बोला कि मास्टर की बदौलत यदि मास्टर न होता तो इतना विद्वान् कैसे हो जाता फिर वह मनुष्य बोला कि हमारा राजा बड़ा बलीहै तब उसने जवाब दिया मास्टर की बदौलत मास्टर ब्रह्मचर्य की शिक्षा न देता तो फिर बली कहां से होता फिर वह बोला हमारे राजा के बड़ा खूबसूरत लड़का हुआ है यह बोला मास्टर की बदौलत यदि मास्टर गर्भाधान की शिक्षा न देता तो खूबसूरत लड़का कहां से होता वह बोला कि हमारा राजा घोड़े पर खूब चढ़ता है यह बोला कि मास्टर की बदौलत यदि मास्टर मना कर देता तो राजा घोड़े पर ही न चढ़ता फिर घोड़े का मवागी की निपुणता कैसे आती । इस महात्मा की दृष्टि में संसार के सब काम मास्टर ही की बदौलत होते हैं । जिस तरह से उस महात्मा की दृष्टि से संसार में कोई काम मास्टर के बिना हो ही नहीं सकता सब मास्टर की ही बदौलत होते हैं इसी प्रकार पं० ज्वालाप्रसाद ने यज्ञ के जितने लाभ बतलाये उसमें पं० तुलसीराम ने जल वायु की शुद्धि द्वारा इतना और लिख दिया पं० ज्वालाप्रसाद के बतलाये यज्ञों के फल पं० तुलसीराम ने सब माने किन्तु जल वायु की शुद्धि द्वारा इतना पुछला और बढ़ा दिया कि संसारके जितने काम या जितनी उन्नति होती है वह जल वायु की शुद्धि द्वारा ही होती है यह पं० तुलसीराम का सिद्धान्त है कि जो किसी भी मनुष्य की बुद्धि में ठीक नहीं है । क्या हवन के बिना कोई काम हो ही नहीं सकता यह विचार करने लायक है ।

प्रश्न तो यह है कि वेद शास्त्र में यज्ञों से लोकोपकार स्वर्ग प्राप्ति मोक्ष

सिद्धि आदि फल कहे हैं और स्वामी दयानन्द जल वायु की शुद्धि मानते हैं इन दो में कौन सच्चा है। दूसरा सवाल यह है कि वेद ने रुद्रीय आदि होम और दर्श आदि इष्टि सोत्रामणि आदि यज्ञ और अग्निहोत्र करने बतलाये स्वामी दयानन्द ने इन सब से विरुद्ध वेद शास्त्र की विधि वर्जित वायुशोधक जो हवन चलाया यह क्यों ? दयानन्द के बताये हवन में वेद शास्त्र का कोई अक्षर प्रमाण है ? यदि नहीं है तो इस को करें क्यों जब इसका जिक्र वेद में नहीं तब इसको वैदिक कहें क्यों ? इन प्रश्नों का कोई उत्तर पं० तुलसीराम ने नहीं दिया और न आगे को कोई समाजी दे सकता है ऐसे मन गढ़न्त मामलों की रक्षा समाज तभी तक कर सकती है जब तक कि इसको कोई मनुष्य देखता नहीं जब कोई देखने लगता है तब सब हाल खुल जाता है और लेखक को नीचा देखना पड़ता है। इस बात की कोई जरूरत नहीं है कि स्वामी दयानन्द के मन कल्पित लेख को समाज मानें किन्तु समाज का यह सब से पहिला धर्म है कि स्वामी दयानन्द के लेख को वेद से मिलावें अनुकूल को रखें विरुद्ध को त्याग दें आज्ञा है कि समाज हमारे इस लेख पर गौर करेगी।

शूद्र वेदानधिकारः ।

सत्यार्थप्रकाश—

ब्राह्मणस्त्रयाणां वर्णानामुपनयनं कर्तुमर्हति । राजन्योद्वयस्य । वैश्यो वैश्यस्ये-
वेति । शूद्रमपि कुलगुणसम्पन्नं मन्त्रवर्जमनुपनीतमध्यापयेदित्येके ॥

यह सुश्रुत के सूत्रस्थान के दूसरे अध्याय का वचन है। ब्राह्मण तीनों वर्ण ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य, क्षत्रिय क्षत्रिय और वैश्य तथा वैश्य एक वैश्य वर्ण का यज्ञोपवीत कराके पढ़ा सकता है। और जो कुलीन शुभलक्षणयुक्त शूद्र हो तो उस को मन्त्र संहिता छोड़ के सब शास्त्र पढ़ावे, शूद्र पढ़े परन्तु उसका उपनयन न करे, यह मत अनेक आचार्यों का है। पश्चात् पांचवें वा आठवें वर्ष से लड़के लड़कों की पाठशाला में और लड़की लड़कियों की पाठशाला में जावें। और निम्न लिखित नियम पूर्वक अध्ययन का आरम्भ करें।

तिमिरभास्कर—

प्रथम तौ वोह वार्ता लिखते हैं जो शूद्र के विषय में स्वामी जी मान चुके हैं ।

स० पृ० ४३ पं० २६ शूद्रमपिकुलगुणसम्पन्नं मंत्रवर्जमनुपनी-
तमध्यापयेदित्येकं सुश्रुत ४० । २५

अर्थ—और जो कुलीन शुभ लक्षणयुक्त शूद्र हो तौ उसको मंत्र संहिता छोड़के सब शास्त्र पढ़ावे यह मत किन्ही आचार्योंका है (सुश्रुत का मत यह नहीं है) और

स० पृ० ३४ पं० १ शूद्रादिवर्ण उपनयन क्रिये बिना विद्या-
भ्यासके लिये गुरुकुल में भेजदे । २६ । १६

स० पृ० ७५ पं० २ और जहां कहीं निषेध है उसका यह अभिप्राय है कि जिसको पढ़ने पढ़ाने से कुछ भी न आवै वोह निर्बुद्धि और मूर्ख होने से शूद्र कहाता है उसका पढ़ना पढ़ाना व्यर्थ है ॥ ७५ । २३

इतने स्थानों में तौ स्वामीजी ने यह माना कि, शूद्रको यज्ञो-
पवीत न देना चाहिये और यह भी कहा कि, मंत्र संहिता छोड़
कर और सब कुछ पढ़ाना और फिर कहा कि, जो मूर्खहो जिसे
पढ़ाये से कुछ न आवै वोह शूद्र है उसका पढ़ना पढ़ाना व्यर्थ है
जब शूद्र मूर्ख कोही कहते हैं जिसे पढ़ाये से कुछ न आवै तौ फिर
भला स्वामीजीने कौनसी भंगकी तरंग में शूद्र को वेद पढ़ने का
अधिकार दे दिया सो आगे लिखते हैं ।

स० प्र० पृ० ७४ पं० २ क्या स्त्री शूद्र भी वेद पढ़ें जो यह
पढ़ेंगे तौ फिर हम क्या करेंगे और फिर इनके पढ़ने का प्रमाण भी
नहीं है जैसा यह निषेध है कि, “स्त्रीशूद्रौ नाधीयाताम्” इतिश्रुतेः ॥
१४ । २३

स्त्री और शूद्र न पढ़ें यह श्रुति है (उत्तर) सब स्त्री और मनुष्य

मात्र को पढ़ने का अधिकार है तुम कुआ में पड़ो और यह तुम्हारी श्रुति कपोल कल्पना से हुई है किसी प्रामाणिक ग्रन्थ की नहीं और सब मनुष्यों को वेदादि शास्त्र पढ़ने सुनने का अधिकार है यजुर्वेद के २६ वें अध्याय का दूसरा मंत्र है ।

यथेमांवाचंकल्याणीमावदानिजनेभ्यः ब्रह्मराज
न्याभ्याऽशूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय ॥

परमेश्वर कहता है कि (यथा) जैसे मैं (जनेभ्यः) सब मनुष्यों के लिये (इमाम्) इस (कल्याणीम्) कल्याण अर्थात् संसार और मुक्ति के सुख को देनेहारी (वाचम्) ऋग्वेदादि चारों वेदों की वाणी को (आवदानि) उपदेश करता हूँ वैसे तुम भी किया करो । परमेश्वर कहता है कि, हमने ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र और अपने भृत्य वा स्त्रियादि और अति शूद्रादिकों को भी वेदों का प्रकाश किया है, कहिये अब तुम्हारी बात मानें या परमेश्वर की, क्या ईश्वर पक्षपाती है यदि वोह पढ़ाना न चाहता तो इनके वाक् और श्रोत्र इन्द्रियों को क्यों बनाता, वेदमें कन्याओंका पढ़ना लिखा है पृ० ७५ पं० ७

ब्रह्मचर्येण कन्यायुवानं विन्दते पतिम् ॥ अथर्व०

कुमारी ब्रह्मचर्य सेवनसे वेदादि शास्त्रोंको पढ़ पूर्ण विद्या और उत्तम शिक्षा को प्राप्त युवती होकै पूर्ण युवावस्था में अपने सदृश प्रिय विद्वान् पूर्ण युवावस्थायुक्त पुरुष को प्राप्त होवै (प्रश्न) क्या स्त्री लोग भी वेदों को पढ़ें (उत्तर) अवश्य देखो श्रौतसूत्रादिमें (इमं मंत्रं पत्नी पठेत्) स्त्री यज्ञमें इस मंत्र को पढ़ें जो वेदादि शास्त्रों को पढ़ी न हों तो उच्चारण कैम कर सकें ।

समीक्षा—प्रथम तो स्वामीजी लिख चुके कि, शूद्र मंत्रभाग न पढ़ें और अब लिखते हैं कि, पढ़ें और तुम कुआमें पड़ो यह दुर्वचन नहीं तो और क्या है तुम्हारीही पुस्तक और तुमही प्रश्नकर्त्ता तुम्हारीही पढ़ीहुई श्रुति इससे तुमही कुएमें गिरे संसाररूपी कूप

में गिराने को आपके वाक्य निश्चय प्रबल हैं, जब शूद्र महामूर्ख कोही कहते हैं कि, जिसे पढ़ाने से कुछ न आवे फिर जब पढ़ाने से कुछ न आवे तो उसे वेद पढ़ाना कैसा और जब आप जातिकर्मानुसार मानते हैं तो भी वेद पढ़ा हुआ शूद्र नहीं होसका वोह तो उच्चवर्ण होजायगा, फिर भी मूर्ख बंपढ़ाही शूद्रसंज्ञक रहा इस से आपके वचन से भी शूद्र वेद पढ़ा नहीं होसका अब व्यास सूत्र सुनिये ॥

संस्कारपराभर्शात्तदभावामिलागच्च ॥ अ० १ पा० ३ सू० ३६

विद्या पढ़नेके लिये उपनयनादि संस्कार व सुनने से शूद्र वेद विद्या पढ़ने का अधिकारी नहीं है ॥

अवणाध्ययनार्थप्रतिषेधात्स्मृतेश्च ॥ शा० अ० १ पा० ३ सू० ३८

शूद्र को वेदका अधिकार नहीं है क्योंकि अवण अध्ययन वास्ते निषेध होने से स्मृति में ऐसा लिखा है ॥

वेदप्रदानादाचार्यपितरंपरिचक्षते ॥

नह्यस्मिन् युज्यते कर्म किंचिदामौञ्जिबन्धनात् ॥ १७१ ॥

नाभिव्याहारयेद्ब्रह्म स्वधानिनयनादृते ॥

शूद्रेणहिसमस्तावद्यावद्वेदेनजायते । १७२ अ० २

वेदके प्रदान से आचार्य को पिता कहते हैं मौञ्जीबंधन से पूर्व वेदका कुछ भी अंश उच्चारण न करे और आह्लादिकों में जो वेदोक्त मंत्र हैं उनको छोड़कर और मंत्र उच्चारण न करे कारण कि जब तक वेद पढ़ने का अधिकार नहीं हुआ तब तक शूद्र के तुल्य है यहां बिना यज्ञोपवीत हुए शूद्र की समान तीनों वर्ण कहे १७१-१७२ अब आगे शूद्र का उपनयन नहीं होता यह दिखाते हैं ॥

नशूद्रेपातकं किंचिन्नचसंस्कारमर्हति ॥

नास्याधिकारोधर्मेस्तिनधर्मात्प्रतिषेधनम् ॥ १२६ ॥

यथायथाहिसदृत्त मातिष्ठत्यनसूयकः ॥

तथातथेमंचामुंचलोकं प्राप्नोत्यनिंदितः ॥ १२८ ॥

धर्मेप्सवस्तुधर्मज्ञाः सतांवृत्तमनुष्ठिताः ॥

मंत्रवर्जं नदुष्यन्तिप्रशंसांप्राप्नुवंतिच १२७ अ० १०

शूद्र को कोई पातक नहीं है और न कोई संस्कार योग्य है और न कोई वैदिक धर्म में इसको अधिकार है और कहे हुये धर्म करने का निषेध नहीं है ॥ १२६ ॥

निंदा को न करनेवाला शूद्र जैसा २ अच्छेपुरुषों के आचरणों को करता है, वैसा २ इस लोक तथा परलोक में उत्कृष्टताको प्राप्त होता है १२८ धर्मकी इच्छावाले तथा धर्म को जाननेवाले शूद्र मंत्रसे रहित होकर भी सत्पुरुषों के आचरण करते हुए दोषों को नहीं प्राप्त होते किन्तु प्रशंसा को प्राप्त होते हैं १२७ अब वेदमंत्रका अर्थ सुनिये (यथेमां) इसमें प्रसंग देखना योग्य है सो इससे पहला यह मंत्र है इस मंत्रमें इमाम् इदम् शब्द से प्रयोग है ॥

अग्निश्च पृथिवीच सन्नतेतेमेसन्नमता मदोवायुश्चान्तरिक्षं चसन्नतेतेमेसन्नमतामद आदित्यश्च द्यौश्च सन्नतेतेमे सन्नमतामद आपश्च वरुणश्च सन्नतेतेमे सन्नमतामदः सप्तस ७ सदोअष्टमीभूतसाधनीसकामाँ ॥ २ ॥ अध्वनस्कुरुसंज्ञानमस्तुमेऽमुना ?

(अग्निः) अग्नि (च) और (पृथिवी) भूमि (च) भी (सन्नते) परस्पर अनुकूलता से संगत हैं (ते) वे दोनों (मे) मेरे (अदः) असुक कामना को (सन्नमताम्) इर्मीप्रकार वशवर्ती करो (च) और (वायुः) वायु (च) और (अन्तरिक्षं) अन्तरिक्ष (सन्नते) संगतहैं (ते० वे मेरे इत्यादि) (च) और (आदित्यः) आदित्य (च) और (द्यौः) द्युलोक (सन्नते) जैसे परस्पर वशवर्तीहैं (ते० वे इत्यादि) (च) और (आपः) जल (च) और (वरुणः) वरुण (सन्नते) परस्पर संगतहैं (ते० वे) हेदेव जिस आपके (सप्त) सात (संसदः) अधिष्ठान अग्नि, वायु अन्तरिक्ष, आदित्य, द्युलोक, अप, वरुण

हूँ (अष्टमी आठवीं भूतसाधनी) प्राणियों की आधारस्वरूप वा उत्पादक भूमि है इन सबके अधिष्ठानस्वरूप तुम (अध्वनः) हमारे मार्गों को (सकामान्) सफल (कुरु) करो (मे) मेरी (अमुना) इस इष्ट से वा सबसे (संज्ञानं) संगति (अस्तु) हो, अर्थात् हे देव पथस्वरूप सप्तसंसद और आठवीं भूतसाधनी बुद्धि को हमारे आधीन करो अथवा विज्ञानात्मा के प्रति कहते हैं हे देव ! कि सप्त संसद, पांच ज्ञानेन्द्रिय, मन और बुद्धि यह सात स्थान और आठवीं प्राणियों को वश करनेवाली वाणी है आप हमारे मार्गों को सकाम करो इनके संग मेरी संगति हो । विशेष अर्थ हमारे वेद भाष्य में देखो अनन्तर यह मंत्र है ॥

यथेमांवाचंकल्याणीमावदानिजनेभ्यः ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्रा
यचार्यायचस्वायचारणाय प्रियोदेवानां दक्षिणायैदातुरिहभू-
यासमयमेकामः समृज्यतामुप मादोनमतु ॥ य० अ० २६ मं० २

पूर्व मंत्र में स्थित भूतसाधनी वाणी का अध्याहार होता है तब इसका यह अर्थ होता है कि यजक अन्न में यजमान अपने भूत्यों से कहता है (दक्षिणायै यथेमां भूतसाधनीं कल्याणीं वाचं जनेभ्यः आवदानि तथा त्वं कुरु इति शेषः)

भाव यह है कि (दक्षिणायै) दान देने को जनों के अर्थ (यथा) जैसे (इमाम्) इस भूतसाधनी (कल्याणीं) शोभना (वाचं) (दीयतां भुज्यताम्) दो भोजन करो ऐसी वाणी को (जनेभ्यः) सम्पूर्ण जनों के निमित्त (आवदानि) सबप्रकार से कहता हूँ वैसे तुम भी करो और कहो किन जनों के लिये (ब्रह्मराजन्याभ्याम्) ब्राह्मण क्षत्रियों के निमित्त (च) और शूद्राय शूद्र के निमित्त (अर्याय) वैश्यके निमित्त (स्वाय) अपने भूत्य के निमित्त तथा (अरणाय) अति शूद्रादि के निमित्त आशय यह कि दान भोजन में किसी जाति का विचार नहीं है सबको देना चाहिये ऐसा करने से (देवानाम्) देवताओं का (दातुः) सबके देनेवाले परमेश्वर का

(प्रियः) प्यारा (भूयासम्) हूँगा (मे) मेरा (अयम्) धन पुत्र लाभरूप (कामः) कार्य (समृध्यनाम्) समृद्धि की प्राप्ति हो (अदः) परलोक सुखादि (उपनमतु) प्राप्त हो २ इसमें 'दक्षिणाय' और 'दातु' पद आने से स्पष्टही अन्न और दान की महिमा विदित होती है ।

यदि दयानन्दजी काही अर्थ माना जाय तौ परमेश्वरकी वाणी भी मानने होगी जब वाणी हुई तौ शरीर भी होगा और वेदाविर्भाव प्रसंग भी स्वामीजी का स्वामीजी केही लेख से भूष्ट हो जायगा क्योंकि जब इस मंत्र उपदेशवत् अग्नि आदि को उपदेश कर सक्ते थे तौ उनके अन्तर्वेद का प्रादुर्भाव होना असंगत है इस स शूद्र को वेद पठन पाठन का उपदेश करना अशुचि में शुचि बुद्धिरूप अविद्या है और प्रथम तौ यहां स्वामीजी से यह पूछना है कि यह ब्राह्मणादि शब्द मंत्र में जाति के बोधक हैं अथवा जो कि तुमने पच्चीसवें वर्ष में परीक्षा से नियत करी है यह ब्राह्मणादि जाति उसके बोधक हैं, जैसे आपने ८८ पृष्ठ में माना है यदि प्रथम पक्ष कहोगे तौ ब्राह्मणत्वादि जाति सिद्ध होगई तौ आपकी स्वकपोल कल्पित वर्ण व्यवस्था है सो दत्तजलांजलि होगई, और यह भी विचारना चाहिये कि यह उपदेश आदि में होना चाहिये वा अन्त में होना चाहिये मध्य में कैसे होसका है क्योंकि (इमाम्) यह शब्द प्रयोग समीप वस्तु का बोधक है सो अभी तक चतुर्वेद विद्या समीप है नहीं वक्ष्यमाणा है और यदि गुणकृत वर्णव्यवस्था को मानकर मंत्रमें ब्राह्मणादि शब्द कहेंगे तब ब्राह्मणत्वादि शून्य में ब्राह्मणादि शब्द प्रयोग करनेसे ईश्वर भ्रान्त होगा क्योंकि तुम्हारे सिद्धान्त में पूर्ण तौ विद्वान् ब्राह्मण है सो अभी तक हुआ नहीं और जो पूर्ण विद्वान् है तिसको वेद विद्या उपदेशरूप ईश्वर की आज्ञा निष्फल है और शूद्रशब्द तमोगुण विशिष्ट का वाचक है तिसको भी वेद विद्या उपदेश की आज्ञा निष्फल है, और अरण्य शब्दार्थ जो अति शूद्र है तिसमें तौ सर्वथा उपदेश निष्फल है, जैसे

ऊर्ध्व में बीज बीना तैसे शुद्र और अति शुद्र में उपदेश निष्फल है और जब जातिही ब्राह्मणादिकों की लिख दी तो फिर (स्वीय अपने भृत्यों को) यह शब्द प्रयोग निष्फलही होजायगा क्या वे भृत्य चार वर्णों से पृथक् हैं इसकारण शुद्र को वेदका अधिकार कदापि नहीं और भी सुनिये ॥ शुद्र के मित्राद्य इतनों का और निषेध है ।

विद्याहवैब्राह्मणमाजगाम गोपायमा शेवधिष्टेऽहमस्मि ॥

असूयकायानृजवेऽयतायनमाद्रूयार्वायवतीतयास्याम् ॥

नि० अ० २ ख० ४

अर्थ—विद्या अधिदेवता कामरूपिणी होकर नियमित वेद वेदाङ्ग के जाननेवाले ब्राह्मण के पास आकर बोली (गोपायमाम्) मेरी रक्षाकर (अहम्) मैं रक्षित हुई (शेवधिः) खजाना हूँगी किनसे रक्षा करनी चाहिये (असूयकायानृजवेऽयताय) (असूयकः) पराया अपवाद निन्दा करनेवाले (अनृजु) जिसकी मन वाणी देहकी असमानवृत्तिहों (अयनः) विप्रकीर्णन्द्रियः जिसकी इन्द्रियां शुद्ध न हों ऐसे पुरुष से मुझे मन कहां ऐसा करने से मैं वीर्यवती हूँगी । स्वामीजी लिखते हैं कि चाण्डाल तक को वेद विद्या पढ़ा दो यह निरुक्त भाष्ययुक्त कौन से चूरणके साथ गड़ाप गये इससे नीचको कुटिल शुद्रों को कदापि विद्या नहीं देनी, इसी प्रकार स्त्रियों को वेदादि पढ़ने में अधिकार दिया है और (ब्रह्मचर्येण कन्या) इस मंत्र का अर्थ उल्टा लिखा है और इसमें स्त्रियों को वेद पढ़ना नहीं लिखा और जो चाहें मो पढ़ें केवल स्त्री शुद्रको मंत्रभागका पढ़ना मने किया है और वेदवाक्य का अर्थ यह है कि (ब्रह्मचर्येण युवानं पतिकन्याविन्दते) यह अन्वय हुआ अर्थात् ब्रह्मचर्य से जवान हुए पतिको कन्या प्राप्त होवे और (इमं मंत्रं पत्नी पठेत्) पहले तो इसका पताही नहीं लिखा कि कहां का है तो भी इसकी व्यवस्था इसप्रकार है कि—

वैवाहिको विधिः स्त्रीणां संस्कारो वैदिकः स्मृतः ।
पतिसेवा गुरौ वासो गृहार्थोऽग्निपरिक्रिया ॥ मनुः ॥

विवाह में वेदमंत्रसे संस्कार होता है यही स्त्रियों का यज्ञोपवीत है, पति सेवा करनी यही गुरुकुल का वास है, गृह का काम काज करना अग्निकी सेवा है, पति के सन्निधि में विवाह में संस्कार के अर्थ तथा कहीं यज्ञ में पत्नी के मंत्र चोलने की विधि है, सो ऋत्विक् कहला देते हैं कुछ पढ़ने की विधि नहीं है, गार्गी आदि स्त्रियें मंत्र भाग को छोड़ और सब कुछ पढ़ी थीं, इससे स्त्री शूद्रको वेद न पढ़ाना और भी सुनिये ।

योनधीत्यद्विजो वेद मन्यत्रकुरुते श्रमम् ।

सजीवन्नेव शूद्रत्वमाशुगच्छतिसान्वयः ॥ मनुः ॥ २ । १६८

जो ब्राह्मण वेदको छोड़ और विद्याओं में परिश्रम करता है वो जीते हुए ही शूद्रपनेक वंश सहित प्राप्त होजाता है अब विचारने की बात है जब कि वेद नहीं पढ़ने से शूद्रपना प्राप्त होता है तो शूद्र कैसे वेद पढ़सकते हैं क्योंकि जो ब्राह्मण भी वेद न पढ़े तो शूद्र सरीखा होजाय जब शूद्र वेद पढ़े तो वोह शूद्र कैसा तीनवर्ण तो वेद बिना पढ़े शूद्र सरीखे होजाते हैं, आप उन्हीं अवैदिक शूद्रों को वेद का अधिकार देते हों, धन्य है आपकी बुद्धि, मालूम होता है कि किसी शूद्रने कुछ झुका दिया है नहीं तो शूद्रोंकी ऐसी तरफदारी न करते कि पूर्व तो अधिकार नहीं यहां लिखदिया और शूद्र को वेद में अनधिकार होनेसे ईश्वर में पक्षपात का दोष नहीं आसक्ता, क्योंकि उसके कर्मही जब अनधिकार और शूद्रपने के थे तब तो उसका कल्याण उस शरीरकेही धर्मसे है इससे कर्मानुसार सुख दुःख ब्राह्मण शूद्रादि होनेमें अपने अपने कार्य धर्म के सब पृथक् पृथक् अधिकारी हैं यदि दोष देते हो तो ईश्वर धन संतान भी सबको बराबर देता और जब कर्म में न्यूनाधिक है तो जाति भी कर्म से है इसका विशेष वर्णन जाति प्रकरण में लिखेंगे ॥

भास्करप्रकाश—

अधिकार शब्द के दो अर्थ हैं ? 'योग्यता' २ 'स्वत्व' । स्वामी जी ने वा अन्य किसी ऋषि ने जहां २ शूद्र को मंत्र मंदिता छोड़ कर अन्य सब कुछ पढ़ना लिखा है उसका तात्पर्य योग्यतापरक है अर्थात् शूद्र मन्त्रमंदिता पढ़ने के अयोग्य है वा उस के पढ़ने की योग्यता से रहित है । जैसे स्कूल में सब विद्यार्थी ऊंची क्लास में पढ़ने को योग्य नहीं होते किन्तु कोई २ होते हैं । जो नहीं होते उन्हें क्या जा सकता है कि वे ऊंची कक्षा (क्लास) के योग्य नहीं वा उन्हें उस कक्षा में पढ़ने का अधिकार नहीं है ।

'स्वत्व' अपनापन को कहते हैं । और जहां २ वेदमन्त्रों ऋषिवाक्यों और सत्यार्थप्र० में वेद पढ़ने का शूद्र का अधिकार है यह लिखा है उस का तात्पर्य स्वत्व (इस्तहकाक) परक है । अर्थात् जैसे ईश्वर का ज्ञान अन्य पदार्थों से उपकार ग्रहण करने का योग्यतानुसार सब को स्वत्व (अधिकार वा इस्तहकाक) है उसी प्रकार वेद जो ईश्वर का दिया ज्ञान है उस पर भी सब का स्वत्व (हक) है । तदनुसार शूद्र का भी अधिकार (हक) है ॥

योग्यता और स्वत्व में भेद है । योग्यता न होने से अयोग्य पुरुष उस पद पर बैठाया भी जावे तौभी अशक्त होवे । और स्वत्व न होना वह कहाता है कि चाहे योग्य भी हो तब भी स्वत्व न होने से उस पद पर नहीं बैठाया जा सके । जैसे देवदत्त के धन का स्वत्व (हक) उस का पुत्र ही रखता है । अन्य किसी का पुत्र चाहे इस योग्य है कि वह उस धन को लेकर बर्त सके परन्तु अधिकारी (हकदार) नहीं है बस इतना प्रकार शूद्र अपना अयोग्यता के कारण अनधिकारी है परन्तु स्वत्व के कारण अधिकारी (मुस्तहक) है । क्योंकि एक ही पिता परमात्मा की वेद विद्या होने से उस के पुत्र ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्रादि सब ही अधिकारी (मुस्तहक) हैं । जैसे किर्मा पिता के चार पुत्र में से योग्यता के तारतम्य (कमी बेशी) से कोई अधिकारी हो और कोई न हो परन्तु स्वत्व सब को है अर्थात् जब ही उन में से कोई अयोग्य अपना अयोग्यता दूर करले तब ही अधिकारी हो जायगा । परन्तु दूसरे पुरुष का पुत्र पूर्वोक्त अन्य पिता के धनादि का अधिकारी योग्यता होने पर भी नहीं हो सकता । इसी प्रकार परमात्मा के

चारों पुत्र ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र हैं उनमें से जो अयोग्य है वह कोष का फल नहीं पाता परन्तु अयोग्यता दूर करके योग्य होने पर सब को उस पर अधिकार (इसतहकाक) अवश्य प्राप्त है। जैसे अन्य किसी का पुत्र अन्य किसी के धनादि का अधिकारी योग्यता होने पर भी नहीं हो सकता। वैसे परमात्मा की वेद संपत्ति का अधिकारी योग्य होने पर भी कोई (शूद्रादिकुलोत्पन्न होने मात्र से) न हो यह नहीं होना चाहिये, न हो सकता है।

हम पूर्व लिख चुके हैं कि अनधिकार का जहां जहां वर्णन है वह योग्यता के अभाव से है।

अयोग्य दशा में शूद्र को अपनी अयोग्यता के कारण अधिकार नहीं। अयोग्यता से योग्यता को पहुंचने की सन्धि में यद्यपि शूद्र शब्द का प्रयोग पूर्वावस्था के अभ्यास से रहो परन्तु योग्यता प्राप्त होते ही वह अधिकारी हो जाता है जैसा कि आप के ही लिखे मनु के वक्ष्यमाण श्लोकों से सिद्ध है :—

न शूद्रे पातकं किञ्चिन्न च संस्कारमर्हति ।

नास्याधिकारो धर्मेऽस्ति न धर्मान्प्रतिषेधनम् ॥ १० । १२६ ॥

धर्मेऽसवस्तु धर्मज्ञाः सतां वृत्तमनुष्ठिताः ।

मन्त्रवर्जं न दुष्यन्ति प्रशंसां प्राप्नुवन्ति च ॥ १२७ ॥

यथा यथाहि सद्बृत्तमातिष्ठत्यनमूयकः ।

तथा तथेम चासुं च लोकं प्राप्नोत्यानिन्दितः ॥ १२८ ॥

अर्थ—न शूद्र में कुछ पातक है, न वह संस्कार योग्य है, न उस का धर्म में अधिकार है, न धर्म करने का उसे निषेध है ॥ १२६ ॥ धर्म की इच्छा वाले तथा धर्म को जानने वाले शूद्र मन्त्र से रहित करके भी सत् पुरुषों के आचरण करते हुवे दोषों को नहीं प्राप्त होते किन्तु प्रशंसा को प्राप्त होते हैं ॥ १२७ ॥ निन्दा को न करने वाला शूद्र, जैसा जैसा अच्छे पुरुषों के आचरणों को करता है वैसा वैसा इस लोक तथा परलोक में उत्कृष्टता को प्राप्त होता है ॥ १२८ ॥ यह श्लोक तथा अर्थ हम ने द० ति० भा० का ही उद्धृत किया है हम कुछ देर के लिए इसी को ठीक मान लेते हैं और पाठकों से निवेदन करते हैं कि ये श्लोक और इन का

अर्थ स्वामी जी के सत्यार्थप्रकाशस्थ सिद्धान्त को पुष्ट करता है वा पं० ज्वाला-
प्रसादजी के सिद्धान्त को ? १२६ वें श्लोक में स्पष्ट कहा है कि शूद्र को न
धर्म का अधिकार न धर्म का निषेध है। अर्थात् साधारणतया अयोग्यता के कारण
जिन जिन धर्मकार्यों को वह नहीं कर सकता उन्हीं का अधिकार नहीं परन्तु जिन
जिन धर्मकार्यों की योग्यता उस में होती जावे उन उन को करता जावे क्योंकि
धर्मकार्य का निषेध भी नहीं है। १२७ और १२८ वें श्लोकों में इसी को और
भी स्पष्ट किया है कि धर्मज्ञ शूद्र, जैसे जैसे मदाचार (धर्म) को करता है वैसे वैसे
इस लोक और परलोक में उत्कृष्टता का प्राप्ति होता है। हम पं० ज्वालाप्रसादजी
से पूछते हैं कि परलोक की उत्कृष्टता तो आप कहेंगे कि स्वर्ग प्राप्त होता है देव-
योनि प्राप्त होती है परन्तु इस लोक की उत्कृष्टता इसके अतिरिक्त क्या है कि
शूद्र, शूद्र न रहे। तात्पर्य यह है कि यद्यपि शूद्र अयोग्यता के कारण धर्माधिकारी
नहीं होता परन्तु जैसे जैसे योग्यता बढ़ता जावे वैसे वैसे अधिकारी होता जावे
और अपने से उत्कृष्ट (वर्ण) पद का प्राप्ति होता जावे इस में कोई धर्मशास्त्र का
निषेध (रोक टोक) नहीं है।

आप इस मन्त्र में वाणी का प्रयोक्ता यजमान को बताते हैं परन्तु आप के
माननीय महीधर अपने भाष्य में इस ऋचा को ब्राह्मी गायत्री लिखते हैं जिस का
तात्पर्य यह है कि इस ऋचा का ब्रह्मा वा ब्रह्मा देवता और गायत्री छन्द है। तब
बताइये कि आप का लेख महीधर के विरुद्ध कैसे माना जावे। नहीं नहीं आप का
लेख तो अपना कुछ है ही नहीं किन्तु आप ने तो महीधर से ही लिया है महीधर
को भी यह न सूझा कि प्रथम मन्त्र के आरम्भ में तो इस द्वितीय मन्त्र को गायत्री
ब्राह्मी लिखा फिर टीका करते समय एक अर्थ में स्मरण रक्खा द्वितीय में भूल
गये। इस से पूर्व मन्त्र का अर्थ महीधर ने प्रथम इस प्रकार लिखा है :—

परमात्मानं प्रत्युच्यते । हे स्वामिन् ! यस्य तव मज्जसंमदनानि अधिष्ठानानि
अग्निवाय्वन्तरिक्षादित्यष्टलोकाम्बुवरुणारुद्रानि तत्राष्टर्मा भूतसाधनी पृथ्वी भूतानि
साधयति उत्पादयति भूतसाधनी भूमिं विना भूतोत्पत्तेरभावात्० इत्यादि ।

अर्थ—परमात्मा के प्रति कहा जाता है कि हे स्वामिन् ! जिस आपके ७
अधिष्ठान १ अग्नि, २ वायु, ३ अन्नग्नि, ४ आदित्य, ५ अष्टलोक, ६ जल, ७

वरुण हैं। उन में ८ वीं पृथ्वी है जो कि भूतसाधनी है क्योंकि भूमि के बिना भूतोत्पत्ति असम्भव है इस कारण पृथ्वी को भूतसाधनी कहा।

आगे चलकर महीधर ने दूसरा अर्थ किया कि :—

विज्ञानात्मा वोच्यते । यस्य तत्र मन्त्र मन्त्रः पञ्च बुद्धीन्द्रियाणि मनोबुद्धिश्चेति सप्तायतनानि अष्टमी भूतसाधनी भूतानिमाधयति वशीकरोति भूतसाधनी वाक्० इत्यादि ।

अर्थ—अथवा विज्ञानात्मा के प्रति कहा जाता है कि जिस आप के ७ आयतन हैं ५ ज्ञानेन्द्रियां ६ मन ७ बुद्धि । इन में ८ वीं वाणी है जो भूतसाधनी अर्थात् भूतों को वश में करने वाली है ।

अब विचार करना चाहिए कि पूरा मन्त्र "अग्निश्च पृथिवी च" इत्यादि में अग्नि आदि ७ अधिष्ठातों के नाम और ८ वीं पृथ्वी का नाम स्पष्ट आया है फिर खेचतान करके भी ५ ज्ञानेन्द्रियां ६ मन ७ बुद्धि ८ वाणी यह अर्थ कैसे हो सकता है और महीधर ने ज्ञानेन्द्रियादि अर्थ किया तो उसे योग्य था कि अग्नि आदि ८ पदों से जो मन्त्र में आये हैं अपने अर्थाष्ट अर्थों को व्याकरण निरुक्त आदि किसी प्रमाण से सिद्ध करता और महीधर ने नहीं किया तो उसको मानने और उस के सहारे से अपना प्रयोजन सिद्ध करने वाले पं० ज्वालाप्रसादजी को वह अर्थ किसी प्रकार सिद्ध करना था ऐसा न करके केवल अप्रामाणिक लेखमात्र से ७ ज्ञानेन्द्रियादि और ८ वीं वाणी अर्थ लेना सर्वथा असंगत है। हम कोई दूसरा अर्थ भी नहीं करते किन्तु महीधर ने जो प्रथम एक अर्थ मूलमन्त्रके अक्षरानुकूल किया है उसी के ऊपर पं० ज्वालाप्रसादजी तथा पाठकों को ध्यान दिलाते हैं कि वहां वाणी का वर्णन नहीं, फिर उमा वाणी की अनुवृत्ति से जो (यथेमां वाचम्०) इस अगले मन्त्र में उमावाणी का गृहण नहीं करते सो ठीक नहीं हैं। और पूर्वमन्त्र में यदि मन्त्रघडन्त अर्थ में से वाणी की अनुवृत्ति लाई भी जावे तो सामान्य करके विज्ञानात्मा की सामान्य वाणी का गृहण होगा परन्तु यजमान की दीयताम् भुज्यताम् आदि वाणी का अर्थ करना तो महीधरकल्पित द्वितीय अर्थ से भी असंगत है।

हमारे पक्ष में दोनों मन्त्रों की सङ्गति इस प्रकार हो जाती है कि पूर्व मन्त्र में अग्नि वायु पृथिवी आदि शारीरिक उपकार करने वाले ८ पदार्थों का वर्णन करके अगले मन्त्र में कृपालु परमात्मा ने आत्मिक उपकारार्थ वेद का वर्णन करके आत्मा के उपकार का मार्ग बताया और कहा कि मैंने तुम को यह कल्याणी वाणी दी है, तुम ब्राह्मण क्षत्रियादि सब लोगों को इस का उपदेश करो यह ज्ञान की दक्षिणा है इस दक्षिणा का दाता देवों का प्रिय होना है इत्यादि ।

यहां तक हमने इन के और महाश्वर के द्वितीय अर्थ की असङ्गति तथा स्वामी जी कृत अर्थ की सङ्गति दिखायी अब जो तर्क इन्होंने स्वामीजी के अर्थ पर किये हैं उनका प्रत्युत्तर देते हैं ।

वेद को वाणी शब्द से व्यवहार करना, भाविनी संज्ञा को लेकर है अर्थात् परमात्मा जानते हैं कि हमारे उपदेश किये मन्त्रों को कृपि लोग वाणी द्वारा संसार में फैलायेंगे तब यह उपदेश वेदवाणी कहलायगा । भाविनी संज्ञा इसको कहते हैं जैसे कोई पुरुष भीत चिन्तित समय आरम्भ की ईंट रखता हो और उससे कोई पूछे कि क्या करते हो तब वह भाविनी = आगे होने वाली संज्ञा का प्रयोग करके कहता है कि भीत चिन्तित हूं तब यद्यपि उसको "इष्टका चायते" कहना था परन्तु "भित्तिश्चीयते" कहता है । इसी प्रकार तार पूरने वाला कहता है कि कपड़ा बुनता हूं क्योंकि तार पूरने से कपड़ा बन जायगा और ईंट चिन्तने से भीत बन जायगी । इसी प्रकार परमात्मा भी यह जानते हुवे कहते हैं कि कृपियों के हृदय में उपदेश करने से उन की वाणी द्वारा प्रचार होगा, इस लिये शरीर का शङ्का करना व्यर्थ है । सपर्यगाच्छ क्रमकायम्० यजुः ४० । ८ इत्यादि अनेकशः प्रमाण इस विषय के हैं कि परमात्मा अकाय = शरीर रहित है । शूद्र को अध्ययन करना अशुचि का शुचि मानना नहीं किन्तु अज्ञानी अशुचि जीव को पवित्र वेदापदेश के द्वारा शुचि करना है ।

इस मन्त्र में आये ब्राह्मणादि पद गुणकर्मस्वभावानुकूल वर्णों के सन्तानपरक हैं और पिछली तथा होने वाली संज्ञापरक हैं । और हम भी तब आप से पूछेंगे कि ब्राह्मणादि पद केवल जन्मपरक हैं वा गुणकर्मस्वभावानुगत जन्मपरक हैं । यदि केवल जन्मपरक हैं तब ईसाई मुसलमानादि मतों में गये हुए जन्म के ब्राह्मणों को भी ब्राह्मणत्व प्राप्त है । यदि गुणकर्म स्वभाव और जन्म सब मिला कर ब्राह्मणादि

के साथ अव्यवहित अर्थात् आसन्नानि सम्बन्ध होता है इन्द्रियों के साथ मन का और मन के साथ आत्मा के भोग से ज्ञान उत्पन्न होता है उसको प्रत्यक्ष कहते हैं परन्तु जो व्यपदेश्य अर्थात् भोगाभोगी के सम्बन्ध से उत्पन्न होता है वह ज्ञान न हो । जैसा किसी ने किसी से कहा कि “तू जल ले आ” वह ला के उस के पास धर के बोला कि “यह जल है” परन्तु वहां “जल” इन दो अक्षरों की संज्ञा लाने वा मँगानेवाला नहीं देख सकता है । किन्तु जिस पदार्थ का नाम जल है वही प्रत्यक्ष होता है और जो शब्द से ज्ञान उत्पन्न होता है वह शब्द प्रमाण का विषय है । “अव्यभिचारि” जैसे किसी ने रात्रि में खम्भे को देख के पुरुष का निश्चय कर लिया जब दिन में उसको देखा तो रात्रि का पुरुषज्ञान नष्ट होकर स्तम्भज्ञान रहा ऐसे विनाशीज्ञान का नाम व्यभिचारी है सो प्रत्यक्ष नहीं कहाता । “व्यवसायात्मक” किसी ने दूर से नदी का बालू को देख के कहा कि “वहां बस्त्र सूख रहे हैं जल है वा और कुल है” वा “वस्त्र सूख रहे वा यज्ञदत्त” जब तक एक निश्चय न हो तब तक वह प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं है किन्तु जो अव्यपदेश्य, अव्यभिचारि और निश्चयात्मक ज्ञान है उसी को प्रत्यक्ष कहते हैं ।

दूसरा अनुमान :—

अथ तत्पूर्वकं त्रिविधमनुमानं पूर्ववन्नेवमभ्यान्यतां दृष्टञ्च ॥

न्याय० । अ० १ । आ० १ । सू० ५ ॥

जो प्रत्यक्षपूर्वक अर्थात् जिसका कोई एक देश वा सम्पूर्ण पदार्थ किसी स्थान वा काल में प्रत्यक्ष हुआ हो उसका दूर देश से सहचारी एक देश के प्रत्यक्ष होने से अदृष्ट अवयवी का ज्ञान होने का अनुमान कहते हैं । जैसे पुत्र को देख के पिता, पर्वतादि में धूम को देख के अग्नि, जगत् में सुख दुःख देख के पूर्व जन्म का ज्ञान होता है । वह अनुमान तीन प्रकार का है । एक “पूर्ववत्” जैसे बादलों को देख के वर्षा, विवाह को देख के सज्जानोत्पत्ति, गढ़ने हुए विद्यार्थियों को देख के विद्या होने का निश्चय होता है, इत्यादि जहां जहां कारण का देख के कार्य का ज्ञान हो वह “पूर्ववत्” । दूसरा “शेषवत्” अर्थात् जहां कार्य का देख के कारण का ज्ञान हो जैसे नदी के प्रवाह की बढ़ती देख के ऊपर हुई वर्षा का, पुत्र को देख के पिता का, सृष्टि को देख के अनादि कारण का तथा कर्ता ईश्वर का और पाप पुण्य के आच-

रण देख के सुख दुख का ज्ञान होता है इसी को "शेषवत" कहते हैं। तीसरा "सामान्यतोदृष्ट" जो कोई किसी का कार्य कारण न हो परन्तु किसी प्रकार का साधर्म्य एक दूसरे के साथ हो जैसे कोई भी बिना चले दूसरे स्थान को नहीं जा सकता वैसे ही दूसरों का भी स्थानान्तर में जाना बिना गमन के कभी नहीं हो सकता। अनुमान शब्द का अर्थ यही है कि "अनु अग्रां प्रत्यक्षस्य पञ्चान्मीयते ज्ञायते येन तदनुमानम्" जो प्रत्यक्ष के पश्चात् उत्पन्न हो जैसे धूम के प्रत्यक्ष देखे बिना अदृष्ट अग्नि का ज्ञान कभी नहीं हो सकता।

तीसरा उपमान :—

प्रसिद्धसाधर्म्यात्साध्यसाधनमुपमानम् ॥

न्याय० । अ० १ । आ० १ । सू० ६ ॥

जो प्रसिद्ध प्रत्यक्ष साधर्म्य से साध्य अर्थात् सिद्ध करने योग्य ज्ञान की सिद्धि करने का साधन हो उसको उपमान कहते हैं। "अभीयते येन तदुपमानम्" जैसे किसी ने किसी भृत्य से कहा कि "तु विष्णुमित्र को बुला ला" "वह बोला कि मैंने उसको कभी नहीं देखा" उसके स्वामी ने कहा कि "जैसा यह देवदत्त है वैसा ही वह विष्णुमित्र है" वा जैसी यह गाय है वैसे ही गाय अर्थात् नीलगाय होती है, जब वह वहां गया और देवदत्त के सदृश उपमा देख निश्चय कर लिया कि यही विष्णुमित्र है उसको ले आया। अथवा किसी जंगल में जिस पशु को गाय के तुल्य देखा उसको निश्चय कर लिया कि इमा का नाम गवय है ॥

चौथा शब्द प्रमाण :—

आप्तोपदेशः शब्दः ॥ न्याय० । अ० १ । आ० १ । सू० ७ ॥

जो आप्त अर्थात् पूर्ण विद्वान्, धर्मात्मा, परोपकारप्रिय, सत्यवादी, पुरुषार्थी, जितेन्द्रिय पुरुष जैसा अपने आत्मा में जगता हो और जिससे सुख पाया हो उसी के कथन की इच्छा से प्रेरित भव मनुष्यों के कल्याणार्थ उपदेष्टा हो अर्थात् जो जितने पृथिवी से लेके परमेश्वर पर्यन्त पदार्थों का ज्ञान प्राप्त होकर उपदेष्टा होता है। जो ऐसे पुरुष और पूर्ण आप्त परमेश्वर के उपदेश वेद हैं उन्हीं को शब्दप्रमाण जानो ॥

पांचवां ऐतिह्य :—

न चतुष्ट्व मैतिह्यार्थापत्तिमम्भवामावप्रामाण्यात् ॥

न्याय० । अ० २ । आ० २ । सू० १ ॥

जो इतिह्य अर्थात् इस प्रकार का था उसने इस प्रकार किया अर्थात् किसी के जीवनचरित्र का नाम ऐतिह्य है ।

छठा अर्थापत्ति :—

“अर्थादापद्यते सा अर्थापत्तिः” केनाचिदुच्यते “सत्सु घनेषु वृष्टिः सति कारणे कार्यं भवतीति किमत्र प्रसज्यते. अग्न्यु घनेषु वृष्टिरसति कारणे च कार्यं न भवति” जैसे किसी ने किसी से कहा कि “बादल के होने से वर्षा और कारण के होने से कार्य उत्पन्न होता है” इससे बिना कहे यह दूसरी बात सिद्ध होती है कि बिना बादल वर्षा और बिना कारण कार्य कभी नहीं हो सकता ॥

सातवां सम्भव :—

“सम्भवति यस्मिन् स सम्भवः” कोई कहे कि “माता पिता के बिना सन्तानोत्पत्ति हुई, किसी ने मृतक जिलाये, पहाड़ उठाये, समुद्र में पत्थर तराये, चन्द्रमा के टुकड़े किये, परमेश्वर का अवतार हुआ, मनुष्य के सींग देखे और बन्ध्या के पुत्र और पुत्री का विवाह किया” इत्यादि सब असम्भव हैं क्योंकि ये सब बातें सृष्टिक्रम से विरुद्ध हैं । जो बात सृष्टिक्रम के अनुकूल हो वही सम्भव है ॥

आठवां अभाव :—

“न भवन्ति यस्मिन् सोऽभावः” जेम्मे निर्मा ने किसी से कहा कि “हाथी ले आ” वह वहां हाथी का अभाव देखकर जहां हाथी था वहां से ले आया । ये आठ प्रमाण । इनमें से जो शब्द में गणित और अनुमान में अर्थापत्ति सम्भव अभाव की गणना करें तो चार प्रमाण रह जाते हैं । इन पांच प्रकार की परीक्षाओं से मनुष्य सत्यासत्य का निश्चय कर सकता है अन्यथा नहीं ॥

धर्मविशेषप्रसूताद् द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषप्रवायानां पदार्थानां साधर्म्यवैधर्म्याभ्यां तत्त्वज्ञानान्निःश्रेयसम् ॥ वै० । अ० १ । आ० १ । सू० ४ ॥

जब मनुष्य धर्म के यथायोग्य अनुष्ठान करने से पवित्र होकर “साधर्म्य” अर्थात् जो तुल्य धर्म हैं जैसा पृथिवी जड़ और जल भी जड़ “वैधर्म्य” अर्थात् पृथिवी कठोर और जल कोमल इसी प्रकार से द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय इन छः पदार्थों के तत्त्वज्ञान अर्थात् स्वरूपज्ञान को प्राप्त होता तब उससे “निःश्रेयसम्” मोक्ष को प्राप्त होता है ॥

पृथिव्यापस्तेजोवायुराकाशं काला दिशा आत्मा मन इति द्रव्याणि ॥

वै० । अ० १ । आ० १ । सू० ५ ॥

पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, काल, दिशा, आत्मा और मन ये नवद्रव्य हैं ।

क्रियागुणवत्समवायिकारणमिति द्रव्यलक्षणम् ॥

वै० । अ० १ । आ० १ । सू० १५ ॥

“क्रियाश्च गुणाश्च विद्यन्ते यास्मिस्ततः क्रियागुणवत्” जिसमें क्रियागुण और केवल गुण रहें उसको द्रव्य कहते हैं । उनमें से पृथिवी, जल, तेज, वायु, मन और आत्मा ये छः द्रव्य क्रिया और गुणवाले हैं । तथा आकाश, काल और दिशा ये तीन क्रियारहित गुणवाले हैं (समवायि) “कारणं शीलं यस्य तत् समवायि, प्राणवृत्तित्वं कारणं समवायि च तत्कारणं न समवायिकारणम्” “लक्ष्यते येन तल्लक्षणम्” जो मिलने के स्वभावयुक्त कार्य से कारण पूर्वकालस्थ हो उसी को द्रव्य कहते हैं जिससे लक्ष्य जाना जाय जैसा आग से रूप जाना जाता है उसको लक्षण कहते हैं ॥

रूपरसगन्धस्पर्शवर्ता पृथिवी ॥

वै० । अ० २ । आ० १ । सू० १ ॥

रूप, रस, गन्ध, स्पर्शवाला पृथिवी है । उनमें रूप, रस और स्पर्श अग्नि जल और वायु के योग से हैं ॥

व्यवस्थितः पृथिव्यां गन्धः ॥

वै० । अ० २ । आ० २ । सू० २ ॥

पृथिवी में गन्ध गुण स्वाभाविक है । वैसे ही जल में रस, अग्नि में रूप, वायु में स्पर्श और आकाश में शब्द स्वाभाविक हैं ॥

रूपरसस्पर्शवत्य आपो द्रवाः स्निग्धाः ॥

वै० । अ० २ । आ० १ । सू० २ ॥

रूप, रस और स्पर्शवान् द्रवीभूत और कोमल जल कहाता है । परन्तु इनमें जल का रस स्वाभाविक गुण तथा रूप स्पर्श अग्नि और वायु के योग से हैं ॥

अप्सु शीतता ॥ वै० । अ० २ । आ० २ । सू० ५ ॥

और जल में शीतलत्व गुण भी स्वाभाविक है ॥

तेजो रूपस्पर्शवत् ॥ वै० । अ० २ । आ० १ । सू० ३ ॥

जो रूप और स्पर्शवाला है वह तेज है । परन्तु इसमें रूप स्वाभाविक और स्पर्श वायु के योग से है ॥

स्पर्शवान् वायुः ॥ वै० । अ० २ । आ० १ । सू० ४ ॥

स्पर्श गुणवाला वायु है । परन्तु इसमें भी उष्णता शीतता तेज और जल के योग से रहते हैं ॥

त आकाशे न विद्यन्ते ॥ वै० । अ० २ । आ० १ । सू० ५ ॥

रूप, रस, गन्ध और स्पर्श आकाश में नहीं हैं । किन्तु शब्द ही आकाश का गुण है ।

निष्क्रमणं प्रवेशनमित्याकाशस्य लिङ्गम् ॥ वै० । अ० २ । आ० १ । सू० २० ॥

जिसमें प्रवेश और निकलना होता है वह आकाश का लिङ्ग है ॥

कार्यान्तराप्तादुर्भावाच्च शब्दः स्पर्शवतामगुणः ॥

वै० । अ० २ । आ० १ । सू० २५ ॥

अन्य पृथिवी आदि कार्यों से प्रकट न होने से शब्द स्पर्श गुणवाले भूमि आदि का गुण नहीं है । किन्तु शब्द आकाश ही का गुण है ॥

अपरस्मिन्नपरं युगपच्चिरं क्षिप्रमिति काललिङ्गानि ॥

वै० । अ० २ । आ० २ । सू० ६ ॥

जिसमें अपर पर (युगपत्) एकवार (चिरम्) विलम्ब (क्षिप्रम्) शीघ्र इत्यादि प्रयोग होते हैं उसको काल कहते हैं ॥

नित्येष्वभावादनित्येषु भावात्कारणे कालाख्येति ॥

वै० । अ० २ । आ० २ । सू० ९ ॥

जो नित्यपदार्थों में नहो और अनित्यों में हो इसलिये कारण में ही काल संज्ञा है।

इत इदमिति यतस्तद्विषयं लिङ्गम् ॥

वै० । अ० २ । आ० २ । सू० १० ॥

यहां से यह पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर, ऊपर, नीचे जिसमें यह व्यवहार होता है उसी को दिशा कहते हैं ॥

आदित्यसंयोगाद् भूतपूर्वाद् भविष्यतो भूताच्च प्राची ॥

वै० । अ० २ । आ० २ । सू० १४ ॥

जिस ओर प्रथम आदित्य का संयोग हुआ है, होगा, उसको पूर्व दिशा कहते हैं । और जहां अस्त हो उसको पश्चिम कहते हैं पूर्वाभिमुख मनुष्य के दाहिनी ओर दक्षिण और बाईं ओर उत्तर दिशा कहानी है ॥

एतेन दिगन्तरालानि व्याख्यातानि ॥

वै० । अ० २ । आ० २ । सू० १६ ॥

इससे पूर्व दक्षिण के बीच की दिशा को आग्नेयी, दक्षिण पश्चिम के बीच को नैऋति, पश्चिम उत्तर के बीच को वायवी और उत्तर पूर्व के बीच को ऐशानी दिशा कहते हैं ॥

इच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदुःखज्ञानान्यात्मनोलिङ्गमिति ॥

न्याय० । अ० १ । सू० १० ॥

जिसमें (इच्छा) राग, (द्वेष) वैराग्य, (प्रयत्न) पुरुषार्थ, सुख, दुःख, (ज्ञान) जानना गुण हों वह जीवात्मा कहाता है । वंशेषिक में इतना विशेष है ।

प्राणाऽपाननिमेषोन्मेषजीवनमनोगतान्द्रियान्तर्विकाराः

सुखदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्नाश्चात्मनो लिङ्गानि ॥

वै० । अ० ३ । आ० २ । सू० ४ ॥

(प्राण) बाहर से वायु को भीतर लेना (अपान) भीतर से वायु को निकालना

(निमेष) आंख को नीचे ढांकना (उन्मेष) आंख को ऊपर उठाना (जीवन) प्राण का धारण करना (मनः) मनन विचार अर्थात् ज्ञान (गति) यथेष्ट गमन करना (इन्द्रिय) इन्द्रियों को विषयों में चलाना उनसे विषयों का ग्रहण करना (अन्तर्विकार) क्षुधा, तृषा, ज्वर, पीड़ा आदि विकारों का होना, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष और प्रयत्न ये सब आत्मा के लिङ्ग अर्थात् कर्म और गुण हैं ।

युगपज्ज्ञानानुत्पत्तिर्मनसो लिङ्गम् ॥

न्याय० । अ० १ । आ० १ । सू० १६ ॥

जिससे एक काल में दो पदार्थों का ग्रहण ज्ञान नहीं होता उसको मन कहते हैं । यह द्रव्य का स्वरूप और लक्षण कहा अब गुणों का कहते हैं :—

रूपरसगन्धस्पर्शाः संख्यापरिमाणानि पृथक्त्वं संयोगविभागौ परत्वाऽपरत्वे बुद्धयः सुखदुःखे इच्छाद्वेषौ प्रयत्नाश्च गुणाः ॥

वै० १ । अ० १ । अ० १ । सू० ६ ॥

रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, गुणत्व, द्रवत्व, स्नेह, संस्कार, धर्म, अधर्म और शब्द ये २४ गुण कहाते हैं ।

द्रव्याश्रयगुणवान् संयोगविभागेऽनकारणमनपेक्ष इति गुणलक्षणम् ॥

वै० । अ० १ । आ० २ । सू० १६ ॥

गुण उसको कहते हैं कि जो द्रव्य के आश्रय रहे अन्य गुण का धारण न करे संयोग और विभाग में कारण न हो अनपेक्ष अर्थात् एक दूसरे की अपेक्षा न करे ।

श्रोत्रोपलब्धिर्बुद्धिर्निर्ग्राह्यः प्रयोगेणाऽभिज्वलित आकाशदेशः शब्दः ॥

महाभाष्ये ॥

जिसकी श्रोत्रों से प्राप्ति, जो बुद्धि से ग्रहण करने योग्य और प्रयोग से प्रकाशित तथा आकाश जिसका देश है वह शब्द कहाता है नेत्र से जिसका ग्रहण हो वह रूप, जिह्वा से जिस मिष्टादि अनेक प्रकार का ग्रहण होता है वह रस, नासिका से जिसका ग्रहण होता वह गन्ध, त्वचा से जिसका ग्रहण होता वह स्पर्श, एक द्वि इत्यादि गणना जिससे होती है वह संख्या, जिससे तोल अर्थात् हलका

भारी विदित होता है वह परिमाण, एक दूसरे से अलग होना वह पृथक्त्व, एक दूसरे के साथ मिलना वह संयोग, एक दूसरे से मिले हुए के अनेक टुकड़े होना वह विभाग, इससे यह पर है वह पर, उससे यह उर है वह अपर जिससे अच्छे बुरे का ज्ञान होता है वह बुद्धि, आनन्द का नाम सुख, क्लेश का नाम दुःख, इच्छा—राग, द्वेष—विरोध, (प्रयत्न) अनेक प्रकार का बल पुरुषार्थ, (गुरुत्व) भारीपन, (द्रवत्व) पिघल जाना, (स्नेह) प्रीति और चिकनापन, (संस्कार) दूसरे के योग से वासना का होना, (धर्म) न्यायाचरण और कठिनत्वादि, (अधर्म) अन्यायाचरण और कठिनता से विरुद्ध कोमलता ये चौबीस (२४) गुण हैं।

उत्क्षेपणमवक्षेपणमाकुञ्चनं प्रसारणं गमनमिति कर्माणि ॥

वै० । अ० १ । आ० १ । सू० ७ ॥

“उत्क्षेपण” ऊपर को चेष्टा करना “अवक्षेपण” नीचे को चेष्टा करना “आकुञ्चन” सङ्कोच करना “प्रसारण” फैलाना “गमन” आना जाना घूमना आदि इनको कर्म कहते हैं। अब कर्म का लक्षण :—

एकद्रव्यमगुणं संयोगविभागेष्वनपेक्षकारणमिति कर्मलक्षणम् ॥

वै० । अ० १ । आ० १ । सू० १७ ॥

“एकद्रव्यमाश्रय आधारो यस्य तदेकद्रव्यं न विद्यते गुणो यस्य यस्मिन् वा तद्गुणं संयोगेषु विभागेषु चाऽपेक्षारहितं कारणं तत्कर्मलक्षणम्” “अथवा यत् क्रियते तत्कर्म, लक्ष्यते येन तल्लक्षणम्, कर्मणो लक्षणं कर्मलक्षणम्” द्रव्य के आश्रित गुणों से रहित संयोग और विभाग होने में अपेक्षारहित कारण हो उसको कर्म कहते हैं।

द्रव्यगुणकर्मणां द्रव्यं कारणं सामान्यम् ॥

वै० । अ० १ । आ० १ । सू० १८ ॥

जो कार्य द्रव्य गुण और कर्म का कारण द्रव्य है वह सामान्य द्रव्य है ॥

द्रव्याणां द्रव्यं कार्यं सामान्यम् ॥

वै० । अ० १ । आ० १ । सू० २३ ॥

जो द्रव्यों का कार्य द्रव्य है वह कार्यपन से सब कार्यों में सामान्य है ॥

द्रव्यत्वं गुणत्वं कर्मत्वञ्च सामान्यानि विशेषाश्च ॥

वै० । अ० १ । आ० २ । सू० ५ ॥

द्रव्यों में द्रव्यपन गुणों में गुणपन कर्मों में कर्मपन ये सब सामान्य और विशेष कहाते हैं क्योंकि द्रव्यों में द्रव्यत्व सामान्य और गुणत्व कर्मत्व से द्रव्यत्व विशेष है इसी प्रकार सर्वत्र जानना ॥

सामान्यं विशेष इति बुद्ध्यपेक्षम् ॥

वै० । अ० १ । आ० २ । सू० ३ ॥

सामान्य और विशेष बुद्धि की अपेक्षा से मिट्ट होते हैं । जैसे—मनुष्य व्यक्तियों में मनुष्यत्व सामान्य और पशुत्वादि से विशेष तथा स्त्रीत्व और पुरुषत्व इनमें ब्राह्मणत्व क्षत्रियत्व वैश्यत्व शूद्रत्व भी विशेष हैं । ब्राह्मण व्यक्तियों में ब्राह्मणत्व सामान्य और क्षत्रियादि से विशेष हैं इसी प्रकार सर्वत्र जानो ॥

इहेदमिति यतः कार्यकारणयोः स सम्वायः ॥

वै० । अ० ७ । आ० २ । सू० २६ ॥

कारण अर्थात् अवयवों में अवयवों का कार्य में क्रिया क्रियावान् गुण गुणी जाति व्यक्ति कार्य कारण अवयव अवयवों इनका नित्य सम्बन्ध होने से सम्वाय कहाता है और जो दूसरा द्रव्यों का परस्पर सम्बन्ध होता है वह संयोग अर्थात् अनित्य सम्बन्ध है ॥

द्रव्यगुणयोः सजातीयारम्भकत्वं साधर्म्यम् ॥

वै० । अ० १ । आ० १ । सू० ९ ॥

जो द्रव्य और गुण का समान जातीयक कार्य का आरम्भ होता है उसको साधर्म्य कहते हैं । जैसे पृथिवी में जड़त्व धर्म और घटादि कार्योत्पादकत्व स्वसदृश धर्म है वैसे ही जल में भी जड़त्व और द्विध आदि स्वसदृश कार्य का आरम्भ पृथिवी के साथ जल का और जल के साथ पृथिवी का तुल्य धर्म है अर्थात् “द्रव्य गुणयोर्विजातीयारम्भकत्वं वैधर्म्यम्” यह विदित हुआ है कि जो द्रव्य और गुण का विरुद्ध धर्म और कार्य का आरम्भ है उसको वैधर्म्य कहते हैं जैसे पृथिवी में कठिनत्व शुष्कत्व और गन्धवत्त्व धर्म जल से विरुद्ध और जल का द्रवत्व कोमलता

और रस गुणयुक्तता पृथिवी से विरुद्ध है ॥

कारणभावात्कार्यभावः ॥ वै० । अ० ४ । आ० १ । सू० ३ ॥

कारण के होने ही से कार्य होता है ॥

न तु कार्याभावात्कारणभावः ॥ वै० । अ० १ । आ० २ । सू० २ ॥

कार्य के अभाव से कारण का अभाव नहीं होता ॥

कारणाऽभावात्कार्याऽभावः ॥ वै० । अ० १ । आ० २ । सू० १ ॥

कारण के न होने से कार्य कर्मा नहीं होता ॥

कारणगुणपूर्वकः कार्यगुणो दृष्टः ॥ वै० । अ० २ । आ० १ । सू० २४ ॥

जैसे कारण में गुण होते वैसे ही कार्य में होते हैं । परिमाण दो प्रकार का है :—

अणुमहदिति तस्मिन्विशेषभावाद्विशेषभावाच्च ॥

वै० । अ० ७ । आ० १ । सू० ११ ॥

(अणु) सूक्ष्म (महत्) बड़ा जैसे तमरेणु लिङ्गा से छोटा और द्व्यणुक से बड़ा है तथा पृथिवी से छोटे वृक्षों से बड़े हैं ॥

सदिति यतो द्रव्यगुणकर्मसु सा सत्ता ॥ वै० । अ० १ । आ० २ । सू० ७ ॥

जो द्रव्य गुण कर्मों में सत् शब्द अनियत रहता है अर्थात् “सद् द्रव्यम्—सन् गुणः—सत्कर्म” सत् द्रव्य, सत् गुण, सत् कर्म अर्थात् वर्तमान कालवाची शब्द का अन्वय सब के साथ रहता है ॥

भावोनुवृत्तेरेव हेतुत्वात्सामान्यमेव ॥ वै० । अ० १ । आ० २ । सू० ४ ॥

जो सब के साथ अनुवर्त्तमान होने से सत्तारूप भाव है सो महासामान्य कहाता है यह क्रम भावरूप द्रव्यों का है और जो अभाव है वह पांच प्रकार का होता है ॥

क्रियागुणव्यपदेशाभावात्प्रागसत् ॥ वै० । अ० ९ । आ० १ । सू० १ ॥

क्रिया और गुण के विशेष निमित्त के प्राक् अर्थात् पूर्व (असत्) न था जैसे घट, वस्त्रादि उत्पत्ति के पूर्व नहीं थे इसका नाम प्रागभाव ॥ दूसरा :—

सदसत् ॥ वै० । अ० ९ । आ० १ । सू० २ ॥

जो होके न रहे जैसे घट उत्पन्न होके नष्ट होजाय यह प्रध्वंसाभाव कहाता है ॥ तीसरा :—

सच्चासत् ॥ वै० । अ० ९ । आ० १ । सू० ४ ॥

जो होवे और न होवे जैसे “अगौरश्वोऽनश्वो गौः” यह घोड़ा गाय नहीं और गाय घोड़ा नहीं अर्थात् घोड़े में गाय का और गाय में घोड़े का अभाव और गाय में गाय घोड़े में घोड़े का भाव है । यह अन्योन्याभाव कहाता है ॥ चौथा :—

यच्चान्यदसदतस्तदसत् ॥ वै० । अ० ९ । आ० १ । सू० ५ ॥

जो पूर्वोक्त तीनों अभावों से भिन्न है उसको अत्यन्ताभाव कहते हैं । जैसे— “नरशृङ्ग” अर्थात् मनुष्य का सींग “वृषपुष्प” आकाश का फूल और “बन्ध्या-पुत्र” बन्ध्या का पुत्र इत्यादि ॥ पांचवां :—

नास्ति घटो गेह इति सता घटस्य गेहसंसर्गप्रतिषेधः ॥

वै० । अ० ९ । आ० १ । सू० १० ॥

घर में घड़ा नहीं अर्थात् अन्यत्र है घर के साथ घड़े का सम्बन्ध नहीं है, ये पांच प्रकार के अभाव कहाते हैं ॥

इन्द्रियदोषात्संस्कारदोषाच्चाविद्या ॥ वै० । अ० ९ । आ० २ । सू० १० ॥

इन्द्रियों और संस्कार के दोष से अविद्या उत्पन्न होती है ॥

तदुष्टज्ञानम् ॥ वै० । अ० ९ । आ० २ । सू० ११ ॥

जो दुष्ट अर्थात् विपरीत ज्ञान है उसको अविद्या कहते हैं ॥

अदुष्टं विद्या ॥ वै० । अ० ९ । आ० २ । सू० १२ ॥

जो अदुष्ट अर्थात् यथार्थ ज्ञान है उसको विद्या कहते हैं ॥

पृथिव्यादिरूपरसगन्धस्पर्शा द्रव्या नित्यत्वादन्तियाश्च ॥

वै० । अ० ७ । आ० १ । सू० २ ॥

एतेन नित्येषु नित्यत्वमुक्तम् ॥ वै० । अ० ७ । आ० १ । सू० ३ ॥

जो कार्यरूप पृथिव्यादि पदार्थ और उनमें रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, गुण हैं ये

सब द्रव्यों के अनित्य होने से अनित्य हैं और जो हमारे कारणरूप पृथिव्यादि नित्य द्रव्यों में गन्धादि गुण हैं वे नित्य हैं ।

सदकारणवन्नित्यम् ॥ वै० । अ० ४ । आ० १ । मू० १ ॥

जो विद्यमान हो और जिसका कारण कोई भी न हो वह नित्य है अर्थात्:—
“सत्कारणवदनित्यम्” जो कारणवाले कार्यरूप गुण हैं वे अनित्य कहाते हैं ॥

अस्येदं कार्यं कारणं संयोगि विरोधि समवायि चेति लैङ्गिकम् ॥

वै० । अ० ५ । आ० २ । मू० १ ॥

इसका यह कार्य वा कारण है इत्यादि समवायि, संयोगि, एकार्थसमवायि और विरोधि यह चार प्रकार का लैङ्गिक अर्थात् लिङ्गलिङ्गी के सम्बन्ध से ज्ञान होता है । “समवायि” जैसे आकाश परिमाणवाला है “संयोगि” जैसे शरीर त्वचावाला है इत्यादि का नित्य संयोग है । “एकार्थसमवायि” एक अर्थ में दा का रहना जैसे कार्यरूप स्पर्श कार्य का लिङ्ग अर्थात् जनानेवाला है “विरोधि” जैसे हुई वृष्टि होनेवाली वृष्टि का विरोधी लिङ्ग है “व्याप्ति” :—

नियतधर्मसाहित्यमुभयोरेकतमस्य वा व्याप्तिः ॥

निजशक्त्युद्भवमित्याचार्याः ॥

आधेयशक्तियोग इति पञ्चशिखः ॥

सांख्य० ॥ अ० ५ । मू० २० । ३१ । ३२ ।

जो दोनों साध्य साधन अर्थात् सिद्ध करने योग्य और जिससे सिद्ध किया जाय उन दोनों अथवा एक, साधनमात्र का निश्चित धर्म का सहचार है उसी को व्याप्ति कहते हैं जैसे धूम और अग्नि का सहचार है ॥ २० ॥ तथा व्याप्य जो धूम उसकी निज शक्ति से उत्पन्न होता है अर्थात् जब देशान्तर में दूर धूम जाता है तब बिना अग्नियोग के भी धूम स्वयं रहता है । उसी का नाम व्याप्ति है अर्थात् अग्नि के छेदन, भेदन, सामर्थ्य से जलादि पदार्थ धूमरूप प्रकट होता है ॥ ३१ ॥ जैसे महत्तत्त्वादि में प्रकृत्यादि की व्यापकता बुद्ध्यादि में व्याप्यता धर्म के सम्बन्ध का नाम व्याप्ति है । जैसे शक्ति आधेयरूप और शक्तिमान आधाररूप का सम्बन्ध है ॥ ३२ ॥ इत्यादि शास्त्रों के प्रमाणादि से परीक्षा करके पढ़ें ओर पढ़ावें अन्यथा विद्यार्थियों को सत्य बोध कभी नहीं हो सकता जिस २ गून्थ को पढ़ावें उस २

की पूर्वोक्त प्रकार से परीक्षा कर के जो सत्य उरने वह २ गून्थ पढ़ावें जो २ इन परीक्षाओं से विरुद्ध हों उन २ गून्थों को न पढ़ें न पढ़ावें क्योंकि—

लक्षणप्रमाणाभ्यां वस्तुनिर्दिष्टः ॥

लक्षण जैसा कि “गन्धवती पृथिवी” जो पृथिवी है वह गन्धवाली है ऐसे लक्षण और प्रत्यक्षादि प्रमाण इनसे सब नत्यात्मन्य और पदार्थों का निर्णय हो जाता है इसके बिना कुछ भी नहीं होता ॥

तिमिरभास्कर—

नजाने स्वामीजी स्वप्नावस्था में कभी महम्मद साहब की तरह ईश्वरके पास होआयेये जो उसने इन्हें सारी सृष्टिका क्रम उपदेश करदिया जिससे इन्हें यह ज्ञान निर्मान्त मालूम होगई है कि ईश्वर की सृष्टिका विषय इतनाही है वेदमें नौ ऐसा लिखा है कि

एतावानस्यमहिमातो ज्वायां गच्छ पुरुषः । पादोऽस्य वि-

श्वाभूतानि त्रिषादस्यामृतं दिवि ॥ यजु० अ० ३१ मं० ३

ईश्वरकी विभूति इतनीही है यह नहीं किन्तु इससेभी अधिक है, यह जो कुछ विश्व जीवों सहित है यह उसकी महिमाका एक भाग है, और शेष तीन भागमें प्रकाशमान मोक्षस्वरूप आप है, और ब्राह्मणवाक्य भी कहते हैं (नाहं विदाथ नतं विदाथ) हे मैत्रेयी ! मैं कौनहूँ तू नहीं जानती सो कौन है यह भी तू नहीं जानती, और गीता में भी लिखा है कि (बुद्धेः परतस्तु सः) कि वोह परमेश्वर बुद्धि से परे हैं जब बाह्य बुद्धि से परे हैं तौ उसके कार्य पूर्णता से कौन जान सकता है पर स्वामी जी तौ शरीर रहते भी सृष्टि का क्रम सब उससे पूछ आये क्योंजी ॥

तस्मादश्वाअजायन्तये केचोभयादतः ॥ गावोहजज्ञि

रेतस्मात्तस्माज्जाताअजावयः ॥ यजु० अ० ३१ मंत्र ८

उस परमेश्वर से अश्व और जो कोई दूसरे पशु ऊपर नीचे के दांतवाले हैं उत्पन्न हुए उससे गौ बैल उत्पन्न हुए उससे भेड़

बकरी उत्पन्न हुई ॥

अब स्वामीजी बतावें कि आप तौ उत्पत्ति स्त्री पुरुषके योगसे मानते हैं यह घोड़े बैल भेड़बकरी केने उत्पन्न हुए औरभी सुनिये।

योवैब्रह्माणंविदगानिपूर्वम् । ७वे०

जिस परमेश्वर से ब्रह्माजी उत्पन्न हुए, जब आप स्त्रीपुरुषके योग से उत्पत्ति मानते हैं तौ आपने ईश्वरकीभी लुगाई बनाई होगी जिससे ब्रह्माजी उत्पन्न हुए और घोड़े आदिके उत्पन्न करने को भी स्त्रियें होनी चाहिये फिर वे ईश्वरकी स्त्रियें कहाँसे आई यह प्रश्न होगा इससे यह आपका कपोलकल्पित सृष्टिक्रम सब भ्रष्ट हुआ जाता है धन्य है उसकी महिमाको जाननेकी कहाँ सामर्थ्य है वोह सब कुछ करता है उसे कोई जान नहीं सकता क्योंकि (परास्थ शक्तिर्विविधैवश्रूयते) उसकी पराशक्ति अनेक प्रकारकी सुनी जाती है अबभी कभी हमें ऐसी आश्चर्य प्रतीत होते हैं जो कभी पूर्व नहीं हुए सृष्टिक्रमों पर रहें स्वामीजी को अपनी खबर नहीं है यदि खबर होता तो आप कहीं कुछ कहीं कुछ यह विरुद्धतासे भरा हुआ 'सत्यार्थप्रकाश' न लिखते, तथा पहला सत्यार्थप्रकाश भी भ्रष्ट होजावे तो आपको वोह अप्रमाण कर नया गढ़ना न पड़ता, जोकि यहाँ आपने सृष्टिक्रम का बहानाकर टट्टीकी ओलटमें शिकार मगला है, जो बात समझ में नहीं आई लिख दिया कि सृष्टिक्रम के विरुद्ध है कहीं तो लिख दिया होता कि सृष्टि क्रम इतना है जो मालूम तौ होजाता फिर आपको वैसेही प्रमाण देते, वेदानुकूलताका वर्णन आगे लिखेंगे।

स्वामीजीका मत तौ उनकी बुद्धि है जो बात इनकी बुद्धि के अनुकूल हो वही सत्य जो बुद्धिके प्रानुकूल हो वोह सृष्टिक्रम के भी प्रतिकूल होगी आप वेदानुकूल और सृष्टिक्रमानुकूल क्यों नाम धरते हो यों कहो कि हमारा बुद्धि के अनुकूल होना चाहिये यदि किसी योगी से आपकी भेट होती वोह मुर्दाभी जिलाकर

दिखा देता और आपकी इस बुद्धि का भी सुधार देता, तथापि जिन ग्रंथों का आपने सत्यार्थप्रकाश में प्रमाण लिखा है उसीसे हम यह सब बातें दिखाते हैं महाभारत के अश्वमेध पर्व के ६६ अध्यायमें देखो श्रीकृष्णने परीक्षित को जो मृतक उत्पन्न हुआ पुनर्जीवित किया, बाल्मीकिमें लिखा है कि रामचंद्र के राज्यमें एक शंबुक नाम शूद्र तप करता था इस कारण उस अनधिकारी के पाप से एक ब्राह्मण का पुत्र मर गया रामचंद्रने उस शूद्र को मार ब्राह्मणकुमार को जीवित किया और श्रीकृष्णने गोबर्द्धन उठाया, महावीरजी लक्ष्मणजी के अर्थ संजीवन बूटीवाला पहाड़ उठा लाये थे, समुद्र पर पुल बांधा हुआ आज तक मौजूद है, आंखें होय तो देख आओ यह लंकाकाण्ड में स्पष्ट है और (आप्तो-पदेशः शब्दः) शब्द प्रमाण आप मान ही चुके हैं सो बाल्मीकिजी पूर्ण आप्त थे उन्होंने ही नल नील को लिखा है कि इन्होंने पुल बांधा यह पत्थर समुद्र में नहीं तो क्या आप के सत्यार्थप्रकाश पर तरे थे और सम्भव किसे कहते हैं जो कुछ भी हो जाय उसे सम्भव कहते हैं समर्थ पुरुषों से जो सम्भव है वही असमर्थों को असम्भव है अवतार विषय सप्त संमुल्लास में लिखेंगे इससे यह भी विदित हो गया कि शूद्र का तप करने का अधिकार नहीं है पर जो कहें आज दिन रत्न तार न होता तो स्वामीजी को यह भी असम्भव विदित होता।

भास्करप्रकाश—

निस्सन्देह परमात्मा अनन्त और उम की समस्त सृष्टि का क्रम मनुष्य को अविज्ञेय है परन्तु इस से आप सम्भव असम्भव की व्यवस्था का लोप न कीजिये। स्वामी जी ने उतनी ही बातों को असम्भव लिखा है जो रात्रि दिन एक क्रम से हमारे आप के देखने में आती हैं। परमात्मा की वह सृष्टि जहां तक हमारा ज्ञान नहीं पहुंचा चाहे कैसी ही हो परन्तु तथापि जानी हुई बातों में कोई क्रम अवश्य है। यदि क्रम न हो तो गेहूं बोने वाले कृषक को यह विश्वास न होना चाहिये कि इस के फल गेहूं ही होंगे कदाचित् चणे

आदि हो जावें और परमात्मा की अमैथुनी सृष्टि को आप मानुषी मैथुनी आदि सृष्टियों से मिलाकर दोष देते हैं यह बेसमझी है। सृष्टिक्रम सृष्टिके लिये है वैसे परमात्मा का क्रम परमात्मा के लिये है। जैसे सृष्टि के मनुष्यादि प्राणी अपने २ गुण कर्म स्वभाव सामर्थ्य नियम के विरुद्ध नहीं करते वैसे ही परमात्मा भी अपने पवित्र गुण कर्म स्वभाव के विरुद्ध नहीं करता। यदि करता है तो क्या परमात्मा कभी पाप करता है ? झूठ बोलता है ? मरता है ? नहीं, नहीं। इस लिये परमात्मा का भी क्रम है और सृष्टि का भी क्रम है। रामायण महाभारत को स्वामी जी ने माना यह लिखना झूठ है। देखो सत्यार्थप्र० पृ० ६८ पं० २५ में “मनुस्मृति वाल्मीकि रामायण महाभारत के उद्योगपर्वान्तर्गत विदुर नीति आदि अच्छे २ प्रकरण पढ़ावें” इस से स्पष्ट प्रतीत होता है कि इन ग्रन्थों के अच्छे २ प्रकरण पढ़ाये जावें बुरे २ नहीं महाभारत के आदि पर्व में लिखा है:—

चतुर्विंशतिसाहस्रीं चक्रे भाग्नमंहिताम् ।

व्यासजी ने २४००० श्लोकों में भारत मंहिता बनाई। वर्तमान समय में १००००० एक लक्ष से अधिक श्लोक महाभाग्न में हैं वे सब व्यासरचित नहीं हैं यही दशा रामायणादि की है। दूसरी बात यह है कि रामायण भारत भागवतादि में लिखी सृष्टिक्रम विरुद्ध असम्भव बातें तो साध्य पक्ष में हैं जिन को अन्य प्रमाणों से सिद्ध करना आप का काम था। आप ने “साध्य” ही को प्रमाण में धर दिया। न्यायशास्त्र में “साध्यमम” हेतु भी हेत्यावास-मिथ्या हेतु माना है तो आप तो साक्षात् साध्य ही को हेतुरूप से प्रमाण काटि में धरते हैं। असमर्थ मनुष्य को इतना समर्थ मानना कि अंगुली पर पर्वत उठाया यही तो असम्भव है और उन मनुष्यों को ईश्वर मानना साध्य है, सिद्ध नहीं। इस लिये सृष्टिक्रम का न मानना न्यायशास्त्र के ८ प्रमाणों में ७ वें सम्भव प्रमाण को अपने हठसे न मानना है और सृष्टिक्रम ईश्वरक्रम मथ ठाक है और उस के विरुद्ध बातों का मानना मूर्खता है ॥



मीक्षा-स्वामी दयानन्दजी कहते हैं कि जो २ सृष्टि क्रम से अनुकूल है वह सत्य और जो सृष्टि क्रम से विरुद्ध है वह असत्य। इसके ऊपर पं० ज्वालाप्रसादजी कहते हैं कि क्या परमेश्वर ने सृष्टिक्रम आपको बतला दिया क्या आप ईश्वर के पास पहुँच कर समस्त ही सृष्टिक्रम पढ़ आये ? वेद तो यह बतलाता है कि यह जीव ईश्वर के कार्य और ईश्वर को तथा ईश्वर के महत्व को जान ही नहीं सकता। पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र ने इस की पुष्टि में तीन प्रमाण दिये हैं प्रथम यजुर्वेद अ० ३१ "एतावानस्य" फिर प्रमाण "नातं विदाथ नतं विदाथ" फिर गीता "बुद्धेः परतस्तु सः" इसके ऊपर पं० तुलसीराम लिखते हैं कि निस्सन्देह परमात्मा अनन्त और उसकी समस्त सृष्टि का कर्म मानव को अविज्ञेय है परन्तु इससे आप सम्भव असम्भव की व्यवस्था का लोग न काँजिये। जब कि पं० तुलसीराम ईश्वर के सृष्टिक्रम को अविज्ञेय मानते हैं फिर उन अविज्ञेय का सम्भव असम्भव जानना भी लिखते हैं। जिस पदार्थ को ही नहीं जानते उनके सम्भव असम्भव का फैसला देना कहां तक सत्य और विचार कहला सकता है इसके ऊपर पाठकों को ध्यान देना चाहिये। पं० तुलसीराम लिखते हैं कि स्वामी जी ने उतनी ही बातों को असम्भव लिखा है जो रात्रि दिन एक क्रम से हमारे आप के देखने में आती हैं परमात्मा की वह सृष्टि जहां तक हमारा ज्ञान नहीं पहुँचा चाहें कौसी ही हो परन्तु तथापि जानी हुई बातों में कोई क्रम अवश्य है। कि क्रम न तो तो गेहूँ बोने वाले कृषक को यह विश्वास न होना चाहिये कि आज कल गेहूँ ही बोने कदाचित् चणे आदि हो जावें रात दिन के क्रम देखने से यह निश्चय नहीं होना कि यही सत्य है और इसको छोड़ कर और सब असत्य है यदि आधुनिक समाज ईश्वर को सत्य मानती है तब तो वेद का ऋषियों के द्वारा प्रकट होना जो स्वामी दयानन्द ने माना है यह भी समाजियों को छोड़ना होगा क्योंकि आज कल न तो कोई ऋषि ही होता है और न उसके द्वारा वेद ही प्रकट होते हैं जो वर्तमान समय में नहीं होता ऐसे ज्ञान रूप वेद को ऋषियों के द्वारा मानना भी छोड़ना पड़ेगा क्यों कि समाज तो उसी क्रम को सत्य मानती है जो रात दिन देखने में आता है वर्तमान समय में दिन के बाद रात्रि और रात्रि के बाद दिन यही क्रम देखने में आता है इसके विरुद्ध होने वाली प्रलय भी समाज को नहीं माननी होगी क्योंकि वह वर्तमान क्रम के विरुद्ध है।

पं० तुलसीराम ने जो यह लिखा कि हम सृष्टिक्रम को जानें या न जानें

किन्तु कोई सृष्टि क्रम है अवश्य नहीं तो चने बो कर चने काटने का ज्ञान या गेहूं काटने का ज्ञान न होता । पं० तुलसीराम जी तो कहते हैं कि सृष्टिक्रम का हमको ज्ञान नहीं किन्तु कोई न कोई क्रम अवश्य है । पं० तुलसीराम सृष्टिक्रम के ज्ञान से इन्कार करते हैं और स्वामी दयानन्द लिखते हैं कि सृष्टिक्रम के ज्ञान से मिलावो जो अनुकूल हो उसको सत्य कहो और जो प्रतिकूल हो उसको असत्य कहो जब कि पं० तुलसीराम मनुष्यों को सृष्टिक्रम के ज्ञान में ही इन्कार करते हैं फिर उसको बिना जाने किस प्रकार मिलावें और बिना मिले सत्यासत्य का निर्णय कैसे करें ? क्या कोई आर्यसमाजी दयानन्द के लेख की पुष्टि कर सकता है ? सृष्टि क्रम कौन से वेद में कहा या कि स्वामी दयानन्द का कहा है कि जिसमें जवान २ पुरुष और जवान २ स्त्रियां तथा ऐसे २ छोड़े छोड़ी गधे गधरी निकल भागे ।

यदि चना बोने से चना तथा गेहूं बोने से गेहूं यही सृष्टिक्रम माना जावे तो सृष्टि के आरम्भ में जब कि प्रथम ही प्रथम अन्न तथा औषधि का प्रादुर्भाव हुआ था क्या उस समय में भी चने ही बो कर चने या गेहूं बो कर गेहूं काटे गये थे क्या प्रलय में भी गेहूं चना आदि बीज के लिये ईश्वर रख छोड़ता है जब कि पांचों तत्वों का प्रलय हो जाता है फिर गेहूं चना आदि में तत्व चने भी रहते हैं ? सृष्टिक्रम में वेद बतलाता है कि पांचों तत्वों का रचना के पश्चात् ईश्वर पृथिवी में इस प्रकार की शक्ति देता है कि कहीं पर नाम और कहीं पर आम कहीं पर गेहूं और कहीं पर चना जैसी शक्ति जहां पर पहुंचेगी उसके अनुकूल ही वृक्ष औषधि अन्न आदि उत्पन्न होंगे यहां पर तो बिना ही बीज के अन्न औषधि आदि उत्पन्न हो जाते हैं । अब जब कि ऐसा है कि बिना बोये भी चने आदि उत्पन्न हो जाते हैं तो फिर चने बो कर चने काटना यह सृष्टि नियम कहाँ तक सत्य रहा ? यदि कोई समाजी यह कहे कि हम इस सृष्टिक्रम को नहीं मानते जो आंख से देखते हैं वही मानते हैं इस के ऊपर हम कह सकते हैं कि यदि मनुष्य समुदाय प्रत्यक्ष के सिवाय और कुछ नहीं मानता तब तो यह अपने पिता तथा जीव व ईश्वर को भी मानने से इन्कार कर देगा पिता से गर्भाधान और जीव ईश्वर कभी भी प्रत्यक्ष नहीं हुए ।

इसके आगे पं० ज्वालाप्रसादजी ने “तस्मादश्वा अजायन्त” इस यजुर्वेद का प्रमाण देकर सृष्टि के क्रम को बतलाया तथा “यो वै ब्रह्माणं विदधाति पूर्वम्” प्रमाण

देकर ईश्वर से ब्रह्मा का प्रकट होना और ब्रह्मा के द्वारा समस्त संसार का प्रकट होना बतलाया। साथ ही साथ यह भी बतलाया कि यदि स्त्री पुरुष के द्वारा ही सन्तानोत्पत्ति होती है तो फिर आर्यसमाज को उस परमात्मा की स्त्री भी माननी पड़ेगी जिसके द्वारा ब्रह्मा प्रकट हुआ है और स्वामी दयानन्दजी ने तो स्त्री पुरुष के द्वारा ही मनुष्य की उत्पत्ति होती है यही सृष्टिक्रम बतलाया है इसके विरुद्ध जो हो उसको असत्य जानों। स्वामी दयानन्द के इस लेख में यजुर्वेद और श्वेता श्वेततरो उपनिषद् आदि आदि उपनिषद् और मनु आदि स्मृति जिन में ब्रह्मा के द्वारा संसार का प्रकट होना लिखा है सब असत्य हो गये इसके ऊपर पं० तुलसीरामजी लिखते हैं कि और परमात्मा की अमैथुनी सृष्टि को आप मानुपी मैथुनी आदि सृष्टियों से मिला कर दोष देते हैं यह बेसमझी है सृष्टिक्रम सृष्टि के लिए है वैसे परमात्मा का क्रम परमात्मा के लिए है। वास्तव में पं० ज्वालाप्रसाद को सृष्टिक्रम में ब्रह्मा आदि के उदाहरण नहीं देने चाहिये क्योंकि आर्यसमाज इनका कोई उत्तर नहीं दे सकती और इनको देखने से स्वामी दयानन्द के सृष्टिक्रम का और उसके द्वारा प्राप्त हुए सत्य का एकदम ढेर हो जाता है सारी पोल खुल जाती है तभी तो पं० तुलसीराम ने लिखा कि ब्रह्मादि का उदाहरण देना बेसमझी है। पं० तुलसीराम का यह उत्तर क्या आर्यसमाज को नोपेदायक नहीं है इससे तो आर्यसमाज के पक्ष की पूरी पुष्टि हो गई समाज वेद शास्त्र माननी ही नहीं केवल आंख से देख कर मानती है ब्रह्मा की उत्पत्ति को देखकर दयानन्द का माना प्रत्यक्ष सृष्टिक्रम उड़ गया इससे विविध क्रम निकल आया स्वामी दयानन्द जिसको झूठ बतलाते हैं उसीको वेद ने सत्य कर दिया।

पं० तुलसीराम यह भी लिखते हैं कि सृष्टिक्रम सृष्टि के लिए है और परमात्मा का क्रम परमात्मा के लिए है इस लेख पर हंसी आये बिना नहीं रहती हम आज तक यही समझते थे कि सृष्टि क्रम परमात्मा का क्रम है परन्तु आज समाज की रुपा से हमको यह भी पता लग गया कि परमात्मा का क्रम और है और सृष्टि का क्रम और है। पं० तुलसीराम ब्रह्मा के द्वारा संसार का प्रकट होना इसको परमात्मा का क्रम मानते हैं यदि कोई पूछे कि यह परमात्मा का क्रम क्यों है तो इसके ऊपर उत्तर देंगे कि यह परमात्मा का बनाया है और पं० तुलसीराम चने से चने का उत्पन्न होना इसको परमात्माक्रम नहीं मानते किन्तु सृष्टिक्रम मानते हैं अब यदि पूछे क्यों तो इसका उत्तर या तो यह दे सकते हैं कि ईश्वर की सृष्टि में से किसी आर्य

समाजी ने इस क्रम को बनाया है या उत्तर देने के समय चुप रह जाय और क्या हो सकता है पं० जी संसार में जितने भी सृष्टिक्रम हैं वे सब परमात्मा के ही बनाये हैं और सब के सब हमारे और तुम्हारे सृष्टि के जीवों के लिए हैं परमात्मा के लिए एक भी नहीं ।

इसके आगे पं० तुलसीराम लिखते हैं कि जैसे सृष्टि के मनुष्यादि प्राणी अपने अपने गुण कर्म स्वभाव सामर्थ्य नियम के विरुद्ध नहीं करते वैसेही परमात्मा भी अपने पवित्र गुण कर्म स्वभाव के विरुद्ध नहीं करता यदि करता है तो क्या परमात्मा कभी पाप करता है, झूठ बोलता है, मागता है ? नहीं नहीं । इस लिए परमात्मा का भी क्रम है और सृष्टि का भी क्रम है यहाँ पर तो पं० तुलसीराम जी ईश्वर और सृष्टि इन दोनों का एक ही नियम बनाते हैं कि जैसे सृष्टि के मनुष्यादि प्राणी अपने अपने गुण कर्म स्वभाव सामर्थ्य नियम के विरुद्ध नहीं करते वैसेही परमात्मा भी अपने पवित्र गुण कर्म स्वभाव के विरुद्ध नहीं करता । यहाँ पर तो पं० तुलसीराम ने ईश्वर को सामान्य जीवों के बराबर बना कर उसकी सर्वशक्तिमत्ता पर पानी फेर दिया भला अब वह पं० तुलसीराम के लेख में बांध कर क्या कर सकेगा उसको पेसा कैद किया कि पूरे ही बन्धन में बांध दिया इससे तो कुछ भी प्रयोजन न निकला । ईश्वर को बन्धन में भी बांधा और स्वामी दयानन्द के सृष्टिक्रम की भी पुष्टि न हुई । पं० तुलसीराम लिखते हैं कि जैसे मनुष्य आदि प्राणी अपने गुण कर्म स्वभाव को नहीं बदलते इसके ऊपर हंसी आती है । यह कौन कहता है कि नहीं बदलते यह लेख तो आर्यसमाज के विरुद्ध है आर्यसमाज तो यह मानती है कि एक शूद्र अपने गुण कर्म स्वभाव बदल कर ब्राह्मण हो सकता है । इतना ही नहीं बल्कि एक अब्दुलगफूर मुसलमान अपने गुण कर्म स्वभाव को बदल कर समस्त आर्य समाजियों का गुरु बन कर समाज से महान्मा का डिग्री पा सकता है । जब पेसा है तब फिर नहीं मालूम पं० तुलसीराम मनुष्य के गुण कर्म स्वभाव के बदलने का क्यों निषेध करते हैं । पं० तुलसीराम लिखते हैं कि यदि परमात्मा अपने गुण कर्म स्वभाव को बदलता होगा तो फिर कभी पाप करता होगा कभी झूठ बोलता होगा और कभी मर जाता होगा । जब तक आर्यसमाजी दो चार गाली न सुना लें तब तक इन का मन ही नहीं भरता । भारतवर्ष के ही नहीं किन्तु समस्त संसार के विद्वानों को तथा देवताओं को संसार के पितरों को पुस्तक निर्माताओं को तो स्वामी दयानन्दजी पेट भर गालियाँ दे चुके ईश्वर इनसे बाकी रह गया था इनकी खबर पं० तुलसीराम

जी ने लेली । ईश्वर को गाली देने से आर्यसमाज में निन्दा नहीं होती किन्तु गाली देने वाला सभ्य और विद्वान गिना जाता है । पं० तुलसीराम लिखते हैं कि परमात्मा मर भी जाता होगा । क्या पं० तुलसीराम संनारी जीवों का मरना मानते हैं ? जब जीव ही नहीं मरता तो फिर ईश्वर किस न्याय से मर जावेगा ? क्या आर्यसमाज इसका कुछ उत्तर दे सकती है ? क्या उत्तर देगा सर्वदा के लिये मौनी बाबा बन जायगी । और ईश्वर पाप भी करता होगा । हम पं० तुलसीराम से पूछते हैं कि संसार के बड़े बड़े विद्वानों को मारना पाप है या पुण्य ? यदि पं० तुलसीराम यह कहें कि पुण्य है तो फिर हम यह प्रश्न करेंगे कि पं० लेखराम को मारनेवाला मनुष्य आर्यसमाज की दृष्टि में उत्तम गति को गया या मोक्ष को ? यदि पं० तुलसीराम यह कहें कि विद्वानों का मारना तो महा पाप है तब फिर हम कहेंगे कि संसार के समस्त विद्वानों का मारने वाला क्या ईश्वर नहीं है यदि नहीं है तो उनको कौन मारता है ? यदि कोई समाजी यह कहे कि उनके कर्म ही मार डालते हैं तब इसके ऊपर हम यह कहेंगे कि कर्म तो जड़ हैं वे स्वतः कुछ नहीं कर सकते मनुष्यों को मारता है ? समाज को यहां पर वेद का बतलाया हुआ कर्म फल का देनेवाला ईश्वर मानना पड़ेगा । प्रत्येक पुस्तक से यह सिद्ध है कि कर्मों के फल का देनेवाला परमात्मा ही है अतएव सब को जन्म देनेवाला या सब को मारने वाला परमात्मा ही रहेगा । अब बड़े बड़े विद्वानों के मारने का पाप ईश्वर के ऊपर आगया फिर पं० तुलसीराम किस जोर पर कहते हैं कि परमात्मा पाप नहीं करता परमात्मा सब कर्म करता है अच्छे भी करता है बुरे भी करता है न अच्छे कर्मों का फल सुख से गर्ज रखता है और न बुरे कर्मों का फल दुःख से । ईश्वर कर्म करता हुआ भी कर्म बन्धन में नहीं आता । प्लेग हैजा घोर संग्राम वर्षा अकाल प्राणी का जीवन मरण सब ईश्वर ही तो कर रहा है नहीं मालूम पं० तुलसीराम को यह शंका क्यों पैदा हुई मालूम होता है कि पं० तुलसीराम यह मानते हैं कि ईश्वर कुछ भी नहीं करता और यह सब आप ही आप होता जाता है । पं० ज्वालाप्रसादजी लिखते हैं कि ईश्वर का महिमा को और उसके क्रम को जीव सर्वथा कभी भी नहीं जान सकता और स्वामी दयानन्दजी तो इस विषय में कुछ भी नहीं जानते इस विषय में तो क्या स्वामी दयानन्दजी तो यह भी नहीं जानते कि हमने सत्यार्थप्रकाश में पीछे क्या लिखा है और अब क्या लिखते हैं यदि इतना जानते तो फिर सत्यार्थप्रकाश में कुछ का कुछ न लिखते और न पहिले के सत्यार्थप्रकाश को रह करना पड़ता और द्वितीयावृत्ति के पश्चात्तृतीयादि वृत्तियों में

सत्यार्थप्रकाश का कलेवर भी न बदलता पं० ज्वालाप्रसाद के इन लेख को पढ़ कर पं० तुलसीराम लेखनी भी न उठा सके बिना ही लेखनी उठाये बिना ही उत्तर दिये आर्य-समाज ते यह मान लिया कि पं० तुलसीराम ने दयानन्दतिमिरभास्कर का खंडन कर दिया। इसके ऊपर पाठकों को यह विचार करना चाहिये कि आर्य समाजी वास्तव में कभी अपने ग्रन्थ भी पढ़ते हैं या बिना ही ग्रन्थ देखे गप्पें हांका करते हैं।

इसके आगे पं० ज्वालाप्रसादजी लिखते हैं कि योगी मुर्दे को जिला सकता है स्वामी दयानन्द बतलावें कि यह उन के मन से उत्पन्न हुए सृष्टिक्रम में सम्भव है या असम्भव ? फिर जिन ग्रन्थों को स्वामी दयानन्द सत्यार्थप्रकाश में प्रमाणिक लिखते हैं उन्हीं ग्रन्थों में आश्चर्यजनक घटनायें देगन में आती हैं। महाभारत के अश्वमेध पर्व अ० ६६ में श्रीकृष्ण ने उस पंगक्षिप्त को जीत कर दिया जो मरा हुआ उत्पन्न हुआ था और वाल्मीकि रामायण में शत्रु शत्रु को मार कर प्रभू रामचन्द्र जी ने मरे हुए ब्राह्मण के पुत्र को जिला दिया, श्रीकृष्ण ने गोबर्धन पर्वत को उठा लिया, हनुमानजी संजीवनी वाला पहाड़ उठा लाये यह सब बातें स्वामी दयानन्द सृष्टिक्रम में सम्भव मानते हैं या असम्भव ? स्वामी दयानन्दजी “आप्तोप-देशः शब्दः” से शब्द प्रमाण मान चुके हैं हमारी समझ में तो यदि रेल तार न होते तो स्वामी जी की दृष्टि में यह भी असम्भव ही होते। इसके ऊपर पं० तुलसीराम जी लिखते हैं कि मनुस्मृति वाल्मीकि रामायण महाभारत के उद्योग पर्वान्तर्गत विदुर नीति आदि अच्छे २ प्रकरण हो गये पढ़ाये। इनमें स्पष्ट प्रतीत होता है कि इन ग्रन्थों के अच्छे २ प्रकरण पढ़ाये जाये जाना चाहिये। तुमको शोक के साथ लिखना पड़ता है कि आर्यसमाज धर्म का विणय नहीं करता किन्तु उस में छल करती है। जिन प्रकरणों को पं० तुलसीराम अच्छे समझते हैं वे अच्छे हैं इसमें समा-जियों के पास क्या सबूत है ? यदि कहो कि वे प्रकरण वेद से मिलते हैं क्यों कि वेद में उनका वर्णन है। प्रथम तो यदि वेद में उनका वर्णन है तो फिर वेद से ही उस प्रकरण को मानो महाभारतादि के प्रकरण क्यों लेने हो और यदि कोई समाजी कहे कि वेद में वे प्रकरण नहीं हैं यदि ऐसा है तो फिर तुमको अच्छे और बुरे का ज्ञान कैसे हुआ ? इसके ऊपर यदि ये यह कहें कि हमने अपने मन से सम्भव असम्भव की जांच कर ली यदि ऐसा है तो फिर आर्यसमाज वेद की मानने वाली कैसे कहला सकती है यह तो मन स्वीकृत सिद्धान्त की माननेवाली हो गई। फिर यह भी कोई मानना है कि एक ही ग्रन्थ में से कुछ को मान्य समझना और कुछ को

अमान्य ? यदि आर्यसमाज में ग्रन्थ इसी प्रकार माने जाते हैं तब तो आर्यसमाज को कुरान शरीफ भी प्रमाण है क्योंकि दो चार आयतें उस में भी ऐसी निकल आवेंगी जिनको समाज मान ले इसके अलावा स्वामी दयानन्दजी ने सोलेतूर के विद्या-पन में महाभारत को ईश्वर कृत माना है । ईश्वर के बनाये महाभारत में से कुछ प्रकरण को पं० तुलसीराम उत्तम समझते हैं और कुछ को असम्भव । ईश्वर अनादि और सर्वशक्तिमान और सर्वथा ज्ञानी कहलाना है तथापि आज तक उसको इतनी अक्ल न हुई कि सम्भव असम्भव की जांच कर सके यदि यह बुद्धि निकली तो स्वामी दयानन्द और पं० तुलसीराम आदि २ आर्य समाजियों में निकली । महाभारत के कर्त्ता ईश्वर को सम्भव असम्भव ज्ञानशून्य तथा मूर्ख मानना और अपने को ईश्वर से अधिक विद्वान् समझना यह पं० तुलसीराम की खुल्लमखुल्ला नास्तिकता है । जब दयानन्द महाभारत को ईश्वर कृत मानते हैं तब फिर पं० तुलसीराम को क्या अधिकार है कि उसमें सम्भव असम्भव की जांच करके किसी स्थल को मानें और किसी को न मानें ।

इसके आगे पं० तुलसीराम लिखते हैं कि महाभारत के आदि पर्व में लिखा है कि “चतुर्विंशतिसाहस्रीं चक्रे भारतं संहिताम्” व्यास जी ने २४००० श्लोकों में भारत संहिता बनाई वर्त्तमान समय में २,००,००० एक लक्ष से अधिक श्लोक महाभारत में हैं वे सब व्यास रचित नहीं हैं यही दशा रामायणादि की है । इसके ऊपर हम इतना ही उत्तर काफी समझते हैं कि “दयानन्द कृतः सत्यार्थप्रकाशस्त्रिपृष्ठकः” अर्थात् दयानन्द का बनाया सत्यार्थप्रकाश तीन ही पृष्ठ है बाकी का सब दयानन्द के नाम से समाज ने बना लिया यह सत्यार्थप्रकाश के प्रथम समुल्लास में लिखा है । इसके ऊपर यदि कोई आर्यसमाजी यह कहे कि प्रथम समुल्लास में दिखाओ तब फिर हम यह कहेंगे कि तुम “चतुर्विंशति साहस्रीं चक्रे भारतं संहिताम्” यह पाठ महाभारत के आदि पर्व में दिखलाओ । दो तीन प्रसंगों के महाभारत हमने देखे किन्तु यह पाठ किसी भी महाभारत में नहीं मिला मालूम होता है कि पं० तुलसीराम ने महाभारत के नाम से आधा श्लोक बनाकर लिख दिया क्योंकि झूठ लिखना झूठ बोलना यह आर्यसमाजियों का परम धर्म है और इसी शुभ कर्म से यह मोक्ष को जावेंगे । जब महाभारत में यह पाठ है ही नहीं और इसी कारण से पं० तुलसीराम इसके अध्याय का भी पता नहीं देते फिर हम कैसे मान लें कि पं० तुलसीराम ने सनातन धर्म को झूठा कलंक नहीं लगाया जब यह झूठा ही है फिर हम इस का उत्तर ही क्या दें ।

वादितोषन्याय से यदि हम इस पाठ को सत्य मान लें ऐसी दशा में भी हमारी क्या क्षति है प्रथम श्रीमद्भागवत भी तो चार ही श्लोक में बनी थी सृष्टि के आरंभ में वेद बनने के समय वेदों के प्रथम तो केवल ओंकार का ही बनना प्रमाण है ओंकार के बाद बने हुए वेद आर्यसमाज ने क्यों माने ? आर्यसमाज इस पर पेंतराज क्यों नहीं करती कि पहिले तो ओंकार ही बना था हम तो उसी को मानेंगे उसके बाद में बने हुए वेदों को हम नहीं मानेंगे जिन प्रकार से वाद के बने हुए वेदों को आर्यसमाज मानती है उसी प्रकार वाद के बने हुए महाभारत को सनातन धर्म मानता है पं० तुलसीराम यह सावित करना चाहते हैं कि चौबीस हजार श्लोकों को छोड़ कर शेष महाभारत पोपों ने बनाया । पं० तुलसीराम महाभारत के कर्त्ता पोपों को बनाना चाहते हैं किन्तु स्वामी दयानन्द महाभारत को ईश्वर कृत मानते हैं स्वामी दयानन्द के लेख से पं० तुलसीराम का लेख अपने आपही कट जाता है या तुलसीराम के लेख से दयानन्द का लेख कट जाता है अब हम देखना चाहते हैं कि इस गुरु चेला के महाभारत में प्रतिनिधि विजय की पगड़ी किस के सिरपर रखती है ।

इसके आगे पं० तुलसीरामजी गोवर्धन उठाना परीक्षित आदि का जीवित होना इस के लिये कहते हैं कि यह तो साध्य पक्ष है अर्थात् सनातन धर्म को यह सिद्ध करना होगा कि वास्तव में यह सब बात सही है । पं० तुलसीराम जी आज इस बात को भूल गये कि स्वामी दयानन्द जी आप्त के उपदेश शब्द को प्रमाण मानते हैं महाभारत और पुराणों के कर्त्ता वेद व्यास तथा वाल्मीकि रामायण के कर्त्ता महर्षि वाल्मीकि यह आप्त थे इसमें आर्यसमाज को कुछ भी संदेह नहीं है जब कि यह ग्रन्थ आप्तों के बनाये हुये हैं और आप्तों के ग्रन्थ स्वामी दयानन्द ने प्रमाण माने हैं तब फिर हमें नहीं मालूम पं० तुलसीराम इनको साध्य पक्ष कैसे बतलाते हैं मालूम होता है कि पं० तुलसीराम का वही वेद भगवान् मन जिस से तमाम वस्तुयें आर्यसमाज टकरा कर झूठ सच समझती है आज वे ही मनीराम इन कथाओं को असम्भव समझ बैठे हैं इसी लिए तो हम बार बार लिखते हैं कि आर्यसमाज वेद को नहीं मानता बल्कि इस का वेद वाद मनीराम साहब बहादुर है मनीराम जिसको सम्भव कहेगा आर्यसमाज भी उसका सम्भव मानेंगे और मनीराम जिसको असम्भव मानेंगे आर्यसमाज भी उसका असम्भव कहेगा जिनको आर्यसमाज असम्भव समझता है वे लेख पुराणों में ही नहीं किन्तु वेदों में भी पाये

जाते हैं। नीचे देखिए—

तस्या वैमनुर्वैवस्वतो वत्स आमीतृथिवी पात्रम् ।

वैन्यो धोक्तां कृषिं च मर्म्यन्वाधोक् ॥

सोद क्रामत्सा सुसुरा नागच्छताम सुरा उपाहूयन्त ।

एहीतितस्या विरोचनः प्रह्लादिवत्स आमीतृथिवी पात्रम् ॥

अ० का ८ अ० ५ सू० १३

अथर्व वेद के इन दो मन्त्रों में पृथिवी का गोरूप धारण करना और वैन के पुत्र पृथुका उसको दुहना और वैवस्वत मनु और प्रह्लाद के पुत्र विरोचन का बछड़ा बनना साफ तौर से लिखा है अब देसना चाहते हैं कि जिस वेद को आर्य समाजियों का मन असम्भव समझना है उस वेद का आर्य समाज प्रमाण मानती है या नहीं।

इसके आगे स्वामीदयानन्दजी न्याय के मन्त्र लिख कर पदार्थ आदि का ज्ञान बतलाते हैं प्रथम तो आर्यसमाज न्याय दर्शन को प्रमाण ही नहीं मानती न्याय शास्त्र इनका धार्मिक ग्रन्थ ही नहीं अतएव दूषण मजहब के ग्रन्थों का पढ़ाना नहीं मालूम सत्यार्थप्रकाश में क्यों लिख दिया हमें विश्वास है कि यदि स्वामी दयानन्द कुछ दिन और जीते तो वे सत्यार्थप्रकाश में बाइबिल की कुछ आयतें पढ़ाने के लिए अवश्य लिखते दूसरे पदार्थों का बताना या पढ़ाना यह धर्म से ताल्लुक नहीं रखता कल को कोई आर्यसमाजी सत्यार्थप्रकाश में बीजगणित या रेखागणित लिख दे उसके ऊपर हमको कुछ भी प्रयोजन नहीं हयारा मतलब तो यह है कि स्वामी दयानन्द ने जो कुछ भी धर्म के विचार में लिखा है वह वेद शास्त्र के विरुद्ध है और धर्म को छोड़ कर अन्य बातें लिख उसके ऊपर आर्यसमाजी विचार करेंगे।

पठन पाठन विधि

सत्यार्थप्रकाश—

अब पढ़ने पढ़ाने का प्रकार लिखते हैं—प्रथम पाणिनिमुनिकृत शिक्षा जो कि सूत्ररूप है उसकी रीति अर्थात् इस अक्षर का गह स्थान यह प्रयत्न यह करण है जैसे “प” इसका ओष्ठ स्थान, स्पृष्ट प्रयत्न और प्राण तथा जीभ की क्रिया करनी करण कहाता है इसी प्रकार यथायोग्य सब अक्षरों का उच्चारण माता पिता आचार्य सिखलावें। तदनन्तर व्याकरण अर्थात् प्रथम अष्टाध्यायों के सूत्रों का पाठ जैसे “बृद्धिरादैच्” फिर पदच्छेद “बृद्धिः, आत्, ऐच् वा आदैच्” फिर समास “आच्च ऐच्च आदैच्” और अर्थ जैसे “आदैच्चां बृद्धिसंज्ञा क्रियते” अर्थात् आ, ऐ, औ की बृद्धि संज्ञा कीजाती है “तः परो यस्मान्म तपरस्तादपि परस्तपरः” तकार जिससे परे और जो तकार से भी परे हो वह तपर कहाता है इससे क्या सिद्ध हुआ जो आकार से परे त् और त् से परे ऐच् दोनों तपर हैं तपर का प्रयोजन यह है कि ह्रस्व और प्लुत की बृद्धि संज्ञा न भूलें। उदाहरण (भागः) यहां “भज्” धातु से “घञ्” प्रत्यय के परे “घ, ज्” की इत्संज्ञा होकर लोप होगया पश्चात् “भज् अ” यहां जकार के पूर्व भकारोत्तर अकार की बृद्धिसंज्ञक आकार होगया है। तो भाज् पुनः “ज्” को ग् हो अकार के साथ मिलके “भागः” ऐसा प्रयोग हुआ “अध्यायः” यहां अधिपूर्वक “इङ्” धातु के ह्रस्व इ के स्थान में “घञ्” प्रत्यय के परे “ऐ” बृद्धि और उसको आय् हो मिल के “अध्यायः” “नायकः” यहां “नीज्” धातु के दीर्घ ईकार के स्थान में “ण्वल्” प्रत्यय के परे “ऐ” बृद्धि और उसको आय् होकर मिल के “नायकः” और “स्तावकः” यहां “स्तु” धातु से “ण्वुल्” प्रत्यय होकर ह्रस्व उकार के स्थान में औ बृद्धि आच् आदेश होकर अकार में मिल गया तो “स्तावकः” (वृज्) धातु से आगे “ण्वुल्” प्रत्यय ल् की इत्संज्ञा होके लोप “वु” के स्थान में अक आदेश और ऋकार के स्थान में “आर्” बृद्धि होकर “कारकः” सिद्ध हुआ। जो २ सूत्र आगे पीछे के प्रयोग में लगे उनका कार्य सब बतलाता जाय और ग्लेट अथवा लकड़ी के पट्टे पर दिखला २ के कच्चा रूप धर के जैसे “भज् + घञ् + गु” इस प्रकार धर के प्रथम घकार का फिर ज् का लोप होकर “भज् + अ + गु” ऐसा रहा फिर अ को आकार

बुद्धि और ज् के स्थान में "ग्" होने से "भाग्+अ+सु" पुनः अकार में मिल जाने से "भाग+सु" रहा अब उकार की इत्संज्ञा "स्" के स्थान में "रु" होकर पुनः उकार की इत्संज्ञा लोप होजाने पश्चात् "भागर" ऐसा रहा अब रेफ के स्थान में (ः) विसर्जनीय होकर "भागः" यह रूप सिद्ध हुआ। जिस २ सूत्र से जो २ कार्य होता है उस २ को पढ़ पढ़ा के और लिखवा कर कार्य कराता जाय इस प्रकार पढ़ने पढ़ाने से बहुत शीघ्र दृढ़ बोध होता है। एक बार इसी प्रकार अष्टाध्यायी पढ़ा के धातुपाठ अर्थमहिन और दश लकारों के रूप तथा प्रक्रिया सहित सूत्रों के उत्सर्ग अर्थात् सामान्य सूत्र जैसे "कर्मण्यण्" कर्म उपपद लगा हो तो धातुमात्र से अण् प्रत्यय हो जैसे "कम्भकारः" पश्चात् अपवाद सूत्र जैसे "आतोऽनुपसर्गे कः" उपसर्गभिन्न कर्म उपपद लगा हो तो आकारान्त धातु से "क" प्रत्यय होवे अर्थात् जो बहुव्यापक जैसा कि कर्मोपपद लगा हो तो सब धातुओं से "अण्" प्राप्त होता है उससे विज्ञाप्य अर्थात् अल्प विषय उसी पूर्व सूत्र के विषय में से आकारान्त धातु को "क" प्रत्यय ने ग्रहण कर लिया जैसे उत्सर्ग के विषय में अपवाद सूत्र की प्रवृत्ति होती है वैसे अपवाद सूत्र के विषय में उत्सर्ग सूत्र की प्रवृत्ति नहीं होती। जैसे चक्रवर्ती राजा के राज्य में माण्डलिक और भूमिवालों की प्रवृत्ति होती है वैसे माण्डलिक राजादि के राज्य में चक्रवर्ती की प्रवृत्ति नहीं होती इसी प्रकार पाणिनिमहर्षि ने सहस्र श्लोकों के बीच में अखिल शब्द अर्थ और सम्बन्धों का विद्या प्रतिपादित करदी है। धातुपाठ के पश्चात् उणादिगण के पढ़ाने में सर्व सुवन्त का विषय अच्छे प्रकार पढ़ के पुनः दूसरी बार शङ्खन, समाधान, वार्त्तिक, कारिका, परिभाषा की घटनापूर्वक, अष्टाध्यायी की द्वितीयानुवृत्ति पढ़ावे। तदनन्तर महाभाष्य पढ़ावे अर्थात् जो बुद्धिमान् पुरुषार्थी, निष्कपटी, विद्याबुद्धि के चाहनेवाले नित्य पढ़ें पढ़ावें तो डेढ़ वर्ष में अष्टाध्यायी और डेढ़ वर्ष में महाभाष्य पढ़ के तीन वर्ष में पूर्ण वैयाकरण होकर वैदिक और लौकिक शब्दों का व्याकरण से बोध कर पुनः अन्य शास्त्रों को शीघ्र सहज में पढ़ पढ़ा सकते हैं किन्तु जैसा बड़ा परिश्रम व्याकरण में होता है वैसा श्रम अन्य शास्त्रों में करना नहीं पड़ता और जितना बोध इनके पढ़ने से तीन वर्षों में होता है उतना बोध कुगून्थ अर्थात् मागध्याय, चन्द्रिका, कौमुदी, मनोरमादि के पढ़ने से पचास वर्षों में भी नहीं हो पाता क्योंकि जो महाशय महर्षि लोगों ने

सहजता से महान् विषय अपने गून्थों में प्रकाशित किया है वैसा इन क्षुद्राशय मनुष्यों के कल्पित गून्थों में क्योंकि हो सकता है मर्दापि लोगों का आशय, जहां तक होसके वहांतक सुगम और जिसके गूढण में समय थोड़ा लगे इस प्रकार का होता है और क्षुद्राशय लोगों की मनसा ऐसी होती है कि जहांतक बने वहांतक कठिन रचना करनी जिसको बड़े परिश्रम से पढ़ के अल्प लाभ उठा सकें जैसे पहाड़ का खोदना कौड़ी का लाभ होना। और आर्ष गून्थों का पढ़ना ऐसा है कि जैसा एक गोता लगाना बहुमूल्य मोतियों का पाना। व्याकरण का पढ़ के यास्कमुनिकृत निघण्टु और निरुक्त छः वा आठ महीने में सार्थक पढ़ें और पढ़ावें। अन्य नास्तिककृत अमरकोशादि में अनेक वर्ष व्यर्थ न खोवें तदनन्तर पिङ्गलाचार्यकृत छन्दोगून्थ जिससे वैदिक लौकिक छन्दों का परिज्ञान नवीन रचना और श्लोक बनाने की रीति भी यथावत् सीखें इस गून्थ और श्रुतियों की रचना तथा प्रस्तार को चार महीने में सीख पढ़ पढ़ा सकते हैं। और अन्तर्यामिनी आदि अल्पबुद्धिप्रकल्पित गून्थों में अनेक वर्ष न खोवें। तत्पश्चात् मनुस्मृति चाण्ण्यीयायामायण और महा-भारत के उद्योगपर्वान्तर्गत विदुरनीति आदि अनेक अनेक प्रकरण जिनसे दुष्ट व्य-सन दूर हों और उत्तमता सभ्यता प्राप्त होवें वे काव्य गीति से अर्थात् पदच्छेद, पदार्थोक्ति, अन्वय, विशेष्य विशेषण और भावार्थ को अध्यापक लोग जनावें और विद्यार्थी लोग जानते जायें इनको वर्ष के भीतर पढ़ें तदनन्तर पूर्वमीमांसा, वैशेषिक, न्याय, योग, सांख्य और वेदान्त अर्थात् जहां तक बन सके वहां तक ऋषिकृत व्याख्यासहित अथवा उत्तम विद्वानों की सरलव्याख्यायुक्त छः शास्त्रों को पढ़ें पढ़ावें परन्तु वेदान्त सूत्रों के पढ़ने के पूर्व ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय, छान्दोग्य और बृहदारण्यक इन दश उपनिषदों को पढ़ के छः शास्त्रों के भाष्य वृत्तिसहित सूत्रों को वर्ष के भीतर पढ़ावें और पढ़ लेवें पश्चात् छः वर्षों के भीतर चारों ब्राह्मण अर्थात् ऐतरेय, शतपथ, साम और गोपथ ब्राह्मणों के सहित चारों वेदों के मन्त्र, शब्द, अर्थ, सम्बन्ध तथा क्रिया सहित पढ़ना योग्य है। इसमें प्रमाण :—

स्थाणुरयं भारहारः किलाभूदधीत्य वेदं न विजानाति योऽर्थम् । योऽर्थज्ञ इत्सकलं भद्रमश्नुते नाकमेति ज्ञानविधूतपाप्मा ॥ निरुक्त १ । १८ ॥

जो वेद को स्वर और पाठमात्र पढ़ के अर्थ नहीं जानता वह जैसा वृक्ष, डाली, पत्ते, फल, फूल और अन्य पशु धान्य आदि का भार उठाता है वैसे भारवाह अर्थात् भार का उठानेवाला है और जो वेद को पढ़ता और उनका यथावत् अर्थ जानता है वही सम्पूर्ण आनन्द को प्राप्त होने के द्वाला के पश्चात् ज्ञान से पापों को छोड़ पवित्र धर्माचरण के प्रताप से मन्त्रानन्द को प्राप्त होता है।

उत त्वः पश्यन्न ददर्श वाचमुत त्व शृण्वन्न शृणोत्येनाम् । उतो त्वस्मै तन्वं विसमू जायेव पत्य उशती सुवासाः ॥ ऋ० ॥ मं० १० । मृ० ७१ । मं० ४ ॥

जो अविद्वान हैं वे सुनते हुए नहीं सुनते, देखते हुए नहीं देखते, बोलते हुए नहीं बोलते अर्थात् अविद्वान लोग इस विद्या याणा के रहस्य को नहीं जान सकते किन्तु जो शब्द अर्थ और सम्बन्ध का जानने वाला है उसके लिए विद्या जैसे सुन्दर वस्त्र आभूषण धारण करती अपने पति की कामना करती हुई स्त्री अपना शरीर और स्वरूप का प्रकाश पति के सामने करती है वैसे विद्या विद्वान के लिए अपने स्वरूप का प्रकाश करती है अविद्वानों के लिए नहीं।

ऋचो अक्षरे परमे उद्योमन धाम्निना निर्वाच्ये निषेदुः । यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त इमे यजमाने ॥

ऋ० ॥ मं० १ । मं० १६४ । मं० ३९ ॥

जिस व्यापक अविनाशा सर्वात्मक परमात्म में सब विद्वान और पृथिवी सूर्य आदि सब लोक स्थित हैं कि जिसमें सब वेदों का मुख्य तात्पर्य है उस ब्रह्म को जो नहीं जानता वह ऋग्वेदादि से क्या कुछ भुक्त को प्राप्त हो सकता है ? नहीं नहीं किन्तु जो वेदों को पढ़ के धर्मात्मा योगी होकर उस ब्रह्म को जानते हैं वे सब परमेश्वर में स्थित होके मुक्तिरूपी परमानन्द को प्राप्त होते हैं इसलिए जो कुछ पढ़ना वा पढ़ाना हो वह अर्थज्ञान सहित चाहिए। इस प्रकार सब वेदों को पढ़ के आयुर्वेद अर्थात् जो चरक, सुश्रुत आदि ऋषि मनिषणीत वैद्यक शास्त्र है उस को अर्थ, क्रिया, शास्त्र, छेदन, भेदन, लेप, चिकित्सा, निदान, औषध, पथ्य, शरीर, देश, काल और वस्तु के गुण ज्ञान आदि (चान्) वर्ष के भीतर पढ़ें पढ़ावें। तदनन्तर धनुर्वेद अर्थात् जो राजसम्बन्धी काम कहना है इसके दो भेद एक निज राजपुरुष सम्बन्धी और दूसरा प्रजा सम्बन्धी होता है। राजकार्य में सब सेना के

अध्यक्ष शस्त्रास्त्रविद्या नाना प्रकार के व्यूहों का अभ्यास अर्थात् जिसको आज कल "कवायद" कहते हैं जो कि शत्रुओं से लड़ाई के समय में क्रिया करनी होती है उनको यथावत् सीखें और जो २ प्रजा के अन्तर्गत योग्य बन्धि करने का प्रकार है उनको सीख के न्याय पूर्वक सब प्रजा को पालन करने में दुष्टों को यथायोग्य दण्ड श्रेष्ठों के पालन का प्रकार सब प्रकार आत्मज्ञेय गानविद्या को दो २ वर्ष में सीख कर गान्धर्ववेद कि जिसको गानविद्या कहते हैं उसमें मकर, गग, रागिणी, समय, ताल, ग्रास, तान, वादित्र, नृत्त, गीत आदि को गगानन भाग्य परन्तु मुख्य करके सामवेद का गान वादित्र व दनपूर्वक सीखें और नागदमहिता आदि जो २ आर्ष गन्थ हैं उनको पढ़ें परन्तु भडुवे वेश्या और विप्रवाशक्तिकारक वैरागियों के गर्दभ-शब्दवत् व्यर्थ आलाप कभी न करें। अथर्ववेद कि जिसको शिल्पविद्या कहते हैं उसको पदार्थ गुण विज्ञान क्रिया कौशल नानाविध पदार्थों का निर्माण पृथिवी से लेके आकाश पर्यन्त की विद्या को गगानन गगान के अर्थ अर्थात् जो ऐश्वर्य को बढ़ानेवाला है उस विद्या को सीख के २ वर्ष में व्यास शस्त्र सूर्यसिद्धान्तादि जिसमें बीजगणित, अङ्क, भूगोल, खगोल और पुराणविद्या है इसको यथावत् सीखें तत्पश्चात् सब प्रकार की हस्तक्रिया गन्धर्वकला आदि को सीखें परन्तु जितने गृह, नक्षत्र, जन्मपत्र, राशि, मुहूर्त, आदि के फल के विषयक गन्थ हैं उनको झूठ समझ के कभी न पढ़ें और पढ़ावें ऐसा प्रवृत्त करने वाला पढ़ानेवाले करें कि जिस से बीस वा इक्कीस वर्ष के भीतर समग्र विद्या उत्तम शिक्षा प्राप्त होके मनुष्य लोग कृतकृत्य होकर सदा आनन्द में रहें जितनी विद्या इस रीति से बीस वा इक्कीस वर्षों में हो सकती है उतनी अन्य प्रकार से शतवर्ष में भी नहीं हो सकती।

ऋषिप्रणीत गन्थों को इसलिए पढ़ना चाहिए कि वे बड़े विद्वान सब शास्त्र-वित् और धर्मात्मा थे और अनृषि प्रणीत जो अन्य शास्त्र पढ़े हैं और जिनका आत्मा पक्षपातसहित है उनके बनावट हुए गन्थ भी न पढ़ें।

पूर्वमीमांसा पर व्यासमुनिकृत व्याख्या, वैशेषिक पर गौतममुनिकृत, न्याय-सूत्र पर वात्स्यायनमुनिकृत भाष्य, पतञ्जलिमुनिकृत सूत्र पर व्यासमुनिकृत भाष्य, कपिलमुनिकृत सांख्य सूत्र पर भागुर्मुनिकृत भाष्य, व्यासमुनिकृत वेदान्त सूत्र पर वात्स्यायनमुनिकृत भाष्य अथवा बौद्धायनमुनिकृत भाष्य वृत्तिसहित पढ़ें पढ़ावें

इत्यादि सूत्रों को कल्प अङ्ग में भी गिनना चाहिए जैसे ऋग्यजु, साम और अथर्व चारों वेद ईश्वरकृत हैं वैसे ऐतरेय, शतपथ, साम और गोपथ चारों ब्राह्मण, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निघण्टु, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष छः वेदों के अङ्ग, मीमांसादि छः शास्त्र वेदों के उपाङ्ग, आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद और अर्थवेद ये चार वेदों के उपवेद इत्यादि सब ऋषि मुनि के किये गन्थ हैं इनमें भी जो २ वेदविरुद्ध प्रतीत हो उस २ को छोड़ देना क्योंकि वेद ईश्वरकृत होने से निर्भ्रान्त स्वतःप्रमाण अर्थात् वेद का प्रमाण वेद ही से होना है ब्राह्मणादि सब गन्थ परतःप्रमाण अर्थात् इनका प्रमाण वेदाधीन है वेद की विशेष व्याख्या ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में देख लीजिये और इस गन्थ में भी आगे लियेंगे ।

तिमिरभास्कर—

यहां तौ स्वामीजी ने बड़ी भारी चाल खेली है जरा आप आपने ऊपर लिखे हुएको तौ विचार कीजिये जो आप सत्यार्थ प्रकाश पृ० ७१ पं० १ में लिखते हो कि (ऋषिप्रणीत ग्रंथों को इस लिये पढ़ना चाहिये कि वे बड़े विद्वान सब शास्त्रवित् और धर्मात्मा थे) जब कि ऋषि प्रणीत ग्रंथों में भी आप लिखते हैं कि वेदानुकूल जो बात होगी चाह माना जायगा, तौ उन ऋषियों की पूर्णविद्वत्ता कहाँ रही, और वे धर्मात्मा किस प्रकार होसके हैं, जो वेदविरुद्ध कोई बात कहें यह आपन पूर्ण विद्वान् ऋषियों की निन्दा करी है तौ आपको मनुजी के वाक्यानुसार हम यह श्लोक भेंट करते हैं ॥

योवमन्येत ते मूले हेतुशास्त्राश्रयाद्विजः ।

ससाधुभिर्बहिष्कार्यो नास्तिको वेदनिन्दकः ॥ मनु० २। १६

जो वेद और आप्त पुरुषों के किये शास्त्रों का अपमान करता है उस वेद निन्दक नास्तिक को ज्ञान पंक्ति और देश से बाहर निकाल देना चाहिये ॥

अब कहिये आप इन्हीं महात्माओं के ग्रंथों में वेदविरुद्धता ठहराते हो तौ अब आपकी क्या दशा की जाय, जब आपको वेदा-

अनुकूल ही प्रमाण है तो वृथा और गंथों में भटकने हों क्योंकि आपको तो वही बात प्रमाण होगी जो वेद में होगी, फिर औरों के मानने की आवश्यकता क्या है, पर ऐसा करने में आपका काम कैसे चल सकता है आप तो अपने अनुकूल होने में मग्न कुछ मानते हैं भला यह तो कहिये यह सत्यार्थप्रकाश की रचना कौन से वेदके अनुकूल है, आप तो प्राचीन ऋषियों से भी अपने को अधिक मानते हो उन महात्माओं का लेख तो वेदविरुद्ध होगया जो कि पूर्ण विद्वान् थे, और आपका लेख जो स्वार्थपरता और वेदविरुद्ध अर्थों से पूर्ण है सत्य है, धन्य है यह बड़ाई ही तो आपका गुण प्रगट करती है भला यह तो बताओ कि अरहः सन्ध्यामुपासीत, स्वर्गकामो यजेत) अर्थात् गंगा गंगा मध्या करो स्वर्गकी इच्छा हो तो यज्ञ करै यह विधिवाक्य यज्ञोपवीत मंत्रोंके ऋषि देवता और उनके प्रयोग, यह पंचयज्ञ आदि यह कौन से मंत्र भागके अनुकूल हैं, और कौन से मंत्र इनके विधायक हैं बताओ तो सही जब मंत्र भागमें यह बातें नहीं तो आपके मतानुसार यह विधिकर्मकाण्ड सब वेदविरुद्ध हुआ, और यह पठन पाठन शिक्षा कौन से मंत्र भागके अनुकूल है, और संन्यासी होकर चोगा बूट जूता पहरना, हुक्का पीना, कुर्सी मेजकोही इस्तेमाल में लाना, विरागी होकर रुपया जमाकरना यह कौनसे मंत्रभाग के अनुकूल है महात्माजी जब आप वेदके अर्थ लिखने बैठते हो तो आप उसके अर्थको ब्राह्मण निघण्टु महाभाष्य उपनिषद् से सिद्ध करते हो, कि इस शब्द का निघण्टु में यह अर्थ है, शतपथमें इसका आशय इस प्रकार कथन किया है, इस कारण इसका यह अर्थ हुआ, जब यह दशा है कि बिना ब्राह्मण निघण्टुके आप वेदका अर्थ सिद्ध नहीं कर सकते तो वं ब्राह्मण निघण्टु वेदके अर्थ को सिद्ध करने से स्वतः सिद्ध और स्वतः प्रमाण क्यों नहीं क्यों कि मंत्र वर्णन में तो यह लिखा ही नहीं, कि इसका अर्थ इस प्रकार कर करना, यह विधि तो ब्राह्मण निघण्टु आदिमें ही कथन

करी है, कि मंत्रका यह अर्थ है और यह इसके प्रयोगकी विधि है इससे इनका वेदवत् प्रमाण है इन गृथोंमें अंशभी वेद विरुद्ध नहीं है और इसीकारण से (मंत्र ब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्) मंत्र और ब्राह्मणका नाम दोनों मिलकर वेद कहा जाता है अब कहिये इन गृथोंसे अर्थ करने में वेदानुकूलता आपकी कहाँ गई और जिस गृथ में थोड़ा भी असत्य है आप उसे त्यागन करने कहते हैं जैसा कि स० प्र० पृ० ७१ पं० ३० में लिखा है (विषसंपृक्तान्नवत् त्याज्याः) जैसे अत्युत्तम अन्न विषमं गंयुक्त होनेसे छोड़ने योग्य होता है वैसेही असत्यतामिश्रित गृथ त्याज्य हैं और पृ० ७२ पं० १२ (असत्यमिश्रं सत्यंदूरतस्त्याज्यमिति) असत्य से युक्त सत्य भी दूरसे छोड़ना चाहिये ऐसेही असत्य मिश्रित ग्रंथभी त्यागने, क्योंकि जो सत्य है जो वेदादि सत्यशास्त्रों का है मिथ्या उनके घरका है वेदके स्वीकार में सब सत्यका गृहण हो जाता है और जो इन मिथ्या गृथों में सत्यका गृहण करना चाहै तो असत्य भी उसके गलेमें मढ़ जाना है यह पृ० ७२ पं० ६ से १३ पंक्ति तक कथन है ॥

जो यह दशा है तो ब्राह्मणादि गृथोंमें भी आपके कथनानुसार असत्य है तो विषवत् होनेसे इनका भी त्यागन करना चाहिये, फिर इनको क्यों मानते हो यह आपका बड़ा भारी अन्याय है कि जिस थाली में खांय उसी में छेद करै, यह आपकी बड़ी भारी भ्रान्ति है, कि ब्राह्मणादि गृथों में असत्य और वेदविरुद्धता मानते हो यदि आप इनमें भी असत्य और वेदविरुद्ध बताते हो तो फिर इन्हीं का प्रमाण देने आप क्यों नहीं लजाते, आप अपने पूर्व लेखको बड़ी जल्दी भूल गये, कि विष मिला अमृतभी विषही हो जाता है बस इसीने मारा दिया आपका सत्यार्थप्रकाश और वेदभाष्यभूमिका असत्य होनेसे त्याज्य है ॥

जाल ग्रन्थ ।

सत्यार्थप्रकाश—

अब जो परित्याग के योग्य ग्रन्थ हैं उनका परिगणन संक्षेप से किया जाता है अर्थात् जो २ नीचे ग्रन्थ लिखेंगे वह २ जालग्रन्थ समझना चाहिये । व्याकरण में कातन्त्र, सारस्वत, चन्द्रिका, मुग्धबोध, कौमुदी, शेखर, मनोरमादि । कोश में अमरकोशादि । छन्दोग्रन्थ में वृत्तगन्नाकगदि । शिक्षा में अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामि पाणिनीयं मतं यथा । इत्यादि । ज्योतिष में ग्राह्यवाध मुहूर्तचिन्तामणि आदि । काव्य में नायकाभेद, कुवल्यानन्द, गुरुवंश, माघ, किरातार्जुनीयादि । मीमांसा में धर्मसिन्धु, ब्रतार्कादि । वैशेषिक में तर्कमंगदादि । न्याय में जागदीशी आदि । योग में हठप्रदीपिकादि । सांख्य में सांख्यतन्त्रकौमुद्यादि । वेदान्त में योगवासिष्ठ पञ्चदश्यादि । वैद्यक में शार्ङ्गधरादि । स्मृतियों में मनुस्मृति के प्रक्षिप्त श्लोक और अन्य सब स्मृति, सब तंत्र ग्रन्थ, सब पुराण, सब उपपुराण, तुलसीदासकृत भाषारामायण, रुक्मिणीमङ्गलादि और सर्वभाषा ग्रन्थ ये सब कपोलकल्पित मिथ्या ग्रन्थ हैं (प्रश्न) क्या इन ग्रन्थों में कुछ भी सत्य नहीं ? (उत्तर) थोड़ा सत्य तो है परन्तु इस के साथ बहुतसा असत्य भी है इस से “विषसम्पृक्तान्न-वत् त्याज्याः” जैसे अत्युत्तम अन्न विष से युक्त होने से छोड़ने योग्य होता है वैसे ये ग्रन्थ हैं ॥

तिमिरभास्कर

यहां तौ कौमुदी की यह निन्दा और जब आप मरे तौ निजवस्तेमें वैयाकरणसर्वस्व और सिद्धान्तकौमुदी यह दो ग्रन्थ निकले, इन व्याकरणों के ग्रंथों में क्या मिथ्यापना है क्या इन ग्रंथों ने अष्टाध्यायी का खंडन किया है, कौमुदी आदिकों में तौ पाणि-निकृत अष्टाध्यायी के सूत्रों की वृत्ति की है यदि वृत्ति करनेही से वे जाल ग्रंथ आपने बताये तौ तुम्हारा रचित वेदाङ्गप्रकाश जो अष्टाध्यायी की भाषाटीका कौमुदीकी रीति पर है वोह भी मिथ्याही होना चाहिये कोशमें यदि निघण्टु जिसमें वैदिक शब्द हैं पढ़ें और अमरकोशादि न पढ़ें तौ लोकार्कक शब्दोंके अर्थ आपके

सत्यार्थप्रकाश या वेदभाष्यभूमिका में करै काव्यों से आपकी शत्रुता क्यों है, क्या यह भी आजीविकाकोही रचना किये है यदि यह काव्य जिनसे व्युत्पन्न होता है न पढ़ें तो क्या आपका बनाया संस्कृत वाक्यप्रबोध जिसमें भैरवों अशुद्धि भरी पड़ी है उसे पढ़ें, जो और भी बुद्धिभ्रष्ट हो जाय, तर्कसंग्रह में कौनसी बात वैशेषिकके विरुद्ध है, और आपने भी तो ५४ पृष्ठ से ६६ पृष्ठ तक तर्क संग्रहही लिखी है, यह आपका बड़ा भारी चालाकी है, कि कोई हमारा चेला सत्यार्थप्रकाश में से निकालकर अलग छपालेगा, तो तर्कसंग्रह के स्थानमें यही काम आवैगा और हमारा नाम होगा, यह लिखा तो होता, कि तर्कसंग्रह ने कौनसी आपकी रोजी छीनली और उसमें विरुद्ध कौनसी बात है पर हठ को क्या करिये और जब मनुष्य प्रक्षिप्त लोक हैं तो यह भी विषमिश्रित अन्नकी नाई आपने त्यागन क्यों नहीं किया, यदि इसे भी छोड़ते तो काम कैसे चलता पुराणोंकी सिद्धि आगे चल कर करेंगे, तुलसीदासजीने क्या बात विरुद्धताकी लिखी है और जब सब भाषाके ग्रंथ कपोलकल्पित हैं तो आपका सत्यार्थप्रकाश वेदभाष्य तथा भूमिका आर्योंदश्यरत्नमाला आदि जो कुछ आपकी भाषाकी गढ़त है यह भी कपोलकल्पित और त्याज्य है, भाषाकी अतिव्याप्ति होनेसे, जो आप अपनी बनाई भाषा माने तो ओरोंके बनावे क्यों प्रमाण नहीं ? बीमारी होनेसे आप तो अंग्रेजी दवाई उड़ाना और शार्ङ्गधरको जाल ग्रंथ बताना, धन्य है यदि जन्मपत्र मुहूर्त दिग्गता है तो वस्त्र विधि में यज्ञोपवीत विवाह में पुष्यनक्षत्र शुक्लपक्ष उत्तरायण आदि यह मुहूर्त विधि क्यों लिखी हैं, अब सुश्रुतका भी प्रमाण सुनिये जिसके प्रमाण आप सत्यार्थप्रकाश में बहुधा लिखते हैं ।

उपनयनीयस्तुब्राह्मणः प्रशस्तेषुतिथिकरणमुहूर्तनक्षत्रेषुप्रश-
स्तायां दिशि शुचौ समेदेशे चतुर्हस्तं चतुरस्रं स्यंडिलमुपलिप्य गोम-

वेनदमैः संस्तीर्य पुष्पैर्लाजभक्तैरत्नैश्च देवताः पूजयित्वा विप्रान्
भिषजश्चेत्यादि ॥ सुश्रुतसूत्रस्थान अ० २

अर्थ-दीक्षा योग्य तो ब्राह्मण है अच्छी तिथि करण सुहृत्
अच्छे (पुष्पहस्त श्रवण अश्विनी) नक्षत्र में उत्तर वा पूर्व श्रेष्ठ
दिशा में पवित्र समान देश में चौकान चार विलायंद अथवा चार
हाथकी वेदी रचे, उसको गोबर में लाप उम पर कुशा बिछावे
पुष्पखिलै रत्नादि से देवताओं का पूजन कर ब्राह्मण वैद्यों का पूजन
करे (जब शिष्यहो) पुनः शकुन ॥

ततोदूतनिमित्तशकुनमंगलानुलोम्येनानुरगृतमभिगम्योपवि-
श्यातुरमभिपश्येत् स्पृशेत् पृच्छेच्च ॥ अ० सूत्र० अ० १०

अर्थ-जब दूतके साथ वैद्य जाय तो निमित्त-सुन्दरगन्धादि
शकुन-पक्षियोंकी चेष्टादि मंगल स्वस्तिक पूर्ण घटादि इनको
विचारे फिर रोगीके पास जाय देखे छुवे और पूछे ।

इन वाक्यों से स्पष्ट है कि सुश्रुत आदि महर्षि भी ज्योतिष
शकुन ग्रह नक्षत्रादि अनुसार शुभाशुभ फल मानते थे, जब आपने
इन ग्रंथोंको प्रमाण माना है तो सुहृत्तादि स्वयं सिद्धही हैं तिससे
ग्रहादि फलका न मानना आपकी बड़ा भूल है वेदमें आगे लिखेंगे ।

भास्करप्रकाश—

पूर्ण विद्वान ऋषि थे इसका तात्पर्य यह नहीं हो सकता कि वे वेदप्रणेता पर-
मात्मा से अधिक थे किन्तु मनुष्यों में वे पूर्ण विद्वान थे । उनके वेदविरुद्ध बचन
को (यदि उनके ग्रन्थों में उनका वा उनके नाम से अन्य किसी का कोई बचन
वेद विरुद्ध जान पड़े) न मानना उनका अपमान नहीं किन्तु मान्य है क्योंकि मनु
आदि ऋषि लिख गये हैं कि वेदबाह्य स्मृति माननीय नहीं । यथा :-

या वेदबाह्याः स्मृतयो याश्च काश्च कदाप्यः । इत्यादि

और जो वेद शास्त्र का अपमान करे वह बाहर किया जावे । यह बचन

स्वामीजी पर नहीं किन्तु आप पर घृता है क्योंकि स्वामीजी तो यह कहते हैं कि “वेदविरुद्धस्मृतिवाक्य नहीं मानना” इसमें वे वेद का मान्य करते हैं और आप उनके विरुद्ध मानो यह कहते हैं कि वेदविरुद्ध भी स्मृतिवाक्य मानना। वेद का अपमान साक्षात् ही आप करते हैं और ऋषियों का भी अपमान इसलिये करते हैं कि ऋषि लोग वेदवाह्य स्मृतियों को नहीं मानते और आप मानते हैं। इस प्रकार आप, परमात्मा और ऋषि दोनों का अपमान करते हैं। कहिये अब आप को कहां भेजा जावे।

प्रथम तो हम यह नहीं कहते कि हम मन्त्रों में साक्षात् ही सब विधि दिखला सकते हैं किन्तु हमारा सिद्धान्त तो जैमिनीय मीमांसा के :—

विरोधे त्वनपेक्ष्यं स्यादसति लभमानम् । मा० अ० १ पा० ३ सू० ३ ।

के अनुसार यह है कि शब्दप्रमाण के साक्षात् विरुद्ध बातें न मानी जावें परन्तु विरोध भी न हो और साक्षात् विधिवाक्य भी न मिले तो अनुमान करना चाहिए कि यह विधि किसी प्रकार किन्हीं ऋषियों ने वेद में साक्षात् वा ध्वनि आदि से देखा ही होगा। तथापि उद्गाता आदि का विधान नीचे लिखे मन्त्र में मूलरूप पाया जाता है :—

ऋचां त्वः पोषमास्ते पुपुष्वान, गायत्रं त्वा गायति शकरीषु । ब्रह्मा त्वो वदति जातविद्यां, यज्ञस्य मात्रां विमिमीत उत्वः । ऋ० मं० १० अष्टक ८ अध्याय २ मं० अन्तिम ।

अन्वितव्याख्यानम्—(त्वशब्दः सर्वनामस्य पठित एकशब्दपर्यायः) एको होता (पुपुष्वान ऋचां पोषमास्ते) एकमात्रिकतन्मन यत्र तत्र पठिता ऋचो यथाविनियोगविन्यासेन पोषयति सार्थकाः कर्तात (त्वः शकरीषु गायत्रं गायति) एक उद्गाता शक्युपलक्षितासुच्छन्दोविंशत्युक्ताम्बुश्रुगायत्रं गायत्रादिनामकं साम गायति (त्वो ब्रह्मा जातविद्यां वदति) एका ब्रह्मा अपरांश जाते तत्प्रतीकाररूपां विद्यां वदति (त्वो यज्ञस्य मात्रां विमिमीत उ) एकोऽध्वर्युयज्ञस्य मात्रामियत्ता विमिमीते विशिष्टतया परिच्छिनत्ति ।

अर्थात् एक होता ऋचाओं को विनियोगानुसार संघटित करता है, एक

उद्गाता शक्यादिच्छन्दोयुक्त गायत्र गान करता है, एक ब्रह्मा यज्ञ में कुछ अपराध वा भूल चूक होने पर उसका प्रतीकार करता है और एक अध्वर्यु यज्ञ के परिणाम वा इयत्ता को निर्धारित करता है।

यह बात नहीं है कि निरुक्तादि की मदायता बिना वेदार्थ हो ही न सके। जब तक निरुक्तादि ग्रन्थ नहीं बने थे तब भी वेद और उन का अर्थ था ही किन्तु निरुक्तादि के प्रमाण इस लिये दिये जाते हैं कि जो वेद का अर्थ हम करते हैं उस प्रकार अन्य भी अमुक २ ऋषि लिखते हैं जिम से हमारे ममझे अर्थ की पुष्टि होती जावे ॥

सत्यार्थप्र० में भी यह तौ नहीं लिखा कि निरुक्तादि ऋषिप्रणीत ग्रन्थों में वेदविरुद्ध है ही है किन्तु यह लिखा है कि यदि इन में वेदविरुद्ध हो तौ त्याज्य है नहीं तौ नहीं। अर्थात् ऋषि यद्यपि पूर्ण विद्वान् थे, उन के ग्रन्थों में पुराणप्रणेताओं के से गण्य नहीं हैं, यावच्छक्य ऋषियों ने वेदानुकूल ही लिखा है परन्तु तौ भी निदान ऋषि लोग सर्वज्ञ परब्रह्म न थे अतः एव यदि कहीं किसी आर्ष ग्रन्थ में वेदसंहिता के विरुद्ध कुछ वचन पाये जावें तौ वहां वेद माना जावे अन्य ग्रन्थ नहीं। और यह बात कुछ स्वामीजी ने ही नहीं लिखा किन्तु जैमिनि जी भी मीमांसा शास्त्र में लिखगये हैं कि—

विरोधे त्वनपेक्ष्यं स्यादसति ह्यनुमानम् । १ । ३ । ३ ॥

विरोध हो तौ त्याज्य है और विरोध न हो तौ अनुमान करे कि अनुकूल है। यदि वेद से विरुद्ध कोई बात भी इतर ग्रन्थों में न होता तौ जैमिनि जी ऐसा क्यों लिखते। आप स्वामी दयानन्द स० जी के लेख को न मानियेगा तौ जैमिनीय मीमांसा को तौ मानियेगा ? फिर आप का यह लेख कैसे सत्य हो सक्ता है कि इन ग्रन्थों में अंश भी वेदविरुद्ध नहीं ॥

यह आपस्तम्ब की यज्ञपरिभाषा है। पारिधार्पिक शब्दों का जो अर्थ ग्रन्थकार नियत करते हैं वह सार्वत्रिक नहीं किन्तु उर्मा अधिकरण में माना जाता है। जैसे पाणिनि जी अष्टाध्यायी में “अदेङ्गुणः” १ । १ । १७ लिखते हैं कि अ, ए, ओ, ये तीन गुण हैं तौ व्याकरण ही में गुण शब्द से अ, ए, ओ का अर्थ लिया

जायगा अन्यत्र नहीं। यदि सांख्य शास्त्र में गुण शब्द आता है तो सत्व, रजः, तमः का अर्थ लिया जाता है। और वैशेषिक में रूप रस गन्धादि २४ गुण माने गये हैं। सो वे २ अपने अपने २ गून्थ में गारिभाषिक (इस्तलाही) शब्द हैं। यदि कोई व्याकरण में गुण से सत्व रजः तमः समझे तो अज्ञान है, वा सांख्य में गुण शब्द से अ, ए, ओ समझे तो मूर्खता है। इसी प्रकार यज्ञ के प्रकार वर्णन करते हुए आपस्तम्ब के सूत्रों में जहां वेद शब्द आता है वहां ही मन्त्र और ब्राह्मण दोनों का गूहण होता है न कि सर्वत्र ॥

पूर्वा पर प्रसङ्ग देखिये सत्यार्थप्र० पृ० ३० में पुराणों के लिये विषयुक्त अन्न का दृष्टान्त है वह ऋषि प्रणीत गून्थों में नहीं पड़ता। पुराणों के कर्त्ताओं ने ईर्ष्या द्वेष आदि से असत्य बातों का ढेर किया है वह अवश्य विषतुल्य है जिस के सङ्ग से पुराणों का सत्य विषय भी विषयुक्त अन्न तुल्य हो गया है परन्तु ऋषिप्रणीत गून्थों में जो कुछ कहीं भूल भी हो वह ईर्ष्या द्वेषादि से नहीं किन्तु अल्पज्ञता से है इस लिए उसे विष नहीं कह सकते किन्तु वह ऐसा है जैसे किसी औषध में कुछ मिट्टी कङ्कुर आदि मिल गया हो तो उसे छान कर औषधमात्र गूहण करना योग्य होता है इसी प्रकार ऋषिप्रणीत औषध रूप गून्थ में अल्पज्ञता से आये मिट्टी कङ्कुर आदि निकाल कर औषधोपम आर्षगून्थ पढ़ने चाहियें।

पुराणों का विष—

सर्वन्तु समवेक्ष्येदन्नित्विलं ज्ञानचक्षुषा ।

श्रुतिप्रामाण्यतो विद्वान् स्यधर्मं निविशेत् ॥

अर्थ—विद्वान् पुरुष को उचित है कि सब बातों को ज्ञान की आंख से देखकर श्रुति अर्थात् वेद के प्रमाण से पहले धर्म का स्वीकार करे ॥

तिलकों में विरोध—

पञ्चपुराण में कहा है:—

ऊर्ध्वपुण्ड्रविहीनस्य श्मशानमदृशं मुखम् ।

अवलोक्य मुखं तेषामादित्यमवलोकयेत् ॥

(तथा) ब्राह्मणः कुलजोविद्वान् भस्मधारी भवेद्यदि ।
वर्जयेत्तादृशं देवि मद्योच्छिष्टं घटं यथा ॥

अर्थ—जो लम्बा तिलक (वैष्णवा मार्ग का) धारण नहीं करता उस का मुंह श्मशान के तुल्य है अतएव देखने योग्य नहीं कदाचित् देख पड़े तो इस का प्रायश्चित्त करे अर्थात् तुरन्त सूर्य का दर्शन कर लेवे ॥ १ ॥ ब्राह्मणकुलोत्पन्न जो विद्वान् होकर भस्म धारण करे उस का शगव के जूटे बासन की नाई त्याग देवे ॥

अब देखिये इस के विरुद्ध शिवपुराण में क्या लिखा है :—

विभूतिर्यस्य नो भाले नाङ्गे रुद्राक्षधारणम् ।

नास्ये शिवमयी वाणी तं त्यजेदन्त्यजं यथा ॥

अर्थ—विभूति (भस्म) जिस के माथे पर नहीं और अङ्ग में रुद्राक्ष नहीं पहिने । मुंह से शिव २ ऐसा न कहे वह चाण्डाल की नाई त्याज्य है ॥

इसी प्रकार पृथिवीचन्द्रोदय में भी वैष्णवों को लताड़ दी है :—

यस्तु सन्तप्तशङ्खादिलिङ्गचिन्हधरोनरः ।

स सर्वयातनाभोगी चाण्डालोजन्मकोटिपृ ॥

अर्थ—जो मनुष्य तपे हुए शङ्खादिकों के चिन्ह का धारण करता है वह सब नरकयातनाओं को भोगता है और कोटिजन्मपर्यन्त चाण्डाल होता है ॥

ऊपर के श्लोकों से स्पष्ट विदित होता है कि तिलक धारण करने के विषय में पुराणों में सर्वथा परस्पर विरोध है अर्थात् शैवसम्प्रदायी चक्राङ्कित सम्प्रदायियों के तिलक को बुरा कहते और वैष्णवसम्प्रदायी शैवादिसम्प्रदायियों के तिलक को भूष्ट बताते हैं इस से यह निश्चित हुआ कि यदि पुराणों को सत्य माना जाय तो सर्व प्रकार के तिलकधारी भूष्ट पातित और नरक के अधिकारी ठहरते हैं अतएव पुराण भूमजाल में फँसाने वाले हुए जैसा कि पद्मपुराण में स्पष्ट लिखा है :—

व्यामोहाय चराचरस्य जगत्तश्चैते पुराणागमास्तां ।

तामेव हि देवतां परत्रिकां जल्पन्ति कल्पावधि ।

सिद्धान्ते पुनरेकएव भगवान् विष्णुस्ममस्तागमा ।
व्यापारेषु विवेचनं व्यतिकरं नित्येषु निश्चीयते ॥

अर्थात् जितने पुराण हैं सब मनुष्य को भ्रम में डालने वाले हैं उन में अनेक देव ठहराये गये हैं एक ईश्वर का निश्चय नहीं होता । केवल एक भगवान् विष्णु पूज्य हैं ॥

हे पौराणिक भक्तो ! जब सभी पुराण भ्रम में डालने वाले हैं जैसा कि ऊपर के वचन से स्पष्ट है तो तुम्हें भ्रम से बचाने वाला आर्यसमाज के अतिरिक्त और कौन है ॥

पुराणों में देवताओं की निन्दा—

भागवत में लिखा है :—

भवव्रतधरा ये च ये च तान् समनुव्रताः ।
पाषण्डिनस्ते भवन्तु सच्छास्त्रपरिपन्थिनः ॥
मुमुक्षवो घोररूपान् हित्वा भूतपतीनथ ।
नारायणकलाः शान्ता भजन्ति ह्यनमृग्यवः ॥

अर्थ—जो शिव के भक्त हैं और उन का सेवा करते हैं सो पाखण्डी और सच्चे शास्त्र के बैरी हैं इस लिये जो मोक्ष का उच्छ्रा रखते हैं सो भयानक वेष भूतों के स्वामी अर्थात् महादेव का छोड़ें और नारायण की शान्तकलाओं की पूजा करें ॥

अब पद्मपुराण में शिव की स्तुति में यह श्लोक कहे हैं :—

विष्णु दर्शनमात्रेण शिवद्रोहः प्रजायते ।
शिवद्रोहान्न सन्देहो नरकं याति दारुणम् ॥
तस्माद्वै विष्णुनामापि न वक्तव्यं कदाचन ।

अर्थ यह है कि—जब लोग विष्णु का दर्शन करते हैं तब महादेव कुद्ध होता है और उस के क्रोध से मनुष्य महानरक में जाते हैं इस कारण विष्णु का नाम कभी न लेना चाहिये ॥

उसी पुराण में ये श्लोक हैं :—

यस्तु नारायणं देवं ब्रह्मरुद्रादिदैवतैः ।
समं सर्वैर्निरीक्षेत स पाषण्डी भवेत्सदा ॥
किमत्र बहुनोक्तेन ब्राह्मणा येप्यवैष्णवाः ।
न स्पृष्टव्या न दृष्टव्या न वक्तव्याः कदाचन ॥

अर्थ यह है—जो कहते हैं कि और देवता अर्थात् ब्रह्मा महादेव इत्यादि नारायण के समान हैं सो पाखण्डी हैं इन के विषय में हम और बात न बतावेंगे क्योंकि जो ब्राह्मण विष्णु को नहीं मानते उन को कभी न छूना न देखना और न उन से बोलना चाहिये ॥

फिर पद्मपुराण में विष्णु की स्तुतियों में यह श्लोक है :—

येऽन्यदेवं परत्वेन वदन्त्यज्ञानमोहिताः ।
नारायणाज्जगन्नाथात् ते वै पाषण्डिनो नराः ॥

अर्थ यह है कि—जो लोग किसी दूसरे देवता को नारायण से जो जगत् का स्वामी है बड़ा करके मानते हैं सो अज्ञानी हैं और लोग उन को पाखण्डी कहते हैं ।

फिर इसी पुराण में परस्पर विरोध देखो जैसे :—

एष देवो महादेवो विज्ञेयस्तु महेश्वरः ।
न तस्मात्परमङ्गिञ्चित् पदं समधिगम्यते ॥

अर्थ यह है कि—महादेव को महान् ईश्वर जानना चाहिये और यह मत समझो कि उस से कोई बड़ा है । फिर इस से विरुद्ध देखो :—

वासुदेवं परित्यज्य येऽन्यं देवमुपासते ।
तृ पतोजान्हवीतीरे कूपं खनति दुर्मतिः ॥

अर्थ यह है कि—विष्णु को छोड़ कर जो दूसरे देव को मानते हैं सो उस मूर्ख के समान हैं कि जो गङ्गा के तीर प्यासा बैठा कुआ खोदता है ॥

इसी प्रकार ब्रह्मा विष्णु श्रीकृष्ण पराशर शिव चन्द्रमा बृहस्पति इन्द्र आदि महानुभाव जो कि प्राचीन काल में अत्यन्त प्रसिद्ध विद्वान् राजा महाराजा हुए हैं

और सत्यशास्त्रों में उन का बड़ा सत्कार किया गया है और जिन्हें ऋषि मुनि देवताओं की पदवियां दी गई हैं, पुराण उनकी निन्दा करते और कोई ऐसा दूषण नहीं जो इन देवताओं पर नहीं लगाते हैं ॥

द० ति० भा० पृ० ४० पं० १५ से कौमुदी की निन्दा करते थे परन्तु उन के मरणानन्तर बस्ते में निकली, भला व्याकरण में क्या मिथ्यापना है जो कौमुदी आदि को त्याज्य लिखा। काव्य न पढ़ें तो व्युत्पत्ति कैसे हो इनमें क्या बुराई है। आप के “संस्कृतवाक्यप्रबोध” में सैकड़ों अशुद्धि हैं जिस से बुद्धि भ्रष्ट हो जावे। तर्कसंग्रह क्यों त्याज्य है, उस में वैशेषिक के विरुद्ध क्या बात है। मनु में भी प्रक्षिप्त है तो यह भी विवाक्त अन्नवत् क्यों न त्याग किया। जब भाषा के सब ग्रन्थ कपोलकल्पित हैं तो क्या सत्यार्थप्रकाशादि भाषा के ग्रन्थ कपोलकल्पित नहीं? यदि मुहूर्त मिथ्या हैं तो संस्कारविधि के पुण्य नक्षत्र उत्तरायणादि मिथ्या क्यों नहीं? और सुश्रुत सूत्रस्थान २ अध्याय में:—

उपनीयस्तु ब्राह्मणः प्रशस्तेषु तिथिकरणमुहूर्तेषु० इत्यादि ॥

ब्राह्मण का उपनयन अच्छे तिथि करण मुहूर्त और नक्षत्र में करे इत्यादि और शकुन भी सुश्रुत में लिखा है। सूत्रस्थान प्र० १०—

ततो दूतनिमित्तशकुनं मङ्गलानुलोभ्येन । इत्यादि ॥

अर्थात् वैद्य चिकित्सा को जावे तो शकुनादि अच्छे पढ़ें तब रोगी को देखे छुवे और पूछे। इत्यादि ॥

प्रत्युत्तर—व्याकरणादि में भी विषयों के ऋषिप्रणीत ग्रन्थों का पढ़ना इस लिये अच्छा है कि उस में अपने मुख्य विषय के वर्णन के साथ साथ उदाहरणादि के मिष से उस समय के धर्म आचार व्यवहार आदि की भी चर्चा कुछ न कुछ भाती ही है जिस से विद्यार्थी पर कुछ न कुछ प्रभाव ऋषियों के चालचलन का पड़ता ही है। इसी प्रकार कौमुदी आदि के पढ़ने से उस समय के सिद्धान्त विचार व्यवहारादि का भी विद्यार्थी पर बुरा प्रभाव न पड़े इस लिये स्वामीजी ने ऋषिप्रणीत ग्रन्थों के प्रचारार्थ लिखा है। आधुनिक व्याकरण काव्यादि में श्रीकृष्णादि पर मिथ्यारोपित दूषणों का वर्णन है इस लिये उन से विद्यार्थी पर बुरा प्रभाव पड़ेगा अतः त्याज्य लिखा है। संस्कृतवाक्यप्रबोध में छापे आदि की अशुद्धि हों वे

पढ़ने वाले शुद्ध करके पढ़ा लेंगे परन्तु कोई ऋषि सिद्धान्तविरुद्ध बात तो नहीं जिस से विद्यार्थी का आचरण बिगड़े। तर्कसंग्रह में वैशेषिक से क्या विरुद्ध है यह तो आप को वैशेषिक पढ़ा होता तो ज्ञात होता वैशेषिक में:—

द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमवायानां पदार्थानामित्यादि ।

छः पदार्थ हैं। तर्कसंग्रह में इस के विरुद्ध—

द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमवायाऽभावाःसप्तपदार्थाः०

इत्यादि में सात पदार्थ हैं। मनु में प्रक्षिप्त है परन्तु मनुस्मृति ऋषिप्रणीत तो है और बहुत न्यून जो कुछ मिलावट हुई है उसे वेद का सिद्धान्त जानने वाले सहज में जान सकते हैं। वह पुराणों के समान जानबूझ कर गून्थ का गून्थ ही तो अनार्ष नहीं। भाषागून्थ मात्र को स्वामी जी ने त्याज्य नहीं लिखा, सत्यार्थप्र० खोलकर देखिये पृ० ७१ पं० २७ में यह लिखा है कि “रुक्मिणीमङ्गलादि और सब भाषागून्थ” इस लिखने से स्पष्ट विदित होता है कि रुक्मिणीमङ्गल के सदृश श्रीकृष्ण महाशय के शुद्ध चरित्रों को अश्लील अयुक्त रीति पर वर्णन करने वाले ही भाषागून्थ त्याज्य हैं, न कि सत्यार्थप्रकाशादि उत्तम गून्थ। मुहूर्त्तादि गून्थों के मिथ्या लिखने का तात्पर्य यह है कि उन २ मुहूर्त्तों में लिखे फल मिथ्या हैं यथार्थ में मुहूर्त्त समयविशेष को कहते हैं। शुभमुहूर्त्त में उपनयनादि लिखने वाले सुश्रुतादि गून्थकारों का आशय यह है कि जिस मुहूर्त्त में अनुकूलता सब प्रकार से हो वह शुभमुहूर्त्त है न कि अनुकूलता तो १० वजे दिन को हो और ज्योतिषी जी कहते हैं कि ३॥ वजे रात्रि को मुहूर्त्त अच्छा है उत्तरायण इस लिये अच्छा है कि वह दैवदिन है क्योंकि १ वर्ष को दैवदिन मानने पर दक्षिणायण रात्रि और उत्तरायण दिन है। इसी प्रकार आर्षगून्थों की बातें निष्प्रयोजन नहीं हैं शकुन का केवल इतना फल युक्त है कि जब किसी कार्य को मनुष्य चलता है तब यदि अच्छे पदार्थ सम्मुख हों तो चित्त को आल्हाद होने से उस कार्य में अधिक उत्साह होता और उस से कार्य अच्छा बनना सम्भव है अन्य शकुनावली आदि में लिखे ऊट पटांग शकुनों को मानना और समझना कि “शकुन के विरुद्ध कार्य हो ही नहीं सकता” मूर्खता है। क्योंकि केवल अशुभ शकुन से चित्त पर कुछ बुरा प्रभाव भी पड़े और दूसरी बातें सब अनुकूल हों तो शकुन कुछ नहीं कर

सक्ता । तात्पर्य यह है कि ऋषियों की सम्मति के अनुसार शुभ अशुभ कार्यों को देख कर चित्त पर उसका कुछ न कुछ प्रभाव होता है यह ठीक है परन्तु जिस प्रकार प्रचरित ग्रन्थों में लिखे शकुनों के विरुद्ध लोग काम ही नहीं करते चाहे कैसी ही अन्य अनुकूलता हों और चाहे जितनी प्रतिकूलता होने पर भी केवल शकुन के भरोसे जो लोग काम बिगाड़ते हैं यह मूर्खता है ।



मीक्षा—स्वामी दयानन्दजी ने पढ़ने पढ़ाने की विधि लिखकर आर्य-समाज के धार्मिक ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश में रखदी कल को कोई आर्य-समाजी कपड़ा बुनना और घड़े बनाना या पुस्तकें छापने का तरीका लिख कर सत्यार्थप्रकाश में मिला देगा वह भी आर्यसमाज का धार्मिक ग्रन्थ हो जावेगा । स्वामी दयानन्दजी ने जो पठन पाठन की विधि लिखी है उससे आज कल की सर्कारी पाठविधि उत्तम है यदि सर्कारी विधि से पढ़े तो मनुष्य विद्वान हो सकता है और यदि स्वामी दयानन्द की विधि से पढ़े तो बारह वर्ष पढ़ कर भी “निरक्षर भट्टाचार्य” ही रहता है । इसमें दो प्रमाण हैं प्रथम तो यह कि गुरुकुल कांगड़ी कि जहां पर स्वामी दयानन्द के कायदे से पढ़ाई होती है वहां से आज तक भी कोई संस्कृत का विद्वान् होकर नहीं निकला यों नाम के लिये भले ही गुरुकुल से विद्यालङ्कार और वेदालङ्कार की उपाधि दे दें किन्तु ये गुरुकुल के लङ्कार पण्डितों में बैठ कर न संस्कृत बोल सकते हैं और न अपने विद्वान होने का किसी दूसरी रीति से परिचय दे सकते हैं किन्तु पण्डित मण्डली को देखते ही ऐसे भागते हैं कि जैसे बिल्ली को देखकर चूहा और यदि कोई पकड़ कर बिठला भी ले तो अपने लिये अंग्रेजी के विद्वान् होने का परिचय देते हैं संस्कृत का नाम तक नहीं लेते और जहां पर कोई संस्कृत का जाननेवाला नहीं वहां पर तो वेदालङ्कार बने ही बनाये हैं दूसरे गुरुकुल सिकन्दराबाद आदि २ गुरुकुलों में दयानन्द की बतलाई पठन पाठन विधि के अनुसार पाठप्रणाली न रख कर सर्कारी पाठप्रणाली रखी है फल यह निकला कि वहां के विद्यार्थी संस्कृत में योग्य होते हैं । स्वामी दयानन्दजी ने जो पठन पाठन विधि निराली ही निकाली इसका तो मतलब ही कुछ और है आर्यसमाज भले ही न समझे किन्तु हम समझते हैं वह यह है कि स्वामी दयानन्द को यह भय है कि कहीं ऐसा न हो कि कोई आर्यसमाजी संस्कृत का विद्वान् हो जावे यदि ऐसा हो गया तब तो हमारे पंजे से निकल जावेगा और जिनको हम वैदिक

सिद्धान्त कहते हैं उनको शेखचिल्ली की कहानियां समझने लगेगा इसी प्रयोजन के लिये स्वामी दयानन्द ने पठन पाठन विधि इस कायदे की बनाई कि पढ़ता रहे और विद्वान् न हो ।

स्वामी दयानन्दजी लिखते हैं कि ऋषि प्रणीत ग्रन्थों को इसलिये पढ़ना चाहिये कि वे बड़े विद्वान् सब शास्त्रविन् और धर्मात्मा थे और अनृषि अर्थात् जो अल्प शास्त्र पढ़े हैं और जिनका आत्मा पक्षपात सहित है उनके बनाये हुये ग्रन्थ भी वैसे ही हैं इसके ऊपर पं० ज्वालाप्रसादजी लिखते हैं कि जब ऋषि प्रणीत ग्रन्थ आपको इतने प्रमाणिक हैं तो फिर आपने यह क्यों लिखा कि जो बात ऋषियों की लिखी वेदानुकूल हो वही मानी जावेगी जब ऋषियों ने वेद विरुद्ध लिखा तब उनकी पूर्ण विद्वत्ता और धर्मात्मापन कहां रहा ? पहिले उनको ऋषि बनाना और फिर उनके लेख को वेद विरुद्ध बताना यह स्वामी दयानन्द ने ऋषियों की निन्दा की है जो स्मृतियों की और स्मृतिकारों की निन्दा करता है मनु ने "योवमन्येत" इस श्लोक में उसको वेदनिन्दक नास्तिक बतलाया और द्विजातियों को लिखा कि ऐसे पुरुष का बहिष्कार कर देना चाहिये इसके ऊपर पं० तुलसीरामजी लिखते हैं कि पूर्ण विद्वान् ऋषि थे इसका मतलब यह नहीं है कि वेदकर्ता ईश्वर से अधिक थे इसके ऊपर हम इतना ही लिखेंगे कि वे ईश्वर से अधिक तो नहीं थे किन्तु स्वामी दयानन्द की अपेक्षा अज्ञ अवश्य थे क्योंकि उन ऋषि मुनियों की अशुद्धता या तो स्वामी दयानन्द ही पकड़ेंगे या संस्कृतशून्य अंग्रेजी पढ़े आर्यसमाज के सभ्य जंटलमैन हो उन ऋषियों की गलतियां निकाल सकते हैं जिन ऋषियों ने संसारी सुख पर लात मार कर वन में जा कर गौमाता का पवित्र दूध पीकर अपना समस्त जीवन ईश्वराराधन योग और धार्मिक उपदेशों में ही लगा दिया और जिनको न्याय शास्त्र ने आप्त शब्द से याद कर उनके अक्षरों को प्रमाण माना उन ऋषियों के लेख को वेद विरुद्ध बतलाने का सत्त्व उस स्वामी दयानन्द को कहां तक हो सकता है कि जो अपने सिद्धान्तों को रोज २ बदलता रहा और जिसको किसी सिद्धान्त पर भी विश्वास न हुआ और जिसका जन्म कोट, बूट, हुक्का, भंग, आदि २ गुलछरों में ही गुज़रा हो या आर्यसमाज के उन सभ्यों को कि जिन्होंने जन्म भर होटल में खाया और पल. पल. बी. का पास केवल इसलिये किया कि भारतवर्ष के दो भाइयों को आपस में लड़ाकर हम मालामाल हो जावेंगे । स्वामी दयानन्द और आर्यसमाज के सभ्यों के द्वारा ऋषियों का लेख अशुद्ध होना बेशक यह ऋषियों

की बड़ी भारी हतक (अपमान) करना है और प्रत्यक्ष में भी ऋषियों का अपमान हम आर्यसमाजियों की तरफ से हुआ देखते हैं इस समय हमको आर्यसमाज के किसी भजनोपदेशक के भजन की कड़ी याद आ गई "बाल्मीक भंगी के गुण गाते चतुर सुजान हैं" अब आर्यसमाज बतलावै कि इन भजनों से ऋषियों का अपमान होता है या मान ? आश्चर्य की बात है कि ऋषि तो वेद विरुद्ध लिखें और जो स्वप्न में भी वेद को नहीं जानते वह वेदानुकूल लिखें इसके ऊपर पाठकों को विचार करना चाहिये ।

इसके आगे पं० तुलसीरामजी लिखते हैं कि इस से अपमान नहीं होता बल्कि मान होता है इसकी पुष्टि में पं० तुलसीराम लिखते हैं कि "या वेद बाह्याः स्मृतयो याश्च काश्च कुदृष्टयः" अर्थात् जो स्मृति वेद के विरुद्ध हैं और जो दूषित हैं उनका न मानना मनु ने भी लिखा है इसके ऊपर हमारा प्रथम पेटराज तो यह है कि ऋषियों की बात वेदानुकूल हो तो मानना यदि प्रतिकूल हो तो उसका त्याग करना यह स्वामी दयानन्द ने अपने मन से ही गढ़ लिया या इस में कोई प्रमाण भी है समाज इसको किस प्रकार सत्य माने ? यदि पं० तुलसीराम यह कहें कि हमने "या वेद बाह्याः स्मृतयः" प्रमाण दिया है इसके ऊपर हम यह कहेंगे कि इस वाक्य को या श्लोक को समाज प्रमाण ही नहीं मानती फिर समाज कैसे मानेगी कि वेद विरुद्ध को छोड़ दो और वेदानुकूल को मानो यह वाक्य जरूर लिखा है किन्तु आज तक किसी भी विद्वान् ने यह न दिखलाया कि अमुक स्मृतिकारने अमुक ऋषि ने यह वाक्य वेद विरुद्ध लिखा हमारा तो कहना यह है कि किसी भी ऋषि के लेख में कोई भी अक्षर ऐसा नहीं जो वेद विरुद्ध हो इसके विपरीत आर्यसमाज ने सैकड़ों श्लोक मनु के ही वेद विरुद्ध बना दिये इससे मनु का मान हुआ या अपमान ? और स्वामी दयानन्दजी तो इस लेख से कुछ और ही मतलब लेना चाहते हैं उनका तो अभिप्राय यही है कि जहां पर किसी ऋषि के लेख में अवतार मूर्तिपूजा या मृतक पितरों का श्राद्ध आजावे तो उसको वेद विरुद्ध कह दो चाहे वह वेद में भी हो किन्तु ऋषियों को तो वेद विरुद्ध का कलंक लगा ही दो इस कलंक लगाने को पं० तुलसीराम ऋषियों का मान समझते हैं ।

यदि कोई आर्यसमाजी यह कहे कि तो फिर "या वेद बाह्याः स्मृतयः" यह क्यों लिखा इसका यह तात्पर्य है कि यदि कोई मनुष्य अपने तपोबल से या योग

के द्वारा पारदर्श्या या ऋतम्भरा बुद्धि वाला हो जावे और योग दर्शन के विमूर्ति अध्याय में कही भूत भविष्यत वर्तमान काल को प्रत्यक्षवत् देखने की शक्ति उस में आजावे और वह समाधि अवस्था में विचार करता हुआ किसी ऋषि के किसी वाक्य में कोई भूल देखे तो वह उसके लिये फैसला दे सकता है मामूली मनुष्य नहीं स्वामी दयानन्द ऋषियों की गलती मामूली मनुष्यों द्वारा सिद्ध करते हैं यह प्रत्यक्ष में ऋषियों का अपमान है ।

इसके आगे पं० ज्वालाप्रसाद जी लिखते हैं कि यदि आप को वेदानुकूल ही प्रमाण है तो तुम वेद को छोड़ कर और ग्रन्थों में बृथा भटकते हो आपको तो वही प्रमाण होगा जो वेद में मिले फिर वेद ही से सब काम क्यों नहीं चला लेते ऐसा करने पर आप के पास कुछ नहीं रहता आप न तो वेद से कोई संस्कार आदि का निश्चय कर सकते हैं और न जनेऊ छुटिया रख सकते हैं और न योग और वेद के महत्व को पा सकते हैं इस कारण से आप यह चाल खेलते हैं कि जहां पर हमारे जीमें आवेगा वहां पर वेदानुकूल बना देंगे और जहां पर हमको नहीं मानना होगा वह वेद विरुद्ध बना देंगे । स्वामी जी की इन चालाकियों के पेंच में वही मनुष्य आसकता है जो रजिस्टर में नाम लिखवा कर वेदज्ञ बना है लिखा पढ़ा मनुष्य इन चालाकियों में नहीं फँस सकता हमें कोई आर्यसमाजी यही बतलावै कि वे रोज २ सन्ध्या क्यों करते हैं नित्य प्रति सन्ध्या करना वेद में कहां लिखा है ? कहीं भी नहीं मिलेगा । सन्ध्या हो गई । यदि कोई हम से पूछे कि तुम रोज की रोज क्यों सन्ध्या करते हो ऐसी दशा में हम उत्तर देंगे कि “अहरह सन्ध्या मुपासीत” इसको सुन कर आर्यसमाजी कह देंगे कि हां “अहरह सन्ध्या मुपासीत” यह वेदानुकूल है फिर हम ब्राह्मण की दूसरी श्रुति कहेंगे कि “स्वर्ग कामोयजेत” इसके ऊपर आर्यसमाजी कह देंगे कि यह वेद विरुद्ध है क्योंकि यज्ञ से स्वर्ग नहीं मिलता किन्तु वायु शुद्धि होती है इसी प्रकार जहां पर आर्यसमाज को मानना होगा वहां पर वेदानुकूल और जहां पर न मानना होगा वहां पर वेद विरुद्ध कह कर किनारे होगी । इस भाव को लेकर पं० ज्वालाप्रसाद जी ने यह तिमिरभास्कर लिखा है इसके ऊपर पं० तुलसी-रामजी लिखते हैं कि प्रथम तो हम यह नहीं कहते कि हम मन्त्रों में साक्षात् ही सब विधि दिखला सकते हैं बस बहिस तो यहां पर ही समाप्त हो गई आर्यसमाज अपने माने वेद मन्त्र भाग में विधि नहीं दिखला सकती अब वे ब्राह्मण कि जिनमें शिखा सूत्र की विधि लिखी है वेद के विरुद्ध हो गये क्योंकि वेद में शिखा सूत्र

रखना लिखा नहीं और ब्राह्मणों में लिखा है अतएव वेद विरुद्ध है। नहीं मालूम वर्तमान आर्यसमाजी वेद विरुद्ध होने पर भी हमारे वेद से लिखा सूत्र क्यों रखते हैं ? हम आर्यसमाजियों से प्रार्थना करते हैं कि वे वेद विरोधी हमारे ग्रन्थों को न माना करें और हमारे ग्रन्थों में रखवाई लिखा सूत्र हमें दे दें और फिर उनके जी में आवे जहां जावें सब महाभारत यहां पर ही समाप्त हो जावेगा और यह लड़ाई का घर है कि समाज के जो जी में आया उसको वेदानुकूल कह दिया और जिसको जी में आया वेद विरुद्ध कह दिया।

इसके आगे पं० तुलसीराम लिखते हैं किन्तु हमारा सिद्धान्त तौ जैमिनीय मीमांसा के “विरोधेत्वनपेक्ष्यं स्याद सति ह्यनुमानम् मी० अ० १ पा० ३ सू० ३” के अनुसार यह है कि शब्द प्रमाण के साक्षात् विरुद्ध बातें न मानी जावें परन्तु विरोध भी न हो और साक्षात् विधि वाक्य भी न मिले तो अनुमान करना चाहिए कि यह विधि किसी प्रकार किन्हीं ऋषियों ने वेद में साक्षात् वा ध्वनि आदि से देखा ही होगा। पं० तुलसीरामजी को जब उत्तर न मिला तब यह लिख दिया कि हम तो जैमिनी सूत्र के अनुसार मानते हैं। प्रथम तो आप जैमिनी सूत्र के प्रमाण होने में सबूत दें कि किस वेद मन्त्र में “विरोधेत्वनपेक्ष्यम्” लिखा है यदि नहीं लिखा तब तो यह सूत्र भी वेद विरुद्ध है पं० ज्वालाप्रसाद का कथन तो यह है कि तुम वेद ही वेद मानों जो बात पं० तुलसीराम ने जैमिनी सूत्र से दिखलाई है वह वेद से ही दिखलाओ जब आप जैमिनी सूत्र को प्रमाण ही नहीं मानते फिर आप किस न्याय से जैमिनी सूत्र से अपने मत की पुष्टि करते हो आज आप ने गर्ज अटकने पर जैमिनी सूत्र को प्रमाण में ले लिया कल को आप तौरेत का प्रमाण देंगे यह कायदा अच्छा नहीं आप के ऊपर जो पं० ज्वालाप्रसाद ने प्रश्न किया है उसकी पुष्टि अपने धर्म पुस्तक मन्त्रभाग वेद से ही करो यह बात त्रिकाल में भी आर्य समाज नहीं कर सकता यहां पर तो समाज को प्रलय तक मौन धारण करना पड़ेगा।

पं० तुलसीराम यह लिखते हैं कि जैमिनी सूत्र कहता है कि शब्द प्रमाण के साक्षात् विरुद्ध बातें न मानी जावें इसके ऊपर हम यही कहेंगे कि यह बात कहता कौन है कि तुम शब्द प्रमाण के विरुद्ध मानो। प्रथम तौ यही बतलाओ कि शब्द प्रमाण क्या चीज है यहां पर शब्द प्रमाण से पं० तुलसीराम वेद लेना चाहते हैं यही तो शोक है कि आर्यसमाज पृष्ठ २ में गिरगट कैसा रंग बदलती है। इस लेख

के दो तीन पृष्ठ पूर्व स्वामी दयानन्दजी स्वतः लिख आये हैं कि “आप्तोपदेशः शब्दः” अर्थात् जो ऋषि आप्त हो गये हैं उन का जो उपदेश है वह शब्द प्रमाण है किन्तु अब पं० तुलसीराम इस न्याय सूत्र को उड़ा कर वेद के मन्त्र भाग को ही शब्द प्रमाण मानते हैं यदि हम स्वामी दयानन्द और महर्षि गौतम के लक्षण “आप्तोपदेशः शब्दः” को मानते हैं तब तो ऋषियों के प्रत्येक वाक्य को मानना होगा एक अक्षर पर भी चींचपड़ नहीं करनी होगी क्योंकि यह लोग मामूली नहीं थे आप्त थे ऐसा मानने से आर्यसमाज का मत बिना बुलाए रसातल को पहुँच जाता है और यदि हम यह मान लें कि “आप्तोपदेशः शब्दः” यह लक्षण गौतम ने अपनी भूल से लिख दिया क्योंकि वे वेद शास्त्र नहीं जानते थे और स्वामी दयानन्दजी ने जो “आप्तोपदेशः शब्दः” प्रमाण मान कर अपने सत्यार्थप्रकाश में लिख दिया यह इनकी गलती है क्योंकि यह कुछ लिखे पढ़े नहीं थे संसार में यदि कोई पण्डित हुआ है तो उसका नाम पं० तुलसीराम है जो केवल वेदों को ही शब्द प्रमाण मानता है जब कि पण्डितराज पं० तुलसीराम ही शब्द प्रमाण में वेद लेते हैं तो हम भी वेद ही प्रमाण मानेंगे ऐसी दशा में सन्ध्या अग्निहोत्र बलिवैश्यदेव आदि आदि सब कर्मकाण्ड रसातल को चला जावेगा क्योंकि वेद में इन कामों की विधि (आज्ञा) ही नहीं चलिये सब का सफाया हो गया बैठे बैठे मजे उड़ाइये और यह कहते रहिये कि हम वेद मानते हैं हम वेद मानते हैं हम वेद मानते हैं ।

यदि पं० तुलसीराम यह कहें कि यह कर्मकाण्ड वेद के विरुद्ध तो नहीं पड़ता और हमने सूत्र का यही अर्थ किया है कि शब्द प्रमाण के साक्षात् विरुद्ध बातें न मानी जावें ऐसी दशा में आर्यसमाज को क्रांति की यात्रा करनी होगी और असबद (पत्थर) चूमना होगा क्योंकि शब्द प्रमाण वेद में इसका कहीं विरोध नहीं किया और पं० तुलसीराम यह कहते हैं कि साक्षात् विरुद्ध बातें न मानी जावेंगी वेद जिस का निषेध कर देगा उसीको हम नहीं मानेंगे ।

आगे पं० तुलसीराम लिखते हैं कि विरोध भी न हो और साक्षात् विधि वाक्य भी न मिले तो अनुमान करेंगे इस लेख से मालूम होता है कि पं० तुलसीराम विधि वाक्य को मानते हैं और समस्त झगड़ा यह विधि वाक्य पर ही हो रहा है उसी को अब पण्डित तुलसीराम प्रमाण माने लेते हैं । विधि वाक्य को प्रमाण मानने से दयानन्द कृत समस्त यजुर्वेद भाष्य मिथ्या हो जाता है क्योंकि विधि रूप वेद

ब्राह्मणों ने अश्वमेध, पुरुष मेध, सौत्रामणि, दर्श पूर्णमास, आदि २ यज्ञों की विधि दिखला कर मनुष्य कर्तव्य बतलाया है और स्वामी दयानन्द ने इन विधि वाक्यों को पोष कल्पित मिथ्या समझ कर यजुर्वेद से यज्ञ उड़ा दी यदि पं० तुलसीराम विधि को प्रमाण मानेंगे तो फिर विधि विरुद्ध दयानन्द भाष्य छोड़ना पड़ेगा ।

अलावा इसके बहस तो इस बात पर चली है कि ऋषिवाक्य वेदानुकूल होने पर माना जावेगा दयानन्द के मत में विधिवाक्य वेद नहीं है किन्तु ऋषि वाक्य है उन संदिग्ध ऋषि वाक्यों को जो वेद के अनुकूल होने पर सत्य हो सकते हैं उन को जैमिनी सूत्र के टीका में पं० तुलसीराम स्वतः प्रमाण माने लेते हैं जब पं० तुलसीराम ही स्वामी दयानन्द के सिद्धान्त को पुख्ता नहीं समझते और समस्त विधिवाक्य मानने को तैयार हैं चाहे वे वेद से मिलें या न मिलें ऐसी दशा में जो स्वामी दयानन्द ने यह लिखा था कि जो ऋषियों का वाक्य वेद विरुद्ध हो उसको न मानों यह साफ कट गया और सर्वथा वेद विरुद्ध जो मन्त्र भाग में नहीं कही गई ऐसी विधि को पं० तुलसीराम ने स्वतः प्रमाण माना ऐसे २ मामले देख कर समाजियों के लेख पर हंसी आजाया करती है और मन में यह विचार उठा करता है कि यह क्या बच्चों कैसा खेल करते हैं इनको लेख लिखने के समय आगे पीछे की कुछ खबर ही नहीं रहती ।

इसके आगे पं० तुलसीराम लिखते हैं कि तथापि उद्गाता आदि का विधान नीचे लिखे मन्त्र में मूल रूप पाया जाता है “ऋचां त्वः पोषमास्ते पुपुष्वान् गायत्रं त्वो गायति शकरीषु । ब्रह्मा त्वो वदति जातविद्यां यज्ञस्य मात्रां विमिमीत उत्वः ॥ ऋ० मं० १० अष्टक ८ अध्याय २ मं० अन्तिम” अन्वित व्याख्यानम् [त्वशब्दः सर्वनामसुपठित एक शब्द पर्यायः] एको होता (पुपुष्वान् ऋचां पोषमास्ते) स्वकर्माधि कृतस्मन् यत्र तत्र पठिता ऋचो यथा विनियोग विन्यासेन पोषयति सार्थकाः करोति (त्वः शकरीषु गायत्रं गायति) एक उद्गाता शक्युपलक्षितासुच्छन्दो विशेष युक्तास्त्रक्षु गायत्रं गायत्रादिनामकं साम गायति (त्वो ब्रह्मा जातविद्यां वदति) एको ब्रह्मा अपराधे जाते तत्प्रतीकाररूपां विद्यां वदति (त्वो यज्ञस्य मात्रां विमिमीत) एकोऽध्वर्युयज्ञस्य मात्रामियत्ता विमिमीते विशिष्टतया परिच्छिनति ॥ अर्थात् एक होता ऋचाओं को विनियोगानुसार संघटित करता है एक उद्गाता शक्यादिच्छन्दोयुक्त गायत्र गान करता है एक ब्रह्मा यज्ञ में कुछ अपराध वा भूल

चूक होने पर उसका प्रतीकार करता है और एक अध्वर्यु यज्ञ के परिणाम वा इयता को निर्धारित करता है ।

इसके ऊपर यदि कोई विचार करे तो मालूम हो जावेगा कि इस मन्त्र में होता शब्द का कहीं पता भी नहीं । जिस प्रकार होता का पता नहीं इसी प्रकार उद्गाता का भी पता नहीं और न इसमें अध्वर्यु का पता है केवल ब्रह्मा शब्द के होने से वेद के असली अर्थ पर पानी फेर के मन माना अर्थ गढ़ा गया है विचारशील मनुष्य सायण भाष्य उठा कर देख सकते हैं इस मन्त्र का यह अर्थ ही नहीं अपने प्रयोजन की सिद्धि के लिये वेद का अर्थ बदल देना भी समाजियों के लिये कुछ पाप नहीं । यदि हम अर्थ के ऊपर वाद करें तो लेख बहुत बढ़ जावेगा अर्थ तो सायण आदि भाष्य में देख सकते हैं वा दीतोषन्याय से हम इसी अर्थ को सही माने लेते हैं यदि मन्त्र में होता उद्गाता अध्वर्यु आगया तो इससे क्या हुआ हमें कोई समाजी वेद से यही बतलावे कि इन चारों का काम क्या है मूल चूक का देखना काम ब्रह्मा का कहा है मूल चूक सभी काम में होती है न तो यही मालूम होता है कि यह चारों कपड़े धोवें या घास खोदें या यज्ञ करें या तप करें सिर्फ नाम भर आए हैं वे भी तुलसीराम के अनर्थ करने पर मूल में वे भी नहीं होता उद्गाता अध्वर्यु ब्रह्मा चारों का काम मूल में नहीं पं० तुलसीराम काम भी अपनी तरफ से मिलाये इन्होंने इनके द्वारा यज्ञ होना लिखा कोई समाजी खटिया बुनना लिखेंगे । अब यदि कोई इन से यज्ञ करवावेगा तो फिर हम कह देंगे कि आर्यसमाज के मत में यज्ञ होना वेद में कहीं नहीं लिखा अतएव यह यज्ञ भी नहीं करवा सकेंगे और इन चार के नाम आने से यज्ञ की सिद्धि मानेंगे तो इस कायदे से वेद में से मक्का और मदीना कूद पड़ेंगे । पं० तुलसीराम को यह बतलाना चाहिये था कि वेद के अमुक मन्त्र में यज्ञ करनी लिखी है और उसकी विधि विस्तार पूर्वक मय देश काल के अमुक मन्त्र में लिखी है और यज्ञ में इतने काम होते हैं और उस यज्ञ का फल यह है यह विषय मंत्र भाग में है नहीं इसके लिये वे ही ब्राह्मण जो दयानन्द के मत में ऋषि वाक्य हैं और जिन के प्रमाण होने में दयानन्द को शक है या जिन को स्वामी दयानन्द प्रमाण ही नहीं मानते वे यहां पर स्वतः प्रमाण मानने होंगे पं० तुलसीराम के लेख ने कुछ भी पुष्टि नहीं की केवल भास्करप्रकाश के पन्ने ही काले किये हैं ।

इसके आगे पं० ज्वालाप्रसाद जी लिखते हैं कि स्वामी दयानन्द ने सन्यासी

होकर चोगा बूट हुका कुर्सी मेज़ आदि का इस्तेमाल किया और रुपये संचय किये आप यह भी वेद से निकालोगे बतलाइये यह कौन वेद में लिखा है इसके ऊपर पं० तुलसीराम जी मौन ही रह गये ।

इसके आगे पं० ज्वालाप्रसाद जी लिखते हैं कि स्वामी दयानन्द जब वेद के अर्थ लिखने बैठते हैं तब ब्राह्मण, निघण्टु, महाभाष्य, उपनिषद्, इन से अर्थ सिद्ध करते हैं और कहते हैं कि अर्थ ठीक हो गया क्योंकि इस में ब्राह्मणादि प्रमाण मिलते हैं फिर आज उन्हीं ब्राह्मणादि ग्रन्थों को अप्रमाण बतलाते हैं इसके ऊपर पं० तुलसीराम लिखते हैं कि यह बात नहीं है कि निरुक्तादि की सहायता बिना वेदार्थ हो ही न सके जब तक निरुक्तादि ग्रन्थ नहीं बने थे तब भी वेद और उनका अर्थ था ही किन्तु निरुक्तादि के प्रमाण इस लिये दिये जाते हैं कि जो वेद का अर्थ हम करते हैं उस प्रकार अन्य भी अमुक २ ऋषि लिखते हैं जिस से हमारे समझे अर्थ की पुष्टि होती जावे । निरुक्तादि की सहायता के बिना यदि वेद का अर्थ होगा तो फिर वैसा ही होगा जैसा कि स्वामी दयानन्दजी ने किया है कहीं पर तो फौजी कवायद और कहीं पर ताजीरात हिन्द के अनुकूल मजिस्ट्रेट सजा दे, कहीं लुहार बढ़ई का कानून, और कहीं पर रेल तार बनाने की विधि, कर्म काण्ड, उपासना काण्ड, और ज्ञान काण्डात्मक अर्थ तो तब ही होगा जब कि निरुक्तादिक को देख कर उसके अनुकूल करोगे ।

पं० तुलसीराम लिखते हैं कि जब निरुक्तादि ग्रन्थ नहीं बने थे तब भी तो वेद और उनका अर्थ था ही पं० तुलसीरामजी सनातन धर्म का खण्डन करते २ दयानन्द के लेख का भी घोर खण्डन कर जाते हैं । यह सृष्टि के आरम्भ में पंडितों के द्वारा वेद के अर्थ का होना मानते हैं किन्तु स्वामी दयानन्दजी सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ २०४ के “ऋषयो मंत्र दृष्टयः मंत्रान्सम्प्राददुः” निरुक्त के नीचे इबारत देते हैं जिस २ मंत्रार्थ का दर्शन जिस २ ऋषि को हुआ और प्रथम ही जिसके पहिले उस मंत्र का अर्थ किसी ने प्रकाशित नहीं किया था किया और दूसरों को पढ़ाया भी इस लिये अद्यावधि उस २ मंत्र के साथ ऋषि का नाम स्मरणार्थ लिखा आता है अब यहां पर इतना विचार करना है कि पं० तुलसीराम तो मामूली पंडितों से वेद के अर्थ का होना मानते हैं और स्वामी दयानन्द समाधिस्थ ऋषियों के ज्ञान के द्वारा वेद के अर्थ का होना मानते हैं जिन याज्ञवल्क्यादि ऋषियों के द्वारा वेद अर्थ होना मानते हैं उन्हीं

ऋषियों के रचे हुए ग्रन्थ निरुक्तादि हैं। सृष्टि के आरम्भ में भी समाधिस्थ ज्ञान वाले ऋषियों को छोड़ कर शेष को वेद के अर्थ का ज्ञान निरुक्तादि द्वारा ही होता था। पं० तुलसीराम यह कहते हैं कि अर्थ तो हम आप ही कर लेते हैं और निरुक्त निघण्टु तो इस लिये देते हैं कि अमुक ने भी यही अर्थ किया भाव यह है कि यहां पर स्वामी दयानन्द के लेख को सत्य मानें या पं० तुलसीराम के जो ब्राह्मण, निरुक्त निघण्टु को एक दम ही उड़ाते हैं। हम थोड़ी देर के लिये पं० तुलसीराम के अर्थ को सत्य मानते हैं जब कि ब्राह्मणादि ग्रन्थ आर्यसमाज को बिल्कुल प्रमाण नहीं तो फिर "शन्नो मित्रः" इस ब्राह्मण से स्वामी दयानन्द ने मंगल चरण क्यों किया तथा जगह २ के ऊपर जहां पर वेद का प्रमाण नहीं मिलता वहां पर स्वामी दयानन्द ने ब्राह्मण उपनिषद् निरुक्त निघण्टु का प्रमाण क्यों दिया? जैसे प्रथम समुल्लास में "अद्यतेऽस्ति च भूतानि तस्मादन्नं तदुच्यते" तैत्तिरीयोपनिषद्। यदि आप ब्राह्मणादि ग्रन्थों को प्रमाण नहीं मानते तो कृपा कर सत्यार्थप्रकाश से इन ग्रन्थों के प्रमाणों को निकाल दीजिये कि देखिये सत्यार्थप्रकाश ५ पैसे का रहता है या ६ पैसे का।

इसके आगे स्वामी दयानन्दजी लिखते हैं कि व्याकरण में कातन्त्र, सारस्वत, चन्द्रिका, मुग्धबोध, कौमुदी, शेखर, मनोरमादि। कोश में अमरकोशादि। छन्दो-ग्रन्थ में वृत्तरत्नाकरादि। शिक्षा में अथ शिक्षा प्रवक्ष्यामि पाणिनीयं मतं यथा। इत्यादि। ज्योतिष में शीघ्रबोध मुहूर्त्तचिन्तामणि आदि। काव्य में नायका भेद, कुवलयानन्द, रघुवंश, माघ, किरातार्जुनीयादि। मीमांसा में धर्मसिन्धु, व्रतार्कादि। वैशेषिक में तर्कसंग्रहादि। न्याय में जागदीशी आदि। योग में हठप्रदीपिकादि। सांख्य में सांख्य तत्त्व कौमुद्यादि। वेदान्त में योगवासिष्ठ पञ्चदश्यादि। वैद्यक में शार्ङ्गधरादि। स्मृतियों में मनुस्मृति के प्रक्षिप्त श्लोक और अन्य सब स्मृति सब तंत्र ग्रन्थ सब पुराण सब उपपुराण तुलसीदास कृत भाषारामायण रुक्मिणी मङ्गला-दि और सर्व भाषा ग्रन्थ ये सब कपोलकल्पित जाल ग्रन्थ हैं।

इसके ऊपर पं० ज्वालाप्रसाद जी लिखते हैं कि यहां तो कौमुदी की यह निन्दा और जब आप मरे तो निजबस्ते में व्याकरण सर्वस्व और सिद्धान्त कौमुदी यह दो ग्रन्थ निकले इन व्याकरणों के ग्रन्थों में क्या मिथ्यापना है क्या इन ग्रन्थों ने अष्टाध्यायी का खंडन किया है कौमुदी आदिकों में तो पाणिनिकृत अष्टाध्यायी के सूत्रों की वृत्ति की है यदि वृत्ति करने ही से वे जाल ग्रन्थ आप ने बताये तो तुम्हारा

रचित वेदाङ्गप्रकाश जो अष्टाध्यायी की भाषा टीका कौमुदी की रीति पर है वोह भी मिथ्या ही होना चाहिये कोश में यदि निघण्टु जिस में वैदिक शब्द हैं पढ़ें और अमर-कोशादि न पढ़ें तो लौकिक शब्दों के अर्थ आप के सत्यार्थप्रकाश या वेदभाष्यभूमिका से करें काव्यों से आप की शत्रुता क्यों है क्या यह भी आजीविका को ही रचना किये हैं ? यदि यह काव्य जिन से व्युत्पत्ति होती है न पढ़ें तो क्या आप का बनाया संस्कृत वाक्यप्रबोध जिस में सैकड़ों अशुद्धि भरी पड़ी हैं उसे पढ़ें जो और भी बुद्धि भ्रष्ट होजाय, तर्कसंग्रह में कौन सी बात वैशेषिक के विरुद्ध है, और आपने भी तो ५४ पृष्ठ से ६६ पृष्ठ तक तर्कसंग्रह ही लिखी है, यह आप की बड़ी भारी चालाकी है, कि कोई हमारा चेला सत्यार्थप्रकाश में से निकाल कर अलग छपा लेगा, तो तर्क संग्रह के स्थान में यही काम आवैगा और हमारा नाम होगा, यह लिखा तो होता कि तर्कसंग्रह ने कौन सी आप की रोजी छीन ली और उसमें कौनसी बात विरुद्ध है पर हठ को क्या करिये और जब मनु में प्रक्षिप्त श्लोक हैं तो यह भी विषमिश्रित अन्न की नाई आपने त्यागन क्यों नहीं किया, यदि इसे भी छोड़ते तो काम कैसे चलता पुराणों की सिद्धि आगे चल कर करेंगे, तुलसीदास जी ने क्या बात विरुद्धता की लिखी है ? और जब सब भाषा के ग्रन्थ कपोलकल्पित हैं तो आप का सत्यार्थप्रकाश वेदभाष्य तथा भूमिका आय्योंद्देश्यरत्नमाला आदि जो कुछ आप की भाषा की गढ़त है यह भी कपोलकल्पित और त्याज्य हैं, भाषा की अति व्यापित होने से, जो आप अपनी बनाई भाषा मानें तो औरों के बनाये क्यों प्रमाण नहीं ? बीमारी होने से आप तो अंग्रेजी दवाई उड़ाना और शार्ङ्गधर को जाल ग्रन्थ बताना, धन्य है यदि जन्मपत्र मुहूर्त मिथ्या हैं तो संस्कारविधि में यज्ञोपवीत विवाह में पुष्य नक्षत्र शुक्लपक्ष उत्तरायण आदि यह मुहूर्त विधि क्यों लिखी है । अब सुश्रुत का भी प्रमाण सुनिये—जिसके प्रमाण आप सत्यार्थप्रकाश में बहुधा लिखते हैं । “उपनयनीयस्तु ब्राह्मणः प्रशस्तेषु तिथि करण मुहूर्त नक्षत्रेषु प्रशस्तायां दिशि शुचौ समेदेशे चतुर्हस्तं चतुरस्रं स्थंडिलमुपलिप्य गोमयेन दभैः संस्तीर्य पुष्पैर्लाजभक्तैरत्नैश्च देवताः पूजयित्वा विप्रान् भिषजश्चेत्यादि ॥ सुश्रुत सूत्रस्थान अ० २” (अर्थ) दीक्षा योग्य तो ब्राह्मण है अच्छी तिथि करण मुहूर्त अच्छे (पुष्य हस्त श्रवण अश्लेषा) नक्षत्र में उत्तर वा पूर्व श्रेष्ठ दिशा में पवित्र समान देश में चौकोन चार विलायंद अथवा चार हाथ की वेदी रचे, उसको गोबर से लीप उस पर कुशा बिछावै पुष्पखीलें रत्नादि से देवताओं का पूजन कर ब्राह्मण वैद्यों का

पूजन करै (जब शिष्य हो) पुनः शकुन "ततोदूतनिमित्तशकुनमंगलानुलोभ्येनातुरगृहम-
भिराम्योपवि श्यतुरम भिपश्येत् स्पृशेत् पृच्छेच्च०। सु० सूत्र० अ० १०" (अर्थ)
जब दूत के साथ वैद्य जाय तौ निमित्त सुन्दरगन्धादि शकुन-पक्षियों की चेष्टादि
मंगल स्वस्तिक पूर्ण घटादि इनको विचारै फिर रोगी के पास जाय देखै छुवै और
पूछै। इन वाक्यों से स्पष्ट है कि, सुश्रुत आदि महर्षि भी ज्योतिष शकुन ग्रह नक्ष-
त्रादि अनुसार शुभाशुभ फल मानते थे, जब आप ने इन ग्रन्थों को प्रमाण माना है
तौ मुहूर्तादि स्वयं सिद्ध ही हैं तिस से ग्रहादि फल का न मानना आप की बड़ी
भूल है वेद से आगे लिखेंगे।

इसके ऊपर पं० तुलसीरामजी कुछ भी नहीं लिख सके। जब कुछ भी उत्तर
न बना तब हार कर पुराणों में दोष लगाने के लिये दौड़े प्रथम तौ यह कि स्वामी
दयानन्द ने जिन ग्रन्थों को जाल ग्रन्थ बताया उनके जाल होने में स्वामी दयानन्द
ने एक भी सबूत नहीं दिया जब कि पं० ज्वालाप्रसादजी ने सबूत मांगा तब फिर
पं० तुलसीराम लाचार हो कर पुराणों पर भाग गये। प्रकरण को छोड़ कर प्रकरणा-
न्तर में जाना वादी की पूरी हार होना है क्या कोई आर्यसमाजी इस बात का सबूत
देगा कि यह जाल ग्रन्थ हैं और पं० तुलसीराम ने इन जाल ग्रन्थों के बारे में जो
कुछ भी लिखा है वह यह है व्याकरणादि में भी विषयों के ऋषि प्रणीत ग्रन्थों का
पढ़ना इस लिये अच्छा है कि उस में अपने मुख्य विषय के वर्णन के साथ साथ
उदाहरणादि के मिष से उस समय के धर्म आचार व्यवहार आदि की भी चर्चा कुछ
न कुछ आती ही है जिस से विद्यार्थी पर कुछ न कुछ प्रभाव ऋषियों के चाल
चलन का पड़ता ही है।

पं० तुलसीरामजी की समझ में पहिले कोई और धर्म था और अब कोई
और धर्म है और पं० तुलसीरामजी का दो धर्म बतलाना मनुष्यों को भ्रम में डालना
है और फिर ऋषियों के ग्रन्थों को पढ़ा कर क्या करोगे तुम तो उन प्राचीन ऋषियों
के कथन को भी नहीं मानते। व्याकरण के आचार्य महाभाष्यकार पतंजलि वेद की
११३१ शाखाओं को प्रमाण मानते हैं और स्वामी दयानन्दजी ४ चार शाखाओं को।
११३१ शाखाओं का महाभाष्य यह है—

चत्वारो वेदाः साङ्गाः संहस्या बहुधाभिन्ना एक शतमध्वर्यु

शाखा सहस्रवर्त्मा सामवेद एकविंशति धावाहूर्च नवधाऽथर्वणो वेदोवाक वाक्यमितिहास पुराण मेते शब्द विषयाः ।

अर्थ—चार वेद उनके अंग उनके रहस्य वह बहुत प्रकार के हुए । एक सौ एक शाखा यजुर्वेद की एक हजार शाखा वाला सामवेद २१ शाखा वाला ऋग्वेद नव शाखा में विभक्त अथर्व वेद वाको वाक्य इतिहास पुराण ये शब्द के विषय हैं ।

अब आर्यसमाज विचारै कि व्याकरण के पुराने आचार्य सनातन धर्म की पुष्टि करते हैं या स्वामी दयानन्द की और महर्षि पाणिनिजी लिखते हैं कि—

जीविकार्थे चापराये ५ । ३ । ९९

जीविकार्थं यद विक्रीयमाणं तस्मिन् वाच्ये कनोलुपस्यात् ।

जो प्रतिकृति (मूर्ति) जीविका के लिये हो किन्तु उनको बेचकर जीविका न की जावे वहां पर कन्प्रत्यय का लुप् हो । उदाहरण “शिवस्य प्रतिकृतिः शिवः” । अर्थात् जीविका के लिये अविक्रीयमाण जो शिव की मूर्ति उसको शिवः कहते हैं यहां पर तद्धित कन्प्रत्यय होकर प्रत्यय का लुप् होता है ।

महाभाष्ये पतञ्जलिः—यास्त्वेताः सम्प्रति पूजार्थास्तासु भविष्यति ।

अर्थ—जो प्रतिमा जीविकार्थ हों परन्तु वे बेची न जाती हों उस अर्थ में कन् प्रत्यय का लुप् होगा ।

पाठक वर्ग ! देख सकते हैं कि जिसको पं० तुलसीराम नवीन धर्म बतलाते हैं उसी धर्म के एक सिद्धान्त मूर्ति पूजा की पुष्टि व्याकरण के आचार्य महर्षि पाणिनि तथा पतञ्जलि दोनों ही करते हैं और दोनों ही ऋषियों का कहा हुआ मूर्ति पूजन आर्यसमाज गण्य और पोष कल्पित मानती है फिर पं० तुलसीराम क्या सबूत देते हैं कि ऋषियों के ग्रन्थों में यह उत्तमता है ।

इसके आगे पं० तुलसीराम जी लिखते हैं कि इसी प्रकार कौमुदी आदि के पढ़ने से उस समय के सिद्धान्त विचार व्यवहारादि का भी विद्यार्थी पर बुरा प्रभाव न पड़े इस लिये स्वामीजी ने ऋषि प्रणोत ग्रन्थों के प्रचारार्थ लिखा है आधुनिक व्याकरण काव्यादि में श्रीकृष्णादि पर मिथ्यारोपित दूषणों का वर्णन है इस लिये

उनसे विद्यार्थी पर बुरा प्रभाव पड़ेगा अतः त्याज्य लिखा है। संस्कृतवाक्यप्रबोध में छापे आदि की अशुद्धि हों वे पढ़ाने वाले शुद्ध कर के पढ़ा लेंगे परन्तु कोई ऋषि सिद्धान्त विरुद्ध बात तो नहीं जिस से विद्यार्थी का आचरण बिगड़े।

कौमुदी में ऐसी कौन सी बात लिखी है कि जिस का प्रभाव विद्यार्थी पर बुरा पड़ेगा जिन मूर्तिपूजा और मृतक पितरों का श्राद्ध आदि को आर्यसमाज बुरा प्रभाव समझती है वे तो अष्टाध्यायी और महाभाष्य के मूल में लिखे हैं पं० ज्वाला-प्रसादजी ने लिखा था कि यदि अष्टाध्यायी के सूत्रों का अर्थ (वृत्ति) करने से कौमुदी बुरी है तो इसी हिसाब से दयानन्द के वेदाङ्गप्रकाश भी बुरे हैं इसका उत्तर पं० तुलसीराम न दे सके और न आगे को कोई समाजी दे सकता है।

पं० ज्वालाप्रसादजी ने यह भी लिखा कि जिस कौमुदी की स्वामी दयानन्द बुराई करते हैं उस कौमुदी को स्वामी दयानन्द ने अपने पास रक्खा और मरने पर भी उनके पास मिली जब वह बुरी थी तो उसको क्यों पढ़ते थे? स्वामी दयानन्द का तो यह स्वभाव था कि जिस पतली में खाना उसी में छेद करना। इसके ऊपर पं० तुलसीराम की लेखनी न उठ सकी। और पं० तुलसीराम जो यह लिखते हैं कि व्याकरण काव्यादि में श्रीकृष्णादि पर मिथ्या दोष लगाये हैं इसके ऊपर हम कह सकते हैं कि जिस प्रकार पीलिया रोग वाले को सब जगह पीला ही पीला दीखता है उसी प्रकार विधवा विवाह और नियोग आंखों में भर जाने के कारण समाज को समस्त ग्रन्थों में बुरा ही बुरा दीखता है किन्तु जबानी कहने से कुछ नहीं होता उसकी पुष्टि के लिये कोई सबूत भी चाहिये पं० तुलसीराम ने एक भी सबूत नहीं दिया कि व्याकरण में अमुक जगह और अमुक काव्य में श्रीकृष्ण या रामचन्द्रजी पर यह कलंक लगाया है और न कोई समाजी कलंक लगाने का सबूत दे सकता है ग्रन्थों को तो पढ़ते नहीं इनको बिना पढ़े दूर से ही कलंक दीखते हैं। हमारा दावा है कि दो लाख आर्यसमाजी मिल कर अपने सब काम छोड़ कर दश बीस वर्ष ग्रन्थों में खोज करें तब भी व्याकरण काव्यादि में श्रीकृष्ण आदि पर कलंक न मिलेगा उन में कलंक न रहने पर भी बिना सबूत कलंक का दोष लगाना साबित कर रहा है कि पं० तुलसीराम तिमिरभास्कर का उत्तर नहीं दे सकते टालना चाहते हैं।

और पं० तुलसीराम जी जो यह लिखते हैं कि संस्कृतवाक्यप्रबोध में छापे की अशुद्धियां हैं इस पर हँसी आ जाती है। सत्यार्थप्रकाश प्रत्येक आवृत्ति में अपना

शरीर बदल लेता है और जितना पाठ सत्यार्थप्रकाश से निकाला जाता है वह सब छापे की अशुद्धि बतला दिया जाता है तो क्या समस्त ही सत्यार्थप्रकाश कम्पाजीटरों ने लिखा है ? आर्यसमाज प्रेस की अशुद्धि बतलाकर स्वामी दयानन्द की इज्जत बचाना चाहनी है किन्तु स्वामी दयानन्द की इज्जत न बच कर साथ ही साथ और २ आर्यसमाजियों के न्याय का भी परिचय मिल जाता है ताड़ने वाले ताड़ जाते हैं कि खास स्वामी दयानन्द की अशुद्धि को आर्यसमाज कम्पाजीटरों के मत्थे मढ़ती है । आर्यसमाज के इस असत्य लेख से आर्यसमाज की सभ्यता का परिचय मिल जाता है कि यह कितनी धार्मिक है । दयानन्द की इज्जत बचाने के लिये झूठ बोलना झूठ लिखना आर्यसमाजी सभ्यों की दृष्टि में धर्म ही है ।

और संस्कृतवाक्यप्रबोध में ऐसी अशुद्धियां हैं कि कर्ता में तो प्रत्यय गण की तो क्रिया किन्तु कर्ता में तृतिया विभक्ति यह गलती कम्पाजीटरों से हरगिज नहीं हो सकती क्योंकि कम्पाजीटर संस्कृत के हिसाब से गलती नहीं करते । गलती भी कैसी कि जिस में अक्षर और संस्कार (विभक्ति) न बिगड़ें और गलती हो ही जाय । ऐसी २ गलतियां साबित कर रही हैं कि यह अशुद्धियां कम्पाजीटरों से नहीं हुई किन्तु लेखक महाशय स्वामी दयानन्द की लेखनी की हैं ।

समाज ने स्वामी दयानन्दजी की इतनी प्रशंसा की कि उनको महर्षि तक प्रसिद्ध कर दिया और व्याख्यान दे दे कर पब्लिक को समझा दिया कि वह भारत वर्ष में एक अद्वितीय अनन्य विद्वान था यदि कोई संस्कृत वाला आज यह कहे कि स्वामी दयानन्द संस्कृत के भारी विद्वान् नहीं थे यह सुन कर अंग्रेजी वाले या संस्कृत रहित साधारण हिन्दी वाले समझ लेते हैं कि यह पुरुष आर्यसमाज से द्वेष रखता है और स्वामी दयानन्द की निन्दा करता है किन्तु संस्कृतवाक्यप्रबोध देखने वाले यह अच्छी प्रकार समझ लेते हैं कि स्वामी दयानन्द को लघुकौमुदी पढ़े हुए विद्यार्थी के समान भी बोध नहीं था । जिसने एक बार संस्कृतवाक्यप्रबोध देख लिया फिर उसके आगे स्वामी दयानन्द की कितनी भी प्रशंसा की जावे किन्तु उसका चित्त स्वीकार ही नहीं करता बल्कि प्रशंसा सुन कर क्रोध आता है कि जिस को मामूली संस्कृत लिखना पढ़ना नहीं आता यह उसकी नाहक में प्रशंसा करता है स्वामी दयानन्द ने संस्कृतवाक्यप्रबोध में जो संस्कृत लिखा है लघुकौमुदी पढ़े बच्चे उससे अच्छी संस्कृत बनाते हैं पं० तुलसीराम इस सब को प्रेस की अशुद्धि बतलाते

हैं आर्यसमाज में इसी का नाम न्याय (इन्साफ) है ।

और वेदों के सिद्धान्तों के विरुद्ध उसमें बीसियों लेख हैं वेदों में मूर्तिपूजा, ईश्वरावतार, मृतक पितरों का श्राद्ध, अश्वमेधादि यज्ञ विस्तार रूप से लिखे हैं जिन का खण्डन कोई मनुष्य क्या ब्रह्मा भी नहीं कर सकता और संस्कृतवाक्यप्रबोध में स्वामी दयानन्द ने इनके खण्डन का इशारा किया नहीं मालूम पं० तुलसीराम इस बात को क्यों छिपाते हैं ।

इसके आगे पं० तुलसीराम लिखते हैं कि तर्कसंग्रह में वैशेषिक से क्या विरुद्ध है यह तो आपको वैशेषिक पढ़ा होता तो ज्ञात होता । वैशेषिक में “द्रव्यगुण कर्मसामान्य विशेष समवायानां पदार्थानामित्यादि” छः पदार्थ हैं । तर्कसंग्रह में इसके विरुद्ध “द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमवायाऽभावाः सप्तपदार्थाः” इत्यादि में सात पदार्थ हैं । पं० तुलसीराम तर्कसंग्रह को यह दोष देते हैं कि उस में सात पदार्थ हैं इस लिये वह अशुद्ध है किन्तु महर्षि गौतम ने न्याय सूत्र में १६ पदार्थ माने हैं इस लिये न्याय दर्शन पं० तुलसीराम की दृष्टि में बिल्कुल ही अमान्य होना चाहिये किन्तु १६ पदार्थ वादी न्याय दर्शन पर पं० तुलसीराम ने टीका किया है उसको दोषरहित माना है बजाय छः के जिस में सोलह पदार्थ हों उसको तो ठीक कहते हैं और बजाय छः के जिस में सात हों उसको अशुद्ध कहते हैं इस पक्षपात का कहीं ठिकाना है । वैशेषिक में ६ और तर्कसंग्रह में ७ और न्याय दर्शन में १६ पदार्थों की सङ्गति तो ठीक मिला दी है जब सङ्गति मिल गई फिर दोष कैसा ? तर्क संग्रह तो आज तक भी गवर्नमेंट ने संस्कृत परीक्षा में ले रक्खा है स्वामी दयानन्द ने पृ० ५४ से ६६ तक सत्यार्थप्रकाश में तर्कसंग्रह ही जब वह शुद्ध था अब चार पृष्ठ बाद अशुद्ध होगया क्या इन चालाकियों से समाज की विजय होगी ? पं० तुलसीरामजी स्वामी दयानन्द के झूठे लेख को सत्य करने के लिये विचार का गला घांटते जा रहे हैं पं० तुलसीराम के लिये तो यह काररवाई निःसन्देह अयोग्य है ।

इसके आगे पं० तुलसीराम लिखते हैं कि मनु में प्रक्षिप्त है परन्तु मनुस्मृति ऋषि प्रणीत तो है और बहुत न्यून जो कुछ मिलावट हुई है उसे वेद का सिद्धान्त जानने वाले सहज में जान सकते हैं । पं० तुलसीरामजी ऋषियों की भी खबर लेते हैं आप लिखते हैं कि मनु में भी लोगों ने मिलावट मिला दी । अभी क्या हुआ अभी तो वह दिन आने वाले हैं जब कि समाज को वेद में भी मिलावट देख पड़ेगी । आर्य

समाज ने श्राद्ध के श्लोक मनुस्मृति में प्रक्षिप्त माने हैं समाज ने यह समझा है कि श्राद्ध प्रकरण माल चबाने के लिये पोप लोगों ने मनु में मिला दिया है। जिस श्राद्ध प्रकरण को समाज ने प्रक्षिप्त माना उसी श्राद्ध प्रकरण को वेद के ५०० मंत्र कह रहे हैं ५०० मंत्रों में से एक मंत्र मैं लिखता हूँ उसको आप देखना। श्राद्ध करने वाला प्रथम अग्नि से प्रार्थना करता है कि—

ये निखाता ये परोप्ता ये दग्धाये चोद्धिताः ।
सर्वास्ता नग्न आवह वितृन्हविषे अत्तवे ॥

अ० का० १८ मं० २ मंत्र ३४

हे अग्ने जो पितर गाड़े गये जो पड़े रह गये और जो अग्नि में जला दिये गये जो उद्धित फेंके गये उन सबको हवि भक्षण के लिये बुला ला ।

कहिये इस मन्त्र में कहे पितर जीवित हैं या मृतक । यहां पर जरा आप ही विचार लें कि वह जीवित पितर कौन हैं जो गाड़े गये हैं और जो पड़े रह गये हैं । क्या किसी देश या जाति में पितर जीवित ही गाड़ दिये जाते हैं आज तक तो यह रिवाज कहीं पर है नहीं शायद अब नये सभ्य इसको करते हों द्वितीय क्या जीवित पितर पड़े रह गये क्या जीवित भी पड़े रह जाते हैं पितर हैं कि भूसा और जरा उन पितरों को तो बतलावो वह कौन हैं जो जीवित ही जला दिये गये हों मेरी समझ में ऐसा श्राद्ध तो किसी देश और किसी जमाने में न हुआ होगा कि जिस में जीवित ही पितर जला दिये जायें यही तो नये वेदपाठियों की पालसी है कि श्राद्ध बतलाकर पितरों की हत्या करें खैर—

इतनी बात अच्छी है कि राज्य दयालु गवर्नमेंट का है कि जिसके राज्य में कोई किसी को सता नहीं सकता नहीं तो अब तक क्या था श्राद्ध के लिये सब पितर अग्नि में जला दिए जाते फिर वह पितर कौन हैं जो फेंक दिए गये क्या जीवित पितरों को बाहर भी फेंक दिया जाया करता है ? यदि यह वैदिक जीवित पितरों का श्राद्ध जारी होगया तो बड़ा धर्म बढ़ेगा और जब मरे का श्राद्ध मानते हैं तब डीक हो जाता है क्योंकि या तो पितर पड़े ही रह गये होंगे और या चिता में जलये गये होंगे या फिर द्रव्य की कमी से फेंक ही दिये गये होंगे । इस मन्त्र के अर्थ को जीवित पितरों में कैसे घटाओगे (सङ्गति विटलाओगे) जरा इस का भी

तो कुछ उत्तर मिले, बटलोही में एक ही चावल टटोला जाया करता है बस बानगी तो जीवित पितरों के श्राद्ध की आगई क्या अब भी जीवित पितरों का ही श्राद्ध माना जावेगा । इस मन्त्र में कहे मृतक पितरों के श्राद्ध को न मानना वेद से साफ २ इन्कार करना है अब यह अंधेर बहुत दिन चल नहीं सकता या तो आर्यसमाज को मृतक श्राद्ध ही मानना होगा और नहीं तो वेद से ही इन्कार करना होगा ।

इसके आगे पं० तुलसीरामजी लिखते हैं कि वह पुराणों के समान जान बूझ कर ग्रन्थ का ग्रन्थ ही तो अनार्ष नहीं । भाषा ग्रन्थ मात्र को स्वामीजी ने त्याज्य नहीं लिखा, सत्यार्थ प्र० खोल कर देखिये पृ० ७१ पं० २७ में यह लिखा है कि "रुक्मिणी मङ्गलादि और सब भाषाग्रन्थ" इस लिखने से स्पष्ट विदित होता है कि रुक्मिणी मङ्गल के सदृश श्रीकृष्ण महाशय के शुद्ध चरित्रों को अश्लील अयुक्त रीति पर वर्णन करने वाले ही भाषाग्रन्थ त्याज्य हैं न कि सत्यार्थप्रकाशादि उत्तम ग्रन्थ रुक्मिणी मङ्गल आदि सब भाषा ग्रन्थ का मतलब रुक्मिणी मङ्गल या उसके सदृश समझना यह पं० तुलसीराम की खुल्लमखुल्ला हठधर्मी है सब का मतलब तो यही होता है कि जितने भाषा ग्रन्थ हैं नहीं मालूम सब का अर्थ दो एक या रुक्मिणी मङ्गल के सदृश आप कैसे करते हैं । फिर रुक्मिणी मङ्गल में भगवान श्रीकृष्ण को क्या कलंक लगा दिया यही लिखा है कि रुक्मिणी का हरण किया यह तो संस्कृत ग्रन्थों में भी लिखा है फिर भाषा के ग्रन्थों से क्या दुश्मनी है रुक्मिणी मङ्गल कोई प्रमाणिक ग्रन्थ नहीं है तथापि उसको मिथ्या दोष लगाना क्या यही स्वामी दयानन्द का महर्षित्व है पं० तुलसीराम तुलसीकृत रामायण को दबा गये । स्वामी दयानन्द ने लिखा है कि तुलसीकृत रामायण को मत मानो पं० ज्वालाप्रसादजी ने लिखा कि इसमें क्या असत शिक्षा है कि जिस से न मानें तुलसीकृत रामायण के मानने से मूर्ति पूजा और अवतार आदि विषय का ज्ञान होगा और फिर वह पुरुष स्वामी दयानन्द के जाल में फँस नहीं सकता इस कारण से दयानन्द ने इसको बुरा बतलाया है यदि कोई दूसरा कारण होता तो उसको स्वामी दयानन्द स्वतः लिखते या पं० तुलसीराम लिखते मेरठिय पंडित तो तुलसीकृत रामायण पर पूरे ही मौनी बाबा बन गये ।

जिसकी बदौलत हजारों पतिव्रता स्त्रियों का धर्म नष्ट होगया जिसकी करामात से आज ब्राह्मण जाति भंगी और ईसाई मुसलमानों के साथ होटलों में मांस और

शराव का मजा उड़ाती है जिस पुस्तक से आज करोड़ों मनुष्य घृणा करते हैं जिस को अशुद्ध समझ कर आर्यसमाजी प्रत्येक आवृत्ति में काट छांट करके उसका शरीर बदलते हैं जिसके अन्याय को देख कर पं० बद्रीदत्त आर्यसमाजी आदि को उसका खण्डन करना पड़ा जि उसकी बदौलत आर्यसमाज में घास मांस पार्टी हो गई जिसके महत्व से बाबू और ब्राह्मण पार्टी बन कर आर्यसमाज में दुश्मनी फैली जिसको पेशावर की दो अदालतों ने व्यभिचार फैलाने वाला यह ग्रन्थ है ऐसा फैसला दे दिया उस सत्यार्थप्रकाश को उत्तम और धर्म ग्रन्थ मानना मनुष्यों की आंखों में दिन दोप-हरी धूल झोकना है जो पं० तुलसीराम के लिये अयोग्य और उनके पाण्डित्य में धब्बा लगाने वाला है ।

इसके आगे पं० तुलसीरामजी मुहूर्त का खण्डन करते हैं हम इसके ऊपर अपनी तरफ से कुछ भी नहीं लिखते पाठकों से केवल यह प्रार्थना करते हैं कि वे पं० तुलसीराम के मुहूर्त खण्डन को ही पढ़ लें इस खण्डन में पं० तुलसीराम ने मुहूर्तों का मण्डन भी किया है । मण्डन कर के आप इतनी बात से खण्डन करते हैं कि मुहूर्त वही ठीक है जिस में सुगमता पड़े । इन्होंने यह अपने मन से ही लिख दिया वेद शास्त्रादिका प्रमाण खण्डन में कुछ नहीं दिया हालांकि मिश्रजी ने सुश्रुत आदि का प्रमाण भी दिया किन्तु पं० तुलसीराम ने सुश्रुत आदि को चुटकियों में ही उड़ा दिया । इस खण्डन को कोई भी सभ्य मनुष्य खण्डन नहीं कह सकता और न यह खण्डन खण्डन कहलाने के योग्य है यदि आर्यसमाज इसको खण्डन मानती है तो फिर हम भी कहते हैं कि तुम्हारा सत्यार्थप्रकाश अवार्मिक है और पाप फैलाने वाला है कोकशास्त्र है इस लिये अमान्य है यदि आर्यसमाज हमारे इस लेख पर सत्यार्थप्रकाश का खण्डन समझ कर उसको छोड़ दे तो फिर हम भी समझ लें कि तुलसीराम ने मुहूर्तों का खण्डन कर दिया ।

पं० ज्वालाप्रसादजी ने यह लिखा था कि जो यह दशा है तो ब्राह्मणादि ग्रन्थों में भी आपके कथनानुसार असत्य है तो विपवत् होने से इनका भी त्यागन करना चाहिये इसके ऊपर पं० तुलसीराम ने दो तीन जगह कुछ थोड़ा २ लिखा है । एक तो यह कि “यह आपस्तम्ब की यज्ञ परिभाषा है” दूसरे यह कि “पूर्वा पर प्रसङ्ग देखिये” इन दोनों लेखों में आर्यसमाज के मत की जितनी पुष्टि होती है उस को आर्यसमाजी ही समझते होंगे हम तो यह समझे हैं कि पं० तुलसीराम नाहक

में भास्कर प्रकाश के पन्ने काले कर रहे हैं और उस में ऐसा एक भी वाक्य नहीं कि जिससे दयानन्द के लेख की पुष्टि हो या मिश्र ज्वालाप्रसाद का पक्ष गिरता हो और हमें कलम उठानी पड़ती हो ।

स्वामी दयानन्दजी ने प्रमाणिक ग्रन्थों में उपाङ्ग भी लिये हैं आज आर्यसमाज में करीब दो लाख के आर्यसमाजी हैं किन्तु शोक के साथ लिखना पड़ता है कि उन दो लाख में से एक को भी यह पता न लगा कि उपाङ्ग किस को कहते हैं इससे मालूम होता है कि आर्यसमाजी जवरन ही आर्यसमाजी बनना चाहते हैं यह बिना पढ़े ही इतने पण्डित हो गये हैं कि अब इनको ग्रन्थ देखने की कोई आवश्यकता ही नहीं रही यदि ये उपाङ्गों का ज्ञान कर लेते तो फिर इन को सनातन धर्म के ऊपर कोई भी शंका न रहती और जिन पुराणों का यह रात दिन खण्डन करते हैं उनका खण्डन यह कभी स्वप्न में भी नहीं करते । आज हम आपको यह दिखलाते हैं कि उपाङ्ग किसको कहते हैं । देखिये —

“पुराणं न्यायमीमांसा धर्मशास्त्राण्युपाङ्गानि”

शब्द कल्पद्रुम कोष ।

अर्थ—पुराण, न्याय, मीमांसा, धर्म शास्त्र, ये उपाङ्ग हैं ।

स्वामी दयानन्दजी उपाङ्गों को प्रमाण मानते हैं उपाङ्गों में पुराण शामिल हैं स्वामी दयानन्दजी ने पुराणों को प्रमाण माना किन्तु समाज उन पुराणों का खण्डन करती है समाज को होशियारी में आकर विचार करना चाहिये जो स्वामी दयानन्द आर्यसमाज के प्रवर्तक हैं जिनको आर्यसमाज विद्वानों में उत्तम विद्वान् मानती है जिनको महर्षि की पदवी देती है किन्तु उनके प्रमाण माने उपाङ्गों को प्रमाण नहीं मानती यह क्या बात है ? बात यही है कि स्वामी दयानन्द को विद्वान महर्षि आदि अवश्य मानते हैं किन्तु साथही साथ प्रत्येक आर्यसमाजी यह भी मानता है कि जितना विद्वान् जितना ज्ञाता मैं हूँ इतना ज्ञाता आज तक पृथिवी पर न व्यास हुआ न वाल्मीकि । नवीरजानन्दन दयानन्द आर्यसमाजी दयानन्द की उस बात को मानेंगे कि जो उनके मन में उत्तम मजेदार मालूम होगी जिस बात को मन नहीं मानेगा वह हर्षिज २ न मानी जावेगी । स्वामी दयानन्द महर्षि थे तो क्या इसके यह मानी है कि वे आज कल के आर्यसमाजियों से विद्वान् थे वह तो सैकड़ों बातें ऐसी लिख गये जिनको आर्यसमाजी नहीं मानते । जब कि स्वामी दयानन्द को आर्यसमाज

विद्वान नहीं समझती, उनके लिखे को भी सत्य नहीं मानती फिर कालूराम या पं० ज्वालाप्रसादजी के समझाने पर क्या मानेगी। समाज माने या न माने किन्तु स्वामी दयानन्दजी ने तो पुराणों को प्रमाण माना है प्रत्येक शास्त्रार्थ में समाज को अपने धर्म पुस्तक पुगण मानने होंगे यदि समाज पुराणों से इन्कार करेगी तो उस को यह लिख देना होगा कि हम स्वामी दयानन्द की एक भी बात नहीं मानेंगे। अब यह अन्धेर नहीं चलेगा कि जब मनपसन्द मानने योग्य लेख आगया तब तो उसको महर्षि और आप्त बना दिया और नहीं तो दयानन्द भी मनुष्य थे उनसे भी गलती होना सम्भव है ऐसी २ बातें बनाकर स्वामीजी के गुरु बन बैठें।

पुराण विषय।

काल के हेर फेर से यह शताब्दी कुछ ऐसी आगई है कि जिसमें प्रत्येक मनुष्य अपने को बुद्धिमान, लायक और देशोद्धारक समझने लगा है इसी परही समाप्ति नहीं कि केवल अपने को ही बुद्धिमान समझता हो किन्तु साथही साथ दूसरों को बेवकूफ समझने का विचार भी अति पुष्ट होगया है इसी कारण से आज प्रत्येक लेख और प्रत्येक पुस्तक पर एतराज होते हैं।

इसके अलावा एक और भी खूबी मनुष्यों में आगई कि इनके एतराजों के उत्तर भी दे दिये जावें इनकी चाल भी बन्द करदी जावे तथापि ये मानने को तैयार नहीं इसमें प्रधान कारण यह है कि मनुष्यों के दिमाग में यह भर गया है कि संसार का कर्ता ईश्वर वगैरः कोई है नहीं इसको नेचर बनाती है और ईश्वर का मानना यह मूर्ख ओल्ड लोगों का बाहियात ढकोसला है इसी कारण से आज मनुष्य धर्म का नाम सुनकर दूर भागता है इसी कारण से आज मनुष्यों का धर्म पर विश्वास नहीं आज मनुष्य यही चाहता है कि किसी प्रकार धर्म का पचड़ा दूर हो और मन माने गुलछरें उड़ें ऐसे समय में संस्कृत ज्ञाताओं का यह काम है कि वे लेख देकर या लेख लिखकर मनुष्य समुदाय को धर्म पर लावें और उनके अन्दर वे ऐसे भाव पैदा करें कि जिनसे इसको ईश्वर सत्ता का ज्ञान हो और यह मनुष्य समुदाय अपने जीवन को पवित्र जीवन बनावें किन्तु संस्कृत वेत्ताओं में से पं० तुलसीराम उन्हीं के सिद्धान्त की पुष्टि करते हैं। आप कहीं पर तो स्मृति का खण्डन करते हैं, कहीं पर वेद का, कहीं पर ईश्वर का और कहीं पर पुराण का। आज पं० तुलसीराम

का लेख पुराण खण्डन पर चलता है जिन पुराणों को स्वामी दयानन्दजी उपाङ्ग मान कर प्रमाण मानें आज उन्हीं पुराणों का पं० तुलसीराम वह खण्डन करेंगे कि स्वामी दयानन्द की भी बुद्धि ठिकाने आ जावेगी ।

सबसे प्रथम आप लिखते हैं कि “पुराणों में विष” जिसका अर्थ यह है कि पुराणों में ज़हर । यह लिख कर आप लिखते हैं “तिलकों में विरोध” इस हैडिंग के पश्चात् पद्म पुराण का श्लोक देते हैं वह यह है—

उर्ध्व पुण्ड्र विहीनस्य श्मशान सदृशं मुखम् ।
अवलोक्य मुखं तेषा मादित्य मवलोकयेत् ॥ १ ॥

अर्थ—जो लम्बा तिलक (वैष्णवी मार्गका) धारण नहीं करता उसका मुंह श्मशान के तुल्य है अतएव देखने योग्य नहीं कदाचित् देख पड़े तो इसका प्रायश्चित्त करे अर्थात् तुरन्त सूर्य का दर्शन कर लेवे ॥ १ ॥

तृतीय श्लोक शिव पुराण का यह दिखलाते हैं—

विभूतिर्यस्य नो भाले नाङ्गे रुद्राक्ष धारणम् ।
नास्ये शिवमयी वाणी तं त्यजे दन्त्यजं यथा ॥ ३ ॥

अर्थ—विभूति (भस्म) जिसके माथे पर नहीं और अङ्ग में रुद्राक्ष नहीं पहिने मुंह से शिव शिव पेसा न कहे वह चाण्डाल की नाई त्याज्य है ॥ ३ ॥

इन दो श्लोकों से पं० तुलसीराम यह सिद्ध करते हैं कि प्रथम श्लोक में तो उर्ध्व पुण्ड्र (वैष्णवी) तिलक लगाना लिखा और तृतीय श्लोक में भस्म लगानी लिखी एक बात लिखते दो तिलक के लिखने से भेद आ गया मालूम होता है पं० तुलसीराम भेद से कुछ देश हानि समझते हों ।

इन दो श्लोकों में से एक में वैष्णवी तिलक का लगाना लिखा और दूसरे में भस्म किन्तु प्रथम श्लोक में भस्म की निन्दा नहीं और न तीसरे में वैष्णवी तिलक की ही निन्दा है अभिप्राय यह है कि यातो वैष्णवी तिलक लगाओ नहीं तो भस्म कुछ न कुछ भस्तक पर अवश्य लगाओ कोरे नमस्ते मत बन जाओ सूने भस्तक से बाजारों में मत घूमो । इस में दो तिलक का विधान है भेद क्या हो गया यदि पेसा

ही भेद माना जावेगा तो फिर मनु में भी भेद आ जावेगा यहां पर द्विजों में यज्ञोपवीत, कटी सूत्र, दण्ड, वस्त्रादि भिन्न भिन्न बतलाये हैं यदि इससे भेद होगा तो फिर वेद में भी भेद आ जावेगा जो वेद प्रथम तो “द्वो सुपर्णा सयुजा सखाय” श्रुति से जीव ब्रह्म का भेद कह रहा है और फिर “पुरुष एवेद सर्वं यद्भूतम्” आदि से अभेद कह रहा है यहां क्या करोगे जरा कोई समाजी इसका भी तो पता दे। देवभक्ति तो वेद और पुराणों ने रुचिपर रखी है कोई को हलवा पूरी अच्छी लगती है और कोई दाल भात में ही मग्न है जिस प्रकार भोजन में रुचि की वैचित्र्यता है इसी प्रकार भक्ति में भी जानिये जिनको विष्णु से प्रेम है वह विष्णु की भक्ति करें और उन्हीं के तिलक लगावें और जिसको शिवरूप प्रिय है वह शिवभक्त बने यह तो रुचि पर निर्भर है---

रुचीनां वैचित्र्यादजु कुटिल नाना पथजुषां ।
नृणामे को गम्य स्त्वमसि पयसामर्णव इव ।

जिन पुराणों पर आप भेद का कलङ्क लगाते हैं उनमें तो ब्रह्मा विष्णु शिव का स्वप्न में भी भेद नहीं भेद तो पं० तुलसीदास की बुद्धि में है पुराण तो जोर के साथ कह रहे हैं कि—

यो ब्रह्मासतु वै विष्णुर्यो विष्णु समहेश्वरः ।
एकामूर्ति त्रयो देवा ब्रह्मविष्णु महेश्वराः

जो ब्रह्मा है वही विष्णु है और जो विष्णु है वही महादेव है यह ब्रह्मा विष्णु महेश तीनों देव एक ही ब्रह्म की मूर्ति हैं इसी को वेद ने भी “सब्रह्मासविष्णु सरुद्रः” इत्यादि श्रुति से कहा है ये समस्त ब्रह्म के ही उपासक हैं इसको भेद कहता कौन है भेद तो बाबू पार्टी और ब्राह्मण पार्टी में है जो एक तो कहती है कि वेद मानो और दूसरी कहती है कि वेदों को छप्पर पर रखो ब्राह्मण चमार सब की रिश्ते-दारियां करवाओ ।

इसके आगे दूसरे और चौथे श्लोक को भी देखिए—

ब्राह्मण कुल जो विद्वान् भस्मधारी भवेद्यदि ।

वर्जये चादृशं देवि मद्योच्छिष्टं घटयथा ॥

अर्थ—ब्राह्मण कुलोत्पन्न जो विद्वान् होकर भस्म धारण करे उसको शराव के जूटे बासन की नाई त्याग देवे ।

यस्तु सन्तप्त शङ्खादि लिङ्ग चिन्ह धरो नरः ।

स सर्व यातना भोगी चाण्डालो जन्म कोटिषु ॥

अर्थ—जो मनुष्य तपे हुये शंखादिकों के चिन्ह को धारण करता है वह सब नरक यातनाओं को भोगता है और कोटिजन्म पर्यन्त चाण्डाल होता है ।

या तो पं० तुलसीराम इन श्लोकों के अर्थ में निन्दा समझ बैठे हैं और नहीं तो जान बूझ कर शिव वैष्णवों को पुराणों से घृणा करवाने का उद्योग करते हैं इनमें नाम मात्र को भी किसी की निन्दा नहीं किन्तु इन श्लोकों का भाव यह है कि प्रत्येक मनुष्य अपने उपास्य देव और अपने ही कृत्य को सर्वोत्तम समझे ऐसा न हो कि अपने मार्ग से घृणा कर अपने उपास्य देव को छोड़ दूसरे मार्ग में चला जावे और आर्यसमाजियों के गुरु महात्मा धर्मपाल जिस प्रकार मज़हब बदलते रहते हैं इसी प्रकार कभी किसी रूप का ध्यान करें और कभी किसी के पेसा करने पर वही हाल होता है कि “दोनों दीन से गयेरे पांड़े हलवा रहे न मांड़े” यदि एक स्थान में स्थिर होके न रहे तो फिर कहीं का भी नहीं रहता । और यदि हम समझ लें कि पं० तुलसीराम का ही अर्थ ठीक है ऐसा मानने से समस्त वेद पुराणादि की संगति ठीक नहीं बैठती संगति बिगाड़ कर जो अर्थ होता है वह अर्थ ही कहलाने के योग्य नहीं पं० तुलसीराम के अर्थ में नीचे लिखी संगतियां बिगड़ती हैं जिनसे वेद उपनिषद् पुराण आदि समस्त ग्रन्थों के आशय बिगड़ जाते हैं ।

(१) वेद यह कह रहा है कि “स ब्रह्मा स विष्णुः स रुद्रः स शिवः” अर्थात् वही ईश्वर ब्रह्मा है और वही विष्णु और वही रुद्र वही शिव है बस अंश पुराण इसके विरुद्ध कभी न कहेंगे क्योंकि जिस विषय को वेद वर्णन करता है पुराण भी विस्तार रूप से उसी विषय को वर्णन करते हैं वेद ने अवतार “मूर्तिपूजा” श्राद्ध तीर्थ महत्व आदि जिन विषयों का वर्णन किया उनके विरुद्ध पुराणों की लेखनी नहीं चली किन्तु उन्हीं की पुष्टि पर ही पुराणों का विस्तार हुआ है यदि कोई यह कहे कि वेदों में अवतारादि कहाँ हैं तो इसका उत्तर यह है कि विद्वानों को तो यह

सब विषय वेदों में दिखलाई दे रहे हैं और न किसी विद्वान ने इनके लिये इनकार किया है हां अलवत्ते कुछ लोग कि जिन्होंने वेद को तो देखा नहीं केवल स्वामी दयानन्द की लकड़ी के फेर में आ गये वही इन विषयों से शिर हिलाते हैं यदि वे इसका विचार करें तो उनको मान लेना पड़ेगा कि यह विषय वेद के हैं गरज कहने की यह है कि इन विषयों को वेद ने कहा तो पुराणों ने भी कहा पुराण हमेशा वेद के अनुकूल रहते हैं जब कि वेद ब्रह्मादि देवों की एकता कह रहा है तब फिर पुराण कैसे भेद कह सकते हैं।

(२) पं० तुलसीरामजी को यह भी खबर है कि वैष्णवों के प्रधान ग्रन्थ श्री मद्भागवत में त्रिपुरासुर के वध के समय और विषयान के समय तथा दक्ष की यज्ञ आदि आदि स्थानों में दिल तोड़ कर शङ्कर की स्तुति की गई है इसी प्रकार शैवों के प्रधान ग्रन्थ शिव पुराण में महादेव के विवाह में ही देखें कि विष्णु की कितनी स्तुति लिखी है जब एक के ग्रन्थ में दूसरे के देव की अत्यन्त स्तुति की गई है तब तो निन्दा वही मानेगा कि जो अकल के पीछे लाठी लिये फिरता हो।

(३) यदि आप सच पूछते हैं तो पुराणों में शैव तो वैष्णव हैं और वैष्णव शैव हैं इसको आप इस प्रकार समझ सकते हैं कि वैष्णवों का इष्ट देव कौन है प्रभु भगवान रामचन्द्र अथवा जगदीश्वर श्रीकृष्णचन्द्र। अच्छा देखना चाहिये कि भगवान रामचन्द्रजी तथा श्रीकृष्णचन्द्रजी ये किसके उपासक हैं? महादेव के। जब महादेव वैष्णवों के इष्ट देव का उपास्य है तब तो वैष्णवों का पहले हो चुका जब कि इनके इष्ट देव शिव हैं तब इनके शैव होने में सन्देह ही क्या है। इसी प्रकार शैवों का उपास्य देव कौन है इसके उत्तर में आप यही कहेंगे कि शिव हैं अब यदि यह सवाल किया जावे कि शङ्कर किस का भक्त है उत्तर में प्रभु राघवराम या त्रिलोकीनाथ कृष्णचन्द्र के। जब कि शैवों के इष्टदेव महादेव का इष्टदेव विष्णु है तब शैवों के इष्टदेव विष्णु पहले हो चुके जब वैष्णव सम्प्रदाय महादेव को अपने इष्टदेव का उपास्य मानती है जब कि शैव लोग भगवान विष्णु को अपने इष्टदेव का उपास्य मानते हैं जब कि एक सम्प्रदाय दूसरी सम्प्रदाय के इष्टदेव को अपने इष्टदेव से उच्चासन दे रही है तब फिर परस्पर निन्दा करती है यह बतलाना कहां तक सच है समाज ने तो इस बात का बीड़ा चबा लिया है कि झूठे कलङ्क लगा कर परस्पर में द्वेष करा कर छोड़ेंगी।

यह विषय वेद उपनिषद् पुराण सभी में ठसाठस भरे पड़े हैं जब हम पं० तुलसीराम के अर्थ और भाव को सच मान लेंगे तो इन प्रकरणों की संगतियां कैसे मिलेंगी यहां खण्डन नहीं है कि कोई आर्यसमाजी कर देगा यहां पर संगति बिठलाना है कि जिसमें पाण्डित्य की आवश्यकता है यदि पं० तुलसीराम का अर्थ सत्य समझ लिया जावे तो जहां जहां पर इन प्रकरण में से कोई प्रकरण आवेगा फिर उसको प्रक्षिप्त मानना होगा और क्या उत्तर है आर्यसमाजियों की बुद्धि जहां काम नहीं देती वहां प्रक्षिप्त ही मानती है भाव यह है कि हमारे अर्थ से समस्त विषयों की संगति बैठ जाती है और पं० तुलसीराम के अर्थ से संगति बिगड़ती है अब पाठक विचार करलें कि कौन अर्थ ठीक है।

इसके आगे पं० तुलसीरामजी लिखते हैं कि—

व्यामो हाय चराचरस्य जगतश्चैते पुराणागमा
स्तां तामेवहि देवतां परत्रिका जल्पन्ति कल्पावधि ।
सिद्धान्ते पुनरेक एव भगवान् विष्णुस्समस्तागमा
व्यापारेषु विविचनं व्यतिकरं नित्येषु निश्चीयते ॥

अर्थात् जितने पुराण हैं सब मनुष्य को भ्रम में डालने वाले हैं उनमें अनेक देव ठहराये गये हैं एक ईश्वर का निश्चय नहीं होता केवल एक भगवान् विष्णु पूज्य हैं। यही तो पाण्डित्य है पुराण का एक श्लोक लेकर उसी से ही पुराणों का खण्डन कर दिया जिस प्रकार पुराणों में अनेक देव पूज्य हैं इसी प्रकार वेदों में भी अर्यमा, अश्विनीकुमार, बरुण आदि अनेक देव पूज्य हैं इनको वही जानता है जो शतपथ, या कातीयश्रोत सूत्र जानता है या जिसने यज्ञ करवाई है या सायण आदि आदि भाष्य देखे हैं इतने पर भी वेद की श्रुति एक ही ब्रह्म की उपासना करना बतलाती है तो क्या इसी हिसाब से वेद अमान्य न हो जावेगा समाज इसका क्या उत्तर देती है ? जो उत्तर समाज वेद के लिए देगी वही हमारे पुराणों के लिए हो जावेगा।

किन्तु समाज ने ठीक उत्तर जब आज तक ही किसी विषय का न दिया तो अब इस विषय में ही क्या देगी हम अपने पाठकों को आयु समाप्ति तक आर्यसमाज के इन्तजार में न छोड़ कर यहां पर ही उत्तर लिखे देते हैं। शास्त्रों में योग्यता के

लिहाज़ से मनुष्य का अधिकार भेद बतलाया है प्रथम अवस्था में मनुष्य कर्मकाण्ड का अधिकारी होता है जब कर्मकाण्ड के द्वारा मन पवित्र हो जावे तब उपासना काण्ड का इसके करने से विपेक्ष निवृत्ति होती है इसके पश्चात् मनुष्य ज्ञानकाण्ड का अधिकारी होता है ज्ञानकाण्ड का अधिकारी यदि यज्ञोपवीत का त्याग करदे कि इस में क्या रक्खा है नाहक में कन्धे पर एक रस्सा सा पड़ा है इसी प्रकार वह चुटिया का भी त्याग करदे तो उसको कोई दोष नहीं और यदि कोई शास्त्र उस समय के लिये शिखा सूत्र को बुरा कहे तो क्या इस लेख को देकर हम कदापि शिखा सूत्र का त्याग कर सकते हैं ? हर्गिज नहीं । हमको दो मंजिलें बीच में रखी हैं वह हमसे ऊपर पहुंच गया है अब उसको अपना सिद्धान्त “सर्वं खल्विदं ब्रह्म” करना पड़ेगा उसको समस्त जगत एक दृष्टि से देखना होगा इसी ऊंचे भाव को लेकर यह परलोक बना है उस समय तो हम पुराणों को वेदों को सब को ही लड़कों का खेल समझेंगे । जिस प्रकार एक लड़का मिडिल में जाता है वह जान तोड़ कर परिश्रम करता है और रोज़ की रोज़ यह कहता है कि बड़ी क्लिष्ट पढ़ाई है किन्तु वही जब ग्रेजुएट हो जाता है तब मिडिल की निन्दा करता है कि इसमें क्या रक्खा है बिना ग्रेजुएट हुये अंगरेजी की कुछ भी लियाकत नहीं होती । बस हूबहू इसी प्रकार ऊंचे भाव वाला भी यह कह सकता है कि पुराणों में क्या रक्खा है कभी किसी का पूजन बनलाते हैं कभी किसी का किन्तु विष्णु के पूजन के बिना संसार बन्धन हर्गिज २ नहीं छुटता । पुराणों के लिये ही क्या वह पुरुष तो वेद के कर्मकाण्ड आदि को भी श्रेयस्कर नहीं समझता उसकी भी निन्दा करता है ।

जिस याज्ञिक विषय में आधे से अधिक वेद की समाप्ति होती है उसी यज्ञ के लिये भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी क्या कहते हैं ज़रा इसको भी पढ़िये—

यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदन्त्य विपश्चिताः ।

वेद वादस्ताः पार्थ नान्यदस्तीति वादिनः ॥ ४२ ॥

कामात्मानः स्वर्गं परा जन्म कर्म फलप्रदाम् ।

क्रिया विशेष बहुलां भोगैश्चर्यं गतिं प्रति ॥ ४३ ॥

भोगैश्वर्यं प्रसक्तानां तयापहत चेतसाम् ।
व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते ॥ ४४ ॥

(श्री० भ० गीता अध्याय २)

हे अर्जुन जो अज्ञानी लोग वेदों के बाद में लगे हुए कामनाओं से मन भरे हुए स्वर्ग तकही पहुंच रखने वाले भोग और ऐश्वर्य के पाने के लिये कर्मों के फल जन्म देने वाली बहुत प्रकार की क्रियायें बताने वाली यह (प्रसिद्ध) फूली २ बातें करते हैं और कहते हैं कि इसके सिवाय और कुछ नहीं है उन भोग और ऐश्वर्य में मन लगाने वालों की जिनका ऐसी बातों में चित्त खेंच रक्खा है बुद्धि निश्चय में आरुढ़ होकर समाधि में नहीं लगती ।

आशय स्पष्ट है कि मनुष्य कामात्मा है और सदा अपनेही भोग के वास्ते तरह २ के कर्म करते रहते हैं उनकी बुद्धि व्यवसायात्मिका है एकत्व पर आरुढ़ नहीं होती जब एकत्व पर आरुढ़ नहीं होती तो एकाग्र होकर समाधि में कैसे लग सकती है जब समाधि नहीं तो ज्ञान कहां जब ज्ञान नहीं तो मोक्ष कहां । यहां पर साक्षात् वेद और उसके कर्म काण्ड दोनों की निन्दा है इस से अधिक निन्दा भी पाई जाती है । सुनिये—

त्रैगुण्य विषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन ।

श्री० भ० गी० अ० २ श्लो० ४५

अर्थ—हे अर्जुन ! वेदों का विषय त्रैगुण्य संसार है किन्तु तू निष्काम हो जा ।

यह सब उसी के लिये हैं जो विधि निषेध से बाहर हो कर्म फल की इच्छा का त्यागकर चुका हो । जिसप्रकार मिडिल की निन्दा केवल त्रेजुष्टके लिये है किन्तु जो मिडिल क्लास में पहुंचनेवाले हैं या जो पहुंच गये किन्तु पास नहीं किया उन के लिये वह मिडिल की पढ़ाई हितकर है इसी प्रकार यह समस्त भाव उसी पुरुष के लिये हैं जो कर्म फल को त्यागकर विधि निषेध से बाहर होगया और जिनके बालक अन्न बिना भूखे मरते हैं और उनके पोषण में रात दिन गुजरता है या यों कहिये कि जो कर्म फल की इच्छा रखते हैं उन के लिये यह श्लोक मानना यह १० तुलसीराम की यातो भारी भूल है और नहीं तो पुराणों को झूठे कलंक लगाने का विचार है ।

अब इसके आगे पं० तुलसीराम जी “पुराणों में देवताओं की निन्दा” हैडिंग देकर श्रीमद्भागवत के दो श्लोक लिखते हैं—

भवव्रत धरा येच ये चतान्समनुव्रताः ।

पाखण्डिनस्ते भवन्तु सच्छास्त्र परिपन्थिनः ॥

सुमूक्ष्वो घोररूपान् हित्वा भूतपतीनथ ।

नारायण कला शान्ता भजन्तिह्यनसूयवः ॥

“सत्येनास्ति भयंकचिन” के सिद्धान्तानुकूल जब पुराणों में कलङ्क है ही नहीं तो फिर लगा कौन सकता है। पण्डित तुलसीरामजी के ही लगाये कलङ्क को देख लीजिये पण्डितजी ने “भवव्रत धरा येच येच तान्स मनुव्रता” इस श्लोकसे श्रीमद्भागवत में महादेव की निन्दा दिखलाई है। क्या सच ही यहां पर महादेव की निन्दा है आप संक्षेप से इस इतिहास को सुनलें तो निन्दा का नाम तक भी न रह जावेगा। इसकी कथा श्रीमद्भागवत के चतुर्थ स्कन्ध में वर्णन की गई है उसी कथा को संक्षिप्त रूप में मैं यहां लिखता हूं सुनिये—

एक समय दक्ष जो महादेवजी के श्वसुर थे, उन्होंने विश्वसृज् यज्ञ की। उस यज्ञ के मण्डप में ब्रह्मा तथा इन्द्रादि देव और समस्त ऋषि और प्रजा के प्रतिष्ठित प्रतिष्ठित सज्जन आकर उपस्थित हुये। दक्ष प्रजापति था इस कारण इसका मान्य, इसकी गौरवता उच्च श्रेणी में गिनी जाती थी। इसके आने से प्रथम सब लोग आ गये थे “द्वारों का यह नियम होता है कि जब सब लोग आ जावें तब राजा आता है। क्योंकि यदि पहले राजा आ जावे तो प्रतिष्ठित सज्जनों के आने पर उसको बार बार उठ कर ताज़ीम देनी पड़ती है। इस कारण से सब लोग पहिले ही से आ जाते हैं, सब के बाद राजा आता है जब राजा आता है उस समय सब उठ बैठते हैं और सब की ताज़ीम एक साथ हो जाती है।” इस नियम के अनुसार सब आकर बैठ गये थे बाद में दक्ष प्रजापति आये। दक्षको देखकर जो लोग उससे हीन श्रेणी के थे सब उठ बैठे। दक्ष ब्रह्मा को प्रणामकर और इशारे से सब को प्रत्यक्षिवादन कर ब्रह्मा के पास अपने आसन पर बैठ गया, बैठ कर जो पीछे को देखा तो महादेव दिखाई दिये। महादेव को देख कर इनको बहुत क्रोध आ गया। इन्होंने अपने मन में समझा कि जब यह मेरा जामात्र है तो इसको उचित था कि यह

मुझको प्रणाम करे। “जामात्र का श्वसुर को प्रणाम करना स्मृति विहित है और अग्रवाल वैश्य तथा गौड़ आदि ब्राह्मणों में अब भी प्रथा है कान्यकुब्ज ब्राह्मणों में जो जामात्र को श्वसुर प्रणाम करता है यहां पर विश्वों पर व्यवहार है।” इसने समझा कि जब यह मेरा जामात्र है और जामात्र को प्रणाम करना लिखा है और इसने जो हमको प्रणाम नहीं किया इसको घमण्ड आगया है। यहांपर व्यासजी ने महादेव की प्रशंसा भी अधिक की है और दक्षको इतना क्रोध आगया कि महादेव को शाप देकर भी शान्त न हुआ। आखिर मारे क्रोधके दक्ष वहां से उठ गये। इस शाप को सुनकर नन्दी को भी क्रोध आगया उसने दक्ष को यह शाप दिया कि “यह जगत के ईश महादेव को मनुष्य जानकर उनसे द्रोह करता है इस कारण तत्त्व “असली सिद्धान्त” से विमुख हो जावे” नन्दी ने इत्यादि और भी बहुत से शाप दिये हैं। दक्ष को शाप और दक्षके यज्ञ कर्त्ताओं को भी शाप दिया इन शापों को सुनकर भृगु को क्रोध उठ आया कि इस ने यज्ञकर्त्ताओं को क्यों शाप दिया। दक्ष का तो अपराध था किन्तु यज्ञकर्त्ताओंका तो कुछ अपराध भी नहीं। बिना अपराध शाप देनेवाला अवश्य दण्डनीय है ऐसा विचार करते हुये भृगु को क्रोध आगया और उन्होंने क्रोधके वशीभूत होकर यह शाप दिया कि—

भवव्रतधरा येच येच तान्समनुव्रताः ।

पाखण्डिनस्ते भवन्तु सच्छास्त्र परिपन्थिनः ॥

यहां तक कि महादेव इन शापों को सुन कर उस स्थान से उठ कर चले भी गये। महादेव के चले जाने के पश्चात् यज्ञका प्रारम्भ हुआ और अपने समयपर वह यज्ञ समाप्त हुआ। यह कथा श्रीमद्भागवत के चतुर्थ स्कन्ध के द्वितीय अध्याय में है।

इसके आगे दक्ष ने द्वितीय यज्ञ का प्रारम्भ किया इस यज्ञ में सती ने शरीर त्याग किया। फिर महादेव के यहां से वीरभद्र ने पहुंच कर दक्ष की यज्ञ का विध्वंस कर दिया। दक्ष भी मर गया समस्त देव अङ्ग भङ्ग होकर ब्रह्मा के पास पहुंचे। उस समय देवों को ब्रह्मा ने समझाया है कि महादेव ! जगत के रचना, पालन, संहार करने वाले अज अविनाशी ब्रह्म हैं। उनका अपमान देखने से तुमको यह दण्ड मिला है अब तुम उन्हीं की शरण जाओ, उनके कोई दूसरी बात नहीं। वह देखते ही तुम लोगों का कल्याण करेंगे। “वास्तव में इन अध्यायों में महादेव की बहुत प्रशंसा की गई है और उनको जगत प्रभु स्वामी बतलाया गया है।”

ब्रह्मा को साथ लेकर सब देव महादेव के पास गये। शङ्करजी इनके साथ आये। यज्ञ को पूर्ण करवाया इस समय सब के शाप छूट गये। देखिये श्रीमद्भागवत अब यहां पर विचार करने का अवसर है कि इस स्थान में जो जगह जगह पर महादेव की प्रशंसा लिखी है उसको तो पं० तुलसीराम ने देखा नहीं और शाप का श्लोक देख लिया। उस शाप के श्लोक से महादेव की निन्दा साबित करना चाहते हैं फिर महादेव ने जहां पर शाप दूर करने के उपाय और किसी किसी के शाप दूर किये उसको भी नहीं देखा। क्रोध के वशीभूत होकर भृगु ने जो शाप दिया केवल वही देखा। यदि आज कोई मनुष्य क्रोध के वशीभूत होकर किसी योग्य पुरुष को कोई कलङ्क लगावे तो क्या वास्तव में वह कलङ्क उनमें रहेंगे। गर्ज यह है कि यह महादेव की निन्दा नहीं किन्तु क्रुद्ध भृगु ने महादेव के अनुयायियों की निन्दा की है महादेव की निन्दा तो इस श्लोक में कहीं पर भी नहीं है। जब इस श्लोक में महादेव की निन्दा है ही नहीं तब उस श्लोक से निन्दा साबित करना पबलिक के सामने प्रतिष्ठा को अधः स्थान में लेजानेवाला नहीं तो और क्या है, अभिप्राय यह है कि इस श्लोक में महादेव की निन्दा नाम मात्र को नहीं है और पं० तुलसीराम जी चाहते हैं कि मनुष्य हिन्दूधर्म की तरफ से घृणा करके इसको छोड़ दें ताकि फिर धर्मबन्धन न रहे। इसमें पं० तुलसीराम ने एक और भी चालाकी की। वह यह कि इस श्लोक के आगे एक श्लोक भागवत के प्रथम स्कन्ध का लगा दिया और दोनों को मिलाकर एक अर्थ कर दिया। आप पिछले श्लोक से निन्दा दिखला कर दूसरे श्लोक का अर्थ करते हुए “इसलिये” इतना शब्द अपनी तरफ से मिलाकर दोनों का एक अर्थ करते हैं क्या इसी का नाम इन्साफ है? कहीं की ईन्ट कहीं का रोड़ा—भानमती ने कुनबा जोड़ा—“टाट की अँगिया मूंज की तनी—कहो मेरे बलमा कैसी बनी” एक श्लोक चतुर्थ स्कन्ध का और दूसरा प्रथम का। पाठकों को पं० तुलसीरामजी की इस कर्तव्यता पर ध्यान देना चाहिये और जरा इस धार्मिक वृत्ति पर गौर करना चाहिये कि समाज किस छल कपट से दूसरे धर्मों पर मिथ्या दोष लगा कर अपनी विजय चाहती है।

चतुर्थ स्कन्ध के श्लोक “भवव्रतधरा” का अर्थ पाठक देख चुके अब प्रथम स्कन्ध के श्लोक पर विचार करें—

मुमुक्षवो घोररूपान्हित्वा भूतपतीनथ ।

नारायण कलाः शान्ता भजन्ति ह्यनमूयवः ॥

रजस्तमः प्रकृतयः समशीला भजन्तिवै ।

पितृ भूत प्रजेशादीन श्रियैश्वर्य प्रजेप्सवः ॥

श्री० भा० प्र० अ० ३

अर्थ—मुक्ति की इच्छा रखने वाले सज्जन घोर रूपवाले भूतपतियों (पितृ प्रजेशादि) को छोड़ कर किसी की भी निन्दा से सम्बन्ध न रख शान्त होकर नारायण के रूपों का भजन करते हैं । जिनकी सात्विकी वृत्ति नहीं किन्तु रजस्तम प्रकृति हैं वे द्रव्य, ऐश्वर्य प्रजा की इच्छा से समान शील (स्वभाव) वाले पितृ भूत प्रजेशादि की उपासना करते हैं ।

इस श्लोकमें तो किसी की भी निन्दा नहीं किन्तु यह दिखलाया है कि सात्विकी वृत्ति वाले मोक्ष के लिये नारायण के रूपों की उपासना करते हैं और रज तम प्रकृति वाले द्रव्य ऐश्वर्य पुत्रादि के लिये पितृ भूत प्रजेशादि की उपासना करते हैं नहीं मालूम पं० तुलसीरामको निन्दा कहां से दीख गई फिर “भूतपतीन्” इस बहुवचनान्त का अर्थ एकवचन महादेव कैसे कर लिया ? पक्षपात वह वस्तु है कि जिस ने व्याकरण को भी धत्ता बुलाया “भूतपतीन्” का अर्थ यदि पं० तुलसीरामजी को नहीं आता था तो श्रीमद्भागवत की प्रसिद्ध टीका श्रीधरी ही देख लेते उसमें लिखा है “भूतय तीनिपितृ प्रजेशादीना मुप लक्षणम्” अर्थात् भूतपति इस बहुवचनान्त शब्द से पितृ प्रजेशादि लेना द्वितीय यह है कि दूसरे श्लोक के मूल में “पितृ भूत प्रजेशादीन्” पद व्यासजी ने भी डाल दिया इन सब को न देख कर “भूतपतीन्” का अर्थ महादेव जबर्दस्ती करलेना सनातन धर्म पर झूठा कलंक लगाना पं० तुलसी राम की प्रकृति का परिचय दे रहा है । मेरे प्यारे समाजियों तुम जरा तो होश में आजावो विचार कर देखो “सब्रह्मा सविष्णु” आदि वेद मन्त्र से महादेव तो नारायण कला हैं फिर महादेव अर्थ क्यों कर होगा । हाय खुदगर्जी तेरा बुरा हो न जानै तू इन समाजियों से क्या २ अनर्थ करवावेगी ।

*आगे पं० तुलसीरामजी लिखते हैं कि—

येऽन्यं देवं परत्वेन वदन्त्य ज्ञान मोहिताः ।

नारायणज्जगन्नाथात्तेवैपाखण्डिनो नराः ॥

यह श्लोक लिख कर पं० तुलसीराम बतलाते हैं अर्थ यह है कि जो लोग किसी दूसरे देवता को नारायण से जो जगत का स्वामी है बड़ा करके मानते हैं सो अज्ञानी हैं और लोक में उनको पाखण्डी कहते हैं ।

पं० तुलसीरामजी का अर्थ विलक्षण ही हुआ करता है जब तक यह अपनी तरफ से कुछ न कुछ न मिलालें तब तक इनका अर्थ ही नहीं होता जिस प्रकार वेद भाष्य में अद्भुत २ अर्थ मिला कर सामवेद से मनुष्यों को घृणा करादी यह इसी प्रकार पुराणों से भी करवाना चाहते हैं इस समय वेद के अर्थ से तो कोई प्रयोजन नहीं उसका विचार कभी फिर किया जावेगा किन्तु आज का विचार ऊपर के श्लोक के ऊपर है हम पूछते हैं कि इसके अर्थ में जो “बड़ा करके मानते हैं” यह इवारत लिखी है यह श्लोक के किन अक्षरों का अर्थ है क्या कोई समाजी इसका उत्तर दे सकता है कहीं चालाकियों के भी उत्तर हुए हैं अपनी तरफ से अर्थ गढ़के श्लोक के अर्थ को छोड़ के दोष देना भी समाज की प्रतिष्ठाकारक हो सकता है देखिये हम अर्थ लिखते हैं—

अर्थ—(ये) जो (अज्ञान मोहिताः) अज्ञानी (नारायण जगन्नाथात्) जगत के स्वामी नारायण से (अन्यं देवं) अन्य देव को (परत्वेन) भिन्नता से (वदन्ति) कहते हैं (तेवै) वे (नराः) मनुष्य (पाखण्डिनः) पाखण्डी हैं ।

श्लोक तो नारायण और समस्त देवों से अभेद बतलाता है श्लोक तो “सब्रह्मा सविष्णु सरुद्रः” श्रुति का अनुवाद करता है और पं० तुलसीराम कहते हैं कि इस श्लोक में नारायण से भिन्न देवोंकी निन्दा लिखी है दयानन्द की कृपा से आर्यसमाजियों को स्तुति के स्थान में भी निन्दा ही दीखती है इस श्लोक में देव निन्दा बतलाना कैसा है जैसा कि बालू में घृत निकालना ।

इसके आगे पं० तुलसीरामजी लिखते हैं—

एषदेवो महादेवो विज्ञेयस्तु महेश्वरः ।

नतस्मात्यरमङ्किञ्चित् पदं समधिगम्यते ॥

अर्थ यह है कि—महादेव को महान् ईश्वर जानना चाहिये और यह मत समझो कि उससे कोई बड़ा है ।

पं० तुलसीराम की दृष्टि में इस श्लोक में निन्दा है क्योंकि इस में यह लिखा है कि महादेव से बड़ा कोई नहीं यदि कोई आर्यसमाजी यह कहदे कि ईश्वर से कोई बड़ा नहीं तो पं० तुलसीराम की दृष्टि में निन्दा होगई। महादेव विष्णु ब्रह्मा यह समस्त ईश्वर के नाम हैं वास्तव में ईश्वर सब से बड़ा है पं० तुलसीराम महादेव को ईश्वर से भिन्न समझते हैं यह उनकी भूल है ईश्वर एक है और उस के नाम तथा रूप अनेक हैं।

इसके आगे पं० तुलसीराम लिखते हैं कि—

विष्णु दर्शन मात्रेण शिवद्रोहः प्रजायते ।
 शिव द्रोहान्न सन्देहो नरकं याति दारुणम् ॥
 तस्माद्वै विष्णु नामापि न वक्तव्यं कदाचन ॥
 यस्तु नारायणं देवं ब्रह्म रुद्रादि दैवतैः ।
 समं सर्वैर्निरीक्षेत स पाखण्डी भवेत्सदा ॥
 किमत्र बहु नोक्तेन ब्राह्मणायेप्य वैष्णवाः ।
 न स्पृष्टव्या न दृष्टव्या न वक्तव्या कदाचन ॥
 वासुदेवं परित्यज्य येऽन्यं देवमुपासते ।
 तृषतो जान्हवी तीरे कूपं स्वनति दुर्मतिः ॥

इन श्लोकों में जो भेद था निन्दा कही जाती है यह भेद या निन्दा नहीं किन्तु उपास्यदेवकी उत्कर्षता (उत्तमता) बतलाई गई है इसके ऊपर केवल यही वक्तव्य है कि सांसारिक दृष्टि (व्यवहार सत्ता) में मानुषी प्रकृति में स्वाभाविक भिन्नता देखने में आती है। विद्वान् और मूर्ख कोई भी इस भिन्नता से बच नहीं सकता, गंभीर और दूरदर्शी मनुष्य इस भिन्नता को पद पद पर अवलोकन करते हैं जड़ और चेतन सभी पर इसका प्रभाव है। मनुष्य का एक कार्य दूसरे से भिन्न है भिन्नता के गोद में लालन और पालन पाकर भिन्नता के दृश्यों में फँसकर यह कब हो सकता है कि आरम्भ में ही हमारे उपासना सम्बन्धी विचार इस भिन्नता से बचे रहें। भिन्नता से जकड़े हुए मनुष्य का भिन्नता से मुक्त होना हँसी खेल नहीं है इस भिन्नता की यहां पर ही समाप्ति नहीं किन्तु वेद भगवान् ईश्वर के विषय में भी

इस भिन्नता को स्थान दे रहा है उस एक ही ईश्वर को कहीं पर "एकोरुद्रः" और कहीं "सहस्रधारुद्रः" कहीं पर "आदित्यवर्णः" और अनन्त शिर नेत्रादि अवयववान् और कहीं पर "अपाणि पादः" आदि भेद से वर्णन कर रहा है इस स्थल पर पुराण भी उसी भेद का प्रतिपादन कर रहे हैं। यदि कोई यह प्रश्न करे कि इस भेद और निन्दा की आवश्यकता क्या थी इसका उत्तर यह है कि आदर्श सिद्धान्तानुकूल अभ्यासी को यही लाभदायक हो सकता है कि जिसमें अभ्यासी को जिस कार्य में प्रेरित किया जावे उस अभ्यासी का इष्ट तथा जीवन फल उसकी बुद्धि उसके प्राण का मुख्य फल बतला दिया जावे कि जिसमें उसका आत्मा उसी में नितान्त संलग्न हो। साथ ही यह भी आवश्यक है कि उसको दूसरी तरफ से नितान्त बचाया जावे जिससे कि उसके विचार द्विविध न होने पावें। इसी सिद्धान्त को आगे रख कर उपासक के उपास्य देव को ही सर्वोत्तम सर्वफल प्रदातृत्व कहा है आशय यह है कि उपासक को उसी के उपास्य देव की उत्तमता दिखाई। व्यास जी को संदेह था कि अस्थिर चित्त जीव भिन्न भिन्न रूप में भटक कर कहीं यह कहावत चरितार्थ न कर बैठे कि—

इधर के रहे न उधर के।

पुराणों में इसीलिए दूसरे रूपों की हीनता दिखलाई गई है कोई भी काम क्यों न हो चाहे वह सांसारिक हो या पारमार्थिक उसी समय पूर्णोन्नति के परिणाम में जा सकता जब कि कार्यकर्ता का मन प्रतिक्षण उसी में लगा रहे आज संसार में भी प्रत्यक्ष दिखलाई दे रहा है कि जो विद्यार्थी विद्या ग्रहण करने में पूर्ण रूप से संलग्न हो जाते हैं वह विद्यार्थी परीक्षाओं में उत्तीर्ण होते हैं और जिनके मन दूसरी दूसरी विद्या या विषयान्तर में घूमा करते हैं वे ठोकर पर ठोकर खाकर नाकामयाब रहते हैं इत्यादि संसार में अनेक दृष्टान्त देखने में आते हैं कि जिन लोगों ने कार्य को सर्वोत्तम अथवा आदर्श समझ कर किया वही कामयाबी पा सके अभिप्राय यह है कि उपासक की जिस देवता में प्रीति है उपासक के लिए पुराणों ने उसी उपास्यदेव को सर्वोत्तम बतलाया है।

इस उपासना विषय अथवा सांसारिक विषयों की उन्नति से अनभिन्न विचार से मीलों दूर भागनेवाले मनुष्य इसको परस्पर देवनिन्दा के नाम से प्रसिद्ध करते हैं हमारा यह दावा है कि पुराणों में देव निन्दा है ही नहीं उपासना काल में

अपने इष्ट देव को सर्वोत्तम माना जाता है और दूसरे रूपों की तरफ से उपास्य दृष्टि हटाने का उद्योग किया जाता है इसका नाम है अनन्यभक्ति अनन्य भक्त ही सर्वोत्तम उपासक होता है अतएव यह भेद उपासनाकालिक भेद है न कि सर्वदा भेद यदि आप सर्वदा भेद मानोगे तो पद्मपुराण की संगति ही नहीं बैठेगी जो पद्मपुराण एक स्थान में विष्णु की प्रशंसा और महादेव की निन्दा कर गया वही पद्मपुराण दूसरे स्थान में महादेव की स्तुति और विष्णु की स्तुति करता है अब बुलाइये किसी आर्य समाजी को जो संगति बिठलावे त्रिकाल में भी संगति नहीं बैठ सकती और हमसे कहिये कि आप ही अपने सिद्धान्तानुसार संगति बिठलावें लीजिये सुनिये विष्णु के उपासक के लिये तो विष्णु रूप की गौरवता और शिव रूप की हीनता दिखलाई है जहां पर महादेव रूप की प्रशंसा और विष्णु की हीनता है वह शिव उपासक के लिए है उपासकावस्था में ही कर्मकाण्ड ज्ञानकाण्ड में एक क्या ऐसी संगति कोई समाजी भी बिठला सकता है यदि बिठला दे तो हम पद्मपुराण में देव मानने को तैयार हैं क्या कोई समाजी लेखनी उठाकर समझावेगा ऐसी आशा नहीं।

पुराण इतिहास ।

सत्यार्थप्रकाश—

(प्रश्न) क्या आप पुराण इतिहास को नहीं मानते? (उत्तर) हां मानते हैं परन्तु सत्य को मानते हैं मिथ्या को नहीं (प्रश्न) कौन सत्य और कौन मिथ्या है? (उत्तर) :—

ब्राह्मणानीतिहासान् पुराणानि कल्पान् गाथा नाराशंसीरिति ॥

यह गृह्यसूत्रादि का वचन है। जो ऐतरेय, शतपथादि ब्राह्मण लिख आये उन्हीं के इतिहास, पुराण, कल्प, गाथा और नाराशंसी पांच नाम हैं श्रीमद्भागवतादि का नाम पुराण नहीं (प्रश्न) जो त्याज्य ग्रन्थों में सत्य है उसका ग्रहण क्यों नहीं करते? (उत्तर) जो जो उनमें सत्य है सो सो वेदादि सत्य शास्त्रों का है और मिथ्या है वह उनके घर का है वेदादि सत्य शास्त्रों के स्वीकार में सब सत्य का ग्रहण हो जाता है जो कोई इन मिथ्या ग्रन्थों से सत्य का ग्रहण करना चाहे तो

मिथ्या भी उसके गले लिपट जावे इसलिए “असत्यमिश्रं सत्यं दूरतस्त्याज्यमिति” असत्य से युक्त ग्रन्थस्थ सत्य को भी वैसे छोड़ देना चाहिए जैसे विषयुक्त अन्न को, (प्रश्न) तुम्हारा मत क्या है? (उत्तर) वेद अर्थात् जो जो वेद में करने और छोड़ने की शिक्षा की है उस उस का हम यथावत् करना छोड़ना मानते हैं जिसलिए वेद हमको मान्य है इसलिए हमारा मत वेद है ऐसा ही मानकर सब मनुष्यों को विशेष आर्यों को ऐकमत्य होकर रहना चाहिए (प्रश्न) जैसा सत्यासत्य और दूसरे ग्रन्थों का परस्पर विरोध है वैसे अन्य शास्त्रों में भी है जैसा सृष्टिविषय में छः शास्त्रों का विरोध है :- मीमांसा कर्म, वैशेषिक काल, न्याय परमाणु, योग पुरुषार्थ, सांख्य प्रकृति और वेदान्त ब्रह्म से सृष्टि की उत्पत्ति मानता है क्या यह विरोध नहीं है? (उत्तर) प्रथम तो बिना सांख्य और वेदान्त के दूसरे चार शास्त्रों में सृष्टि की उत्पत्ति प्रसिद्ध नहीं लिखी और इनमें विरोध नहीं क्योंकि तुमको विरोधाविरोध का ज्ञान नहीं। मैं तुमसे पूछता हूँ कि विरोध किस स्थल में होता है? क्या एक विषय में अथवा भिन्न भिन्न विषयों में? (प्रश्न) एक विषय में अनेकों का परस्पर विरुद्ध कथन हो उसको विरोध कहते हैं यहां भी सृष्टि एक ही विषय है (उत्तर) क्या विद्या एक है वा दो, एक है, जो एक है तो व्याकरण, वेद्यक, ज्योतिष आदि का भिन्न भिन्न विषय क्यों है जैसा एक विद्या में अनेक विद्या के अवयवों का एक दूसरे से भिन्न प्रतिपादन होता है वैसे ही सृष्टि विद्या के भिन्न भिन्न छः अवयवों का शास्त्रों में प्रतिपादन करने से इन में कुछ भी विरोध नहीं जैसे घड़े के बनाने में कर्म समय, मिट्टी, विचार, संयोग, वियोगादि का पुरुषार्थ, प्रकृति के गुण और कुंभार कारण है वैसे ही सृष्टि का जो कर्म कारण है उसकी व्याख्या मीमांसा में, समय की व्याख्या वैशेषिक में, उपादान कारण की व्याख्या न्याय में, पुरुषार्थ की व्याख्या योग में, तत्वों के अनुक्रम से परिगणन की व्याख्या सांख्य में और निमित्तकारण जो परमेश्वर है उसकी व्याख्या वेदान्त शास्त्र में है। इससे कुछ भी विरोध नहीं। जैसे वैद्यकशास्त्र में निदान, चिकित्सा, ओषधि, दान और पथ्य के प्रकरण भिन्न भिन्न कथित हैं परन्तु सब का सिद्धान्त रोग की निवृत्ति है वैसे ही सृष्टि के छः कारण हैं इनमें से एक एक कारण की व्याख्या एक एक शास्त्रकार ने की है इसलिए इनमें कुछ भी विरोध नहीं इसकी विशेष व्याख्या सृष्टि प्रकरण में कहेंगे।

तिमिरभास्कर—

नमस्कृत्यगुरुशान्तं पुरस्कृत्यश्रुतेर्मतम्
तिरस्कृत्यचमन्दोक्तिं पुराणे किंचिदुच्यते ?

समीक्षा—स्वामीजीने पुराणोंके उड़ानेकी चेष्टा की परन्तु आप से क्या पुराण अन्यथा किये जाते हैं सुनिये पुराण शब्द ऐतरेय शतपथादिका वाचक नहीं है।

मध्याहुतयोहवा एतादेवानां यदनुशासनानि विद्यावाकोवाक्यमितिहासः पुराणङ्गाथानाराशंस्यः य एवं विद्वाननुशासनानि विद्यावाकोवाक्यमितिहासपुराणं गाथा नाराशंसीरित्यहरहः स्वाध्यायमधीते इत्यादि शत० अ० ११ प्र० ३ ॥ एनस्तत्रैव क्षीरो दनमाः सौदनाभ्यां हवा एव देवांस्तर्पयति य एवं विद्वान्वा कोवाक्यमितिहासः पुराणमित्यहरहः स्वाध्यायमधीते त एनन्तृप्तास्तर्पयन्ति सर्वैः कामैः सर्वैर्भोगैः । शत० ॥ १६।५। ७।६

आशय यह है कि विद्या वाक् वाक्य इतिहास पुराण गाथा नाराशंसी इनका पढ़ना अचर्य है जो इनको अध्ययन करते हैं देवता प्रसन्न होके उनके सब कार्य पूर्ण करते हैं ॥

सथथाद्रैन्धाग्रेरभ्याहितस्य पृथग्धूमाविनिश्चरन्त्येवं वारेऽथ महतो भूतस्य निश्वासितमेतद्यद्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषद् श्लोकाः सूत्राण्यनु व्याख्यानानि व्याख्यानान्यस्यैवैतानि सर्वाणि निश्वासितानि ॥ श० ४ प्र० ब्रा० ४.

भावार्थः—जिस प्रकार से गीले इंधनके संयोगसे अग्निमें नाना विधि धूम प्रगट होते हैं इसी प्रकार उस परमात्माके ऋक्, यजु, साम, अथर्व, इतिहास, पुराण, विद्या, उपनिषद्, श्लोक, सूत्र, व्याख्यान, अनुव्याख्यान यह सब श्वासभूत हैं ॥

इसमें इतिहासपुराणादि पांच नाम पृथक् २ ग्रहण किये हैं तथा और भी कहते हैं ।

सहोवाच, ऋग्वेद भगवोध्योमि यजुर्वेदः सामवेदमथर्वणंचतुर्थ
मितिहासपुराणं पंचमं वेदानां वेदं पित्र्यः राशिं दैवं निधिं वाको
वाक्यमेकायनं देवविद्यां ब्रह्मविद्यां भूतविद्यां क्षत्रविद्यां नक्षत्र
विद्याः सर्पदेवयजनविद्यामेतद्भगवोध्योमि ॥ छां० प्र० ७

नारद बोले ऋग्वेदको स्मरण करताहूं तथा साम, यजु, अथर्व
वेदको स्मरण करताहूं (इतिहासपुराणं पंचमं वेदानां वेदं) और
इतिहास पुराण पांचवां वेद पढ़ा है (पित्र्यं) श्राद्धकल्प (राशि)
गणितं दैवमुत्पातज्ञानम् जिससे देवताओंके किये हुए उत्पातका
ज्ञान होता है (निधि) महाकालादि निधिशस्त्र (वाकोवाक्य)
तर्कशास्त्र (एकायनं) नीति शास्त्र (देवविद्यां) निरुक्तम् (ब्रह्म
विद्याम्) ब्रह्मसम्बन्धी उपनिषद् विद्याकू (भूतविद्यां) भूततंत्रकू
(क्षत्रविद्यां) धनुर्वेदकू (नक्षत्रविद्यां) ज्योतिषकू (सर्पदेवयज-
न विद्यां) सर्प विद्यागारुडिगन्धयुक्त नृत्यगीतादि वाद्य शिल्प
ज्ञानकू भी मैं स्मरण करताहूं ॥

देखिये इस छान्दोग्यके वाक्यसे कितनी विद्या सिद्ध होगई
और यहांभी पुराण इनसे पृथक्ही ग्रहण कराहै और सुनिये ॥

अरेस्यमहतोभूतस्यनिश्वसितमेवैतद्यदृग्वेदोः यजुर्वेदः सामवेदो-
थर्वो गिरसइतिहासः पुराण विद्या उपनिषद्ः श्लोका सूत्राण्यनुव्या-
ख्यानानि व्याख्यानानीष्टः हुतभाशितं पायितमयञ्चलोकः पर-
श्चलोकः सर्वाणि च भूतान्यस्यैवैतानि सर्वाणि निश्व सितानि ॥
बृह० अ० ६।११

उस परमेश्वरके निश्वसित ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्व
वेद, इतिहास पुराणविद्या उपनिषद् श्लोक सूत्र व्याख्यान अनु-
व्याख्यान हैं जिसमें कोई कथाप्रसंग होता है सो इतिहास १
जिसमें सर्गादि जगत्की पूर्व अवस्थाका निरूपण होता है सो
पुराण २ उपासना और आत्मविद्याका प्रतिपादक वाक्य है सो
विद्या ३ उपास्य देवके रहस्यका नाम उपनिषद् है ४ जो श्लोक

नामसे मंत्र कहे जाते हैं वे श्लोक हैं ५ जो संचिप्त अर्थका प्रति-
पादक वाक्य है सो सूत्र है ६ जिस वाक्य में तिसका विस्तार
होता है सो व्याख्यान है और जिस वाक्यमें व्याख्यानको भी
स्पष्ट किया जाय सो अनुव्याख्यान है ॥

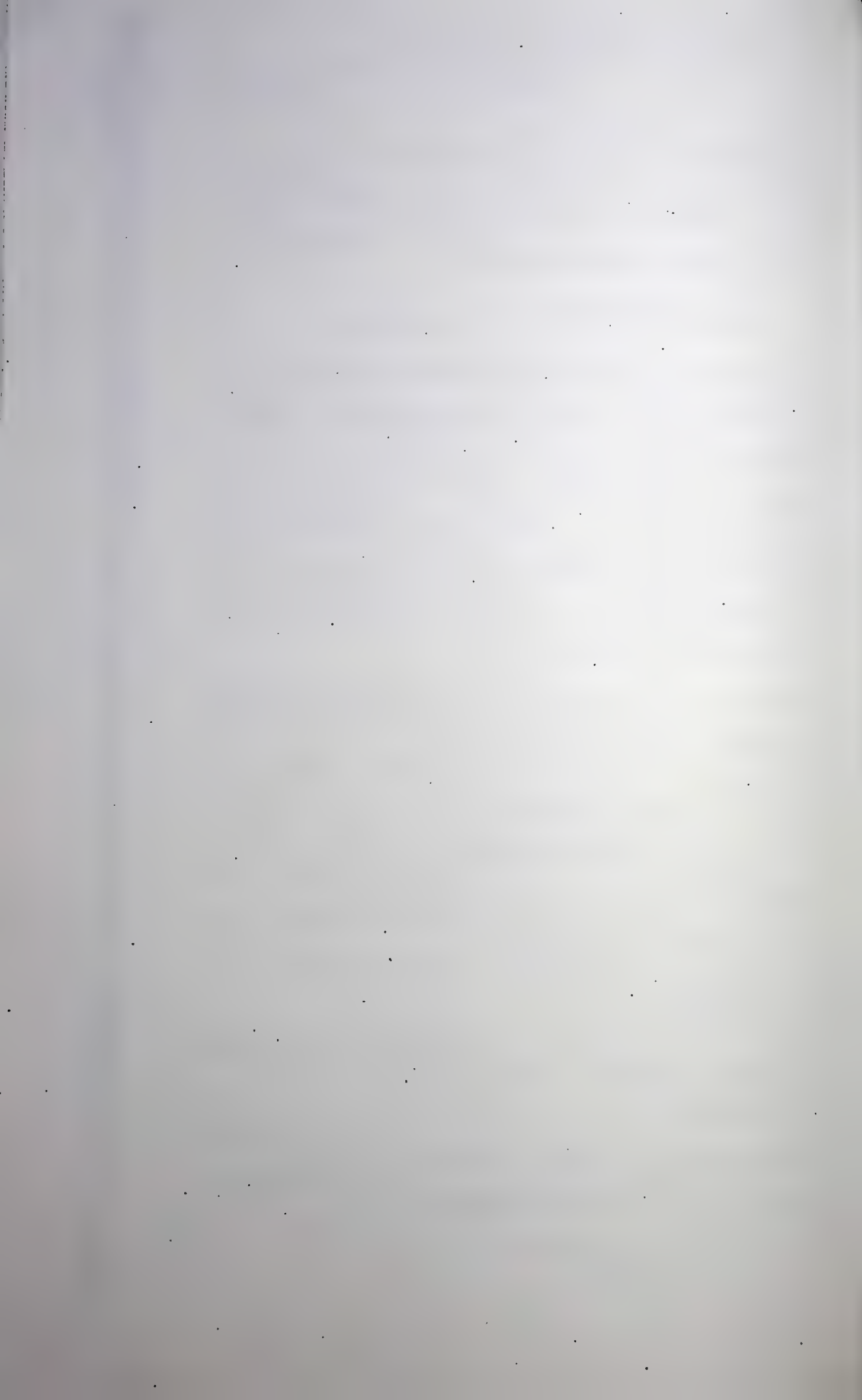
पुनः आश्वलायनसूत्र अ० ३ पंचयज्ञप्रकरणम् ।

अथ स्वाध्यायमधीयीत ऋचो यजुःषिसामान्यथर्वीगिरसो ब्राह्म-
णानिकल्पान् गाथानाराशं सीरितिहासपुराणानन्त्यमृताहुतीभि-
र्यद्वचोऽधीते पयसः कुल्या अस्य पितॄन् स्वधा उपक्षरन्ति यद्यजुः
षिघृतस्य कुल्या यत्सामानि मध्वः कुल्या यदथर्वीगिरसः सोमस्य
कुल्या यद्ब्राह्मणानिकल्पान् गाथा नाराशं सीरितिहासपुराणा-
नन्त्यमृतस्य कुल्याः स यावन्मन्येत तावदधीत्येत या परिदधाति नमो
ब्रह्मणे नमो स्त्वग्नये नमः पृथिव्यैनम ओषधीभ्यो नमो वाचे नमो
वाचस्पतये नमो विष्णवे महते करोमीति ॥

आशय यह है कि जो ऋगादि चारों वेदोंको और ब्राह्मणादि
ग्रंथोंको कल्प गाथादि सहित पढ़ते हैं उनके पितरोंका स्वधासे
अभिषेक होता है, ऋग्वेदके पढ़नेवालेके पितरोंको दूधकी कुल्या,
यजुर्वेदके पढ़नेवालोंके पितरोंको घृतकी कुल्या, सामके पढ़नेवाले
के पितरोंको मधुकी कुल्या, अथर्वार्द्धिरसके पढ़नेवालेके पितरोंको
सोमकी कुल्या, और ब्राह्मण कल्प नाराशंसी इतिहास पुराणके
पाठ करनेवालेके पितरोंको अमृतकी कुल्या प्राप्त होती है, इस
कारण इनका पाठ करना, ईश्वर अग्नि पृथ्वी वाक्पति विष्णु
देवको नमस्कार है ॥

और महाभाष्यमें भी ? आहिकमें शब्दप्रयोगविषयमें पुराण
को पृथक् गिना है ॥

सप्तद्वीपावसुमती त्रयो लोकाश्चत्वारो वेदाः सांगाः सरह
स्यावहुधा भिन्ना एकशतमध्वर्युशाखाः सहस्रवर्त्मा सामवेद



एकविंशतिधाबह्वृच्यन्नवधाऽथर्वणो वेदो वाकोवाक्यमितिहासः
पुराणं वैद्यकमित्येतावाच्छब्दस्य प्रयोगविषयइति ।

सातद्वीप सहित पृथ्वी तीनों लोक शिक्षाकल्पादि अंगसहित
चारों वेद (सरहस्याः) उपनिषद् एकसौ एक शाखा यजुर्वेदकी,
सहस्र शाखा सामवेदकी, इकीस शाखा ऋग्वेदकी, नौ शाखा
अथर्ववेदकी (वाकोवाक्यम्,) तर्कादि इतिहास पुराण वैद्यक
इनमें शब्दप्रयोग होता है, यदि नाराशंसीका नामही पुराण होता
तो साङ्ग लिखकर फिर पुराण लिखनेकी क्या आवश्यकता थी,
पूर्वोक्त ग्रंथोंके वाक्यसे यह बात सिद्ध है कि ब्राह्मणभाग उपनि
षद् सूत्रादिसे पृथक् ही कोई पुराण और इतिहास संज्ञावाले
ग्रंथ हैं यदि इतिहासका पुराण विशेषण मानो तो इतिहास
पुल्लिंग और पुराण नपुंसकलिंग है, सो पुल्लिंग और नपुंसक
लिंगका विशेषण हो नहीं सकता, इससे यह विदित होता है कि
पुराणसे इतिहासभी कोई पृथक् ग्रंथ है, सो न्यायके भाष्यकार
महर्षि वात्स्यायनजी चतुर्थ अध्याय प्रथम आह्निकके ६२ सूत्रपर
जो कथन करते हैं सो आपके सामने दिखाया जाता है, जिससे
विदित हो जायगा कि ब्राह्मणादि भागसे अतिरिक्त कोई पुराण-
तिहास संज्ञक ग्रंथ है ॥

समारोपणादात्मन्यप्रतिषेधः । न्या० अ० ४ आ० सू० ६२

(भाष्यम्) तत्र प्राजापत्यामिष्टिं निरूप्य तस्यां सार्ववेदसं
हुत्वाऽऽत्मन्यग्नीन्समारोप्य ब्राह्मणः प्रब्रजेदिति श्रूयते तेन विजा
नीमः प्रजावित्तलोकैषणायाश्चव्युत्थाय भिक्षाचर्यं चरन्तीति,
एषणाभ्यश्च व्युत्थितस्य पात्रत्रयान्तानि कर्माणि नोपपद्यन्ते
इति नाविशेषणकर्तुः प्रयोजकफलं भवतीति चातुराश्रम्य विधानाच्चे
तिहासपुराणधर्मशास्त्रेष्वेकाश्रम्यानुपपत्तिः तदप्रमाणमिति चेन्न प्रमा
णेन खलु ब्राह्मणेनेतिहासपुराणस्य प्रामाण्यमभ्यनुज्ञायते तेवा
खल्वेते अथर्वाङ्गिरस एतदितिहासपुराणस्य प्रामाण्यमभ्यवदन्

‘इतिहासपुराणं पंचमं वेदानां वेद इति’ तस्मादयुक्तमेतदप्रामाण्यमिति, अप्रमाणं च धर्मशास्त्रस्य प्राणभूतां व्यवहारलोपाल्लोकोच्छेदप्रसंगः दृष्टप्रवक्तृसामान्याच्चाप्रामाण्यानुपपत्तिः यएव मंत्रब्राह्मणस्य द्रष्टारः प्रवक्तारश्च तेष्वल्वितिहासपुराणस्य धर्मशास्त्रस्य चेति विषयव्यवस्थापनाच्च यथाविषयं प्रामाण्यम्, अन्यो मंत्रब्राह्मणस्य विषयोऽन्यश्चेतिहासपुराणधर्मशास्त्राणामिति, यज्ञो मंत्रब्राह्मणस्य लोकवृत्तमितिहासपुराणस्य लोकव्यवहारव्यवस्थापनं धर्मशास्त्रस्य विषयः तत्रैकेन सर्वव्यवस्थाप्यत इति यथाविषयेमेतानि प्रमाणानि इन्द्रियादिवदिति ।

(भाषा) प्राजापत्य इष्टिका निरूपण करके उसमें सार्ववेदस नाम याग करनेके अनन्तर अग्निको आत्मामें समारोपण करके ब्राह्मण संन्यासाश्रमको धारण करै ऐसी विवि श्रुतियोंमें लिखा है, इससे जाना जाता है कि प्रजावित्तस्वर्लोकादेकी इच्छासे निवृत्त हुएको यतिधर्मका आचरण करना उचित है, और इसी कारण संन्यासीको पात्र चयान्तादि क्रियायें नहीं होती, इसहेतु यावत् कर्म मात्रके सभी अधिकारी नहीं हो सके, किन्तु भिन्न भिन्न कर्मोंके भिन्न २ अधिकारी होते हैं, और यदि यह कहो कि हम एकही कोई आश्रम मानेंगे, अनेक आश्रम न मानेंगे तब सभी का कर्माधिकार एकही होगा तो ऐसा नहीं हो सक्ता क्योंकि इतिहास पुराण और धर्मशास्त्र के ग्रंथोंमें अनेक आश्रमकी विधि लिखी लिखाई है, तब एकही आश्रम कैसे हो सक्ता है, नचेत् एक कहो कि इतिहासादि ग्रंथोंका प्रमाणही नहीं मानते हैं, तौ यह भी नहीं हो सक्ता है क्योंकि प्रमाणभूत ब्राह्मण इतिहासादि ग्रंथोंके प्रमाणकी आज्ञा करता है, तथा यह अथर्वाङ्गिरसभी इसका प्रमाण कहते हैं कि इतिहासपुराण वेदोंमें पांचवाँ वेद है, इससे इनका प्रमाण नहीं है ऐसा कहना महा अनुचित है और धर्मशास्त्र का प्रमाण न करोगे तौ प्राणियोंका व्यवहार लोप होनेसे सृष्टि ही उच्छिन्न होजायगी, और दोनोंके देखने और कथन करनेहारे

भी तो एकही है, जो मंत्रब्राह्मणके द्रष्टा वक्ता हैं, वही धर्मशास्त्र पुराण इतिहासके कहनेहारे हैं, फिर इनका अप्रमाण कैसे होसका है, तथा भिन्न भिन्न विषयोंके व्यवस्थापन करनेसे भी तो यथा विषय इनका प्रमाण है, मंत्र ब्राह्मणका विषय और है और धर्म शास्त्र पुराण इतिहासादिका विषय और है यज्ञ मन्त्र और ब्राह्मण का और लोकवृत्तान्तइतिहासपुराणका, तथा लोकवृत्तान्तव्यवस्था पन धर्मशास्त्रका विषय है उनमें से एकसे सबही विषय नहीं व्यव स्थापित होते, इस से यथा विषयमें सबही प्रमाण इन्द्रियोंकी नाई अर्थात् जैसे रूप रस गन्ध स्पर्श शब्द इत्यादि सबही विषय किसी एकही इन्द्रीसे नहीं जाने जाते इसकारण इन पाँचोंके क्रम से नेत्र जिह्वा नासिका त्वक् कर्ण सभी पृथक् प्रमाण माने जाते हैं इत्यादि इससे स्पष्टरूपसे जान पड़ता है कि यज्ञरूप प्रतिनियत असाधारण विषयोंके प्रतिपादक मंत्र ब्राह्मण ग्रंथोंसे अतिरिक्त ही कोई पुराणेतिहास संज्ञक लोकवृत्तरूप असाधारण विषयोंका प्रतिपादक वाक्यकलाप है यदि ब्राह्मणभागोंकी इतिहास पुराण पदार्थता ऋषियोंको अभिमत होती तो वोह पुराणादिके प्रामा- ण्य व्यवस्थापन करनेकी इच्छासे उनके अप्रामाण्यकी शंका करके (प्रमाणभूत ब्राह्मण इतिहास पुराणोंकी अभ्यनुज्ञा करतेहैं) इत्यादि पूर्वोक्त बहुतसा कैसे कहते, और प्रयास करते ब्राह्मणको इतिहास पुराणसंज्ञक होनेमें वैसा कहना असंगत होता जिसकी बुद्धि कुछभी ठिकाने होगी और कैसाभी मूर्ख क्यों न हो पर अपने प्रमाणका साधक अपने को कभी न कहैगा और सुनिये वेदमें भी इतिहास पुराणका वर्णन है ।

सवृहतीं दिशमनुव्यचलत् तमितिहासश्च पुराणञ्च गाथाश्च
नाराश०सीश्चानुव्यचलन् इतिहासस्यचवैसपुराणस्यच गाथा
नांच नाराश०सीनांच प्रियंधाम भवति य एवंवेद ॥ अथर्व०
का० १५ प्र० ६ अनु० १ मं० १२



यह बात वेदसेभी स्पष्ट होगई अब इसके लेख देखिये—

एवमिमेसर्वेवेदानिर्मितास्सकल्पः सरहस्याः सत्राह्वणाः सोपनिषत्काः सेतिहासाः सान्वाख्यानाः सपुराणाः सस्वराः ससंस्काराः सनिरुक्ताः सानुशासनाः सानुमार्जनाः सवाकोवाक्यास्तेषां यज्ञमभिपद्यमानानां छिद्यते नामधेयं यज्ञमित्येवमाचक्षते (गोपथ पूर्वभागः द्वितीयप्रपाठकः)

यदि ब्राह्मणग्रंथोंहीमें इतिहास पुराणका अन्तर्भाव होता तो गोपथमें इस प्रकार कल्प ब्राह्मण उपनिषद् इतिहास पुराणादि पृथक् पृथक् कैसे लिखते इससे भी ब्राह्मण से अतिरिक्तही पुराण इतिहास जाना जाता है, इस कारण जो पुराणको इतिहासका विशेषण कहते हैं सो प्रमादी हैं क्योंकि सेतिहासाः सपुराणाः ऐसा पृथक् कहनाही इनमें भेद प्रतीति कराता है, जब इतिहास सहित और पुराण सहित ऐसे दो शब्द कहे तो निःसंदेह यह दोनों पृथक्ही हैं, और सूत्रकारने भी तो अश्वमेधप्रकरण में आठवें दिन इतिहास और नवमें दिन पुराण पाठ लिखा है, अब यह तो निश्चय होगया कि पुराण इतिहास आदि ब्राह्मणों से अतिरिक्तही कोई ग्रंथ है, परन्तु अब पुराण किसे कहते हैं और वोह कैसे बना उनके सुनने वा पढ़ने से क्या लाभ है सो मनुस्मृति और महाभारतादि ग्रंथोंसे दिखलाते हैं, कि महाभारत में भी पुराण सुननेकी विधि लिखी है इससे भारतसे पृथक् पुराण हैं यह सिद्ध होता है ॥

स्वाध्यायंआवयेत्पित्र्येधर्मशास्त्राणिचैवहि ।

आख्यानानीतिहासांश्च पुराणान्यखिलानिच ॥ मनु०

आद्धमें वेद धर्मशास्त्र आख्यान इतिहास पुराण सूत्रादि इन सबको सुनावै इससे विदित होता है कि, मनुस्मृति पुराण नहीं हैं किन्तु पुराण किसी और ग्रंथका नाम है और देखिये—

पुराणमितिहासश्च तथाख्यानानि यानि च । महात्मनां च
चरितं श्रोतव्यं नित्यमेव तत् ॥ महाभारते दानधर्म-ये च भाष्य
विदः केचिद्ये च व्याकरणे रताः ॥ अधीयन्ते पुराणानि धर्म-
शास्त्राण्यथापि च ॥ ६० अ० ॥

पुराण इतिहास आख्यान महात्माओंके चरित्र नित्य सुनने
योग्य हैं ? कोई महाभाष्य जाननेवाले जो व्याकरणमें प्रीति
रखते हैं तथा जो धर्मशास्त्र और पुराण भी पढ़ते हैं फिर वाल्मी-
कीय रामायण बालकाण्डमें राजा दशरथ और सुमन्त्रका सम्वाद
इस प्रकार है कि जिससे पुराण प्राचीनही प्रतीत होते हैं ।

एतच्छ्रुत्वारहः सूतो राजानमिदमब्रवीत् ॥ श्रूयतां यत्पुरावृत्तं
पुराणेषु मया श्रुतम् ॥ वाल्मी० बालकाण्ड ॥

यह सुनकर सूतने एकान्तमें राजासे कहा सुनो महाराज ? यह
प्राचीन कथा है जो पुराणोंमें मैंने सुनी है इसके अनन्तर सम्पूर्ण
रामजन्मका चरित्र जो भविष्य या सब राजाको सुनाया कि
रामचंद्र तुम्हारे यहां उत्पन्न होंगे शृंगी ऋषिको बुलाइये और
वैसाही हुआ ॥

एवं वेदे तथा सूत्रे इतिहासेन भारतम् ।

पुराणेन पुराणानि प्रोच्यन्ते नात्र संशयः ॥

इस प्रकार वेदोंमें सूत्रोंमें इतिहाससे भारतका ग्रहण और
पुराणोंसे अष्टादश पुराणोंका ग्रहण होता है और महाभारत में
लिखा है कि—

अष्टादश पुराणानि कृत्वा सत्यवतीसुतः ।

पश्चाद्भारतमाख्यानं चक्रे तदुपवृद्धितम् ॥ महा०

अठारह पुराणोंको व्यासजी संकलित करके फिर महाभारत
की रचना करते हुए अब पुराणोंका लक्षण कथन करते हैं ॥

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च ।

वंशानुचरितं चैव पुराणं पंचलक्षणम् ॥

सृष्टिकी उत्पत्ति प्रलय वंशमन्वन्तर वंशानुचरित्र यह पुराणके पांच लक्षण हैं, जिसमें यह पांच लक्षण हो वोह पुराण कहाँता है लिंगपुराणके प्रथम अध्याय से विदित होता है कि पुराणोंका बड़ा विस्तार था जो ब्रह्मा जीने बनाये थे व्यासजीने उन विस्तृत ग्रंथोंको संक्षिप्त करके अठारह विभाग करदिये हैं, क्या यह कथायें व्यासजी से पूर्व नहीं जो यह माना जाय कि पुराण नवीन हैं और स्वामीजी ने ३२६ पृष्ठमें (कर्ता) यह शब्द लिखा है जिसके माने बनानेवाले के हैं सो यह उनकी भूल है वहाँ (कृत्वा) शब्द है (जिसके अर्थ संक्षेप से करके) के हैं इतिहासोंको महाभारतमें मिलादिया इस कारण इतिहास नाम महाभारत का होगया है इससे यह न समझना चाहिये कि पुराण आधुनिक हैं किन्तु जगत्की पूर्व अवस्था कहनेसेही इनका पुराण नाम है व्यासजीने इन कथाओं का संग्रह किया है और उसमें जिस अवतार और जिस बातकी प्रधानता रखी है उसी नामपर उस पुराण का नाम रखदिया है विना पुराणोंके और ऐसा कौनसा ग्रंथ है जिसमें सत्र पूर्व राजों के चरित्र वर्णन हैं इसी कारण लिखा है कि—

पुराणमानवोधर्मः सांगोवेदश्चिकित्सितम् ।

आज्ञासिद्धानिचत्वारि नहन्तव्यानि हेतुभिः ॥ १ ॥ भा०

पुराण मनुस्मृति साङ्गवेद चिकित्सा इन चारोंकी आज्ञा स्वतः सिद्ध है जब ब्राह्मणादि ग्रंथ पुराणोंकी महिमा कहते हैं तौ पुराणों को क्यों न माने जहाँ सज्जन पुरुष बैठे हों उनमें कोई किसी की बड़ाई करे तौ वोह बड़ाई किया हुआ बड़ाई करनेवाले से अलग होता है इसी प्रकार जब पुराणों की महिमा ब्राह्मणादि ग्रंथोंमें है तौ ब्राह्मणादिकों से अतिरिक्तही कोई पुराण ग्रंथ है यह स्पष्ट विदित होता है और बुद्धिमानों को मानना उचित है ॥

भास्करप्रकाश—

कोई पूछे कि प्रमाण तौ आप को यह देना था कि भागवतादि का नाम पुराण है, शतपथादि का नहीं। आप यह लिखते हैं कि इनका पढ़ना अवश्य है। भन्ना इनका पढ़ना अनावश्यक कौन बताता था। स्वामीजी ने तौ यही लिखा है कि भागवतादि पुराण नहीं किन्तु नवीन हैं, शतपथादि पुराण हैं, उन्हीं का पढ़ना आवश्यक है, उन्हीं के पढ़ने से देवता प्रसन्न होते हैं। अच्छा उत्तर दिया ? कोई गावे शीतला, मैं गाऊं मसान।

आप यह तौ ध्यान दें कि आप को सिद्ध क्या करना है और सिद्ध क्या करते हैं। मैं फिर स्मरण दिलाता हूं कि “भागवतादि पुराण हैं” यह आपका साध्य है। “शतपथादि पुराण हैं” यह स्वामी जी का साध्य है। अब न तौ ईश्वर के श्वास होने से यह सिद्ध होता है कि भागवतादि का नाम पुराण है, न यह सिद्ध होता है कि शतपथादि को पुराण नहीं कहते, किन्तु आप के लेखानुसार इतना अवश्य निकलता है कि पुराणविद्या उपनिषद् श्लोक सूत्र व्याख्यान अनुव्याख्यानदि सब ईश्वर का श्वास है। मैं यह पूछता हूं कि यदि श्लोक ईश्वर के श्वास हैं तौ क्या “त्रयोवेदस्य कर्त्तारो भण्डधूर्त्तनिशाचराः” इत्यादि नास्तिकनिर्मित श्लोक भी ईश्वर के श्वास हैं ? इस पक्ष का अच्छे प्रकार खण्डन और इस शतपथ की कण्डिका का अर्थ सच बेरे बनाए “ऋगादिभाष्यभूमिकेन्द्रपरामे द्वितीयोऽंशः” में लिखा है, जिन को विशेष जिज्ञासा हो, वहां देखलें।

साध्य की सिद्धि का यहां भी पता नहीं। क्योंकि इससे भी ब्राह्मण गून्थ पुराण नहीं हैं, यह भी सिद्ध नहीं होता और न यह होता है कि भागवतादि का नाम पुराण है। किन्तु तात्पर्य यह है कि इस सूत्र में स्वाध्याय [पढ़नेरूपी] यज्ञ को पितृयज्ञ की उपमा दी गई है कि जैसे पितरों की सेवा दुग्ध घृतादि से की जाती है वैसे ब्रह्मचारी जो गुरुकुल में रहता है वह अपने माता पिता को घर छोड़ आता है, उसका वेदादि पढ़ना ही मानो पितृसेवा है। वह जो ऋग्वेद पढ़ता है सो ही मानो पितरों के लिए दूध की कुल्या [नहर] बहाता है, यजुः पढ़ता है सो घृत की, जो साम पढ़ता है सो मधु की, जो अथर्व पढ़ता है सो सोम की, जो ब्राह्मण गून्थों को पढ़ता है जो कि कल्प गाथा नारायणी इतिहास पुसण कहते हैं सो मानो अमृत की नहरें बहाता है। इस से यह तौ सिद्ध न हुआ कि ब्राह्मण गून्थ

पुराण नहीं हैं, न यह कि भागवतादि पुराण हैं, किन्तु चारों वेदों को कह कर फिर ब्राह्मणों को वेदों के पश्चात् और पृथक् गिनाने से ब्राह्मणों का वेदों से पृथक् होना, वेद न होना, वेदों से दूसरी श्रेणी का होना और उनके पुराण इतिहास गाथादि नाम होना ही पाया जाता है।

यदि उक्तमहाभाष्य में यहीं ब्राह्मण पद भी आता और इतिहास पुराण शब्द भी भिन्नविषयक आते तौ सिद्ध हो जाता कि ब्राह्मण से इतिहास भिन्न हैं परन्तु जब ब्राह्मण पद नहीं और इतिहास पुराण शब्द हैं तौ हम कह सकते हैं कि ये ही पद ब्राह्मण के ऐसे भाग के नाम हैं जिस में कोई कथाप्रसङ्ग है वह ब्राह्मण भाग इतिहास है। जैसे :—

जनमेजयोह वै पारिक्षितोमृगयाञ्चरिष्य हंसाभ्यामशिक्षः नुपावत्स्थ इति तावूचतुर्जनमेजयं पारिक्षितसभ्या जगाम । सहोवाच नमोवां भगवन्तौ कौनुभगवन्त विति । गोपथ । प्रपाठक २ ब्रा० ५ ॥

यहां परीक्षित के पुत्र जनमेजय की मृगयायात्रा और दो परमहंसों (सन्यासियों) का मिलना उनको नमस्कार करके पूछना कि आप कौन हैं ? इत्यादि इतिहास है और मृष्टि के आरम्भ समय के ऋषियों का वर्णन जिसमें हो वह ब्राह्मण ग्रन्थों का भाग "पुराण" कहा जाता है। जैसे :—

अग्नेर्ऋग्वेदोवायोर्यजुर्वेदः सूर्गात्तानवेदः । शतपथ । ११ । ५ ।

अग्नि वायु आदि ऋषियों से ऋगादि वेद हुवे । अग्नि वायु आदि तत्त्व न थे किन्तु जीव विशेष थे । यह सायणाचार्य अपनी ऋग्वेदभाष्य भूमिका में लिखते हैं :—

जीवविशेषैरग्निवायवादित्यैर्वेदानामुत्पादितत्वात् ॥

अर्थात् जीव विशेष अग्नि वायु आदित्यों ने वेदों को प्रकट किया है । इस से इस रीति से इतिहास और और पुराणये दोनों नाम ब्राह्मणों के ही हुवे । इतिहास पुराण का जो अर्थ हमने किया और ब्राह्मण ग्रन्थों के उदाहरण दिये यही अर्थ आप भी द० ति० भा० पृ० ४६ पं० १७ में लिखते हैं कि "जिस में कोई कथा प्रसङ्ग होता है सो इतिहास । जिसमें जगत की पूर्वावस्था सर्गादि का निरूपण होता है सो पुराण" सो ये दोनों बातें ब्राह्मण ग्रन्थों में (जैसा कि हमने

ऊपर गोपथ और शतपथ का प्रमाण दिया) भी पाई जाती हैं, इससे ये इतिहास पुराण हुये। यदि कोई यह शङ्का करे कि एक ही स्थान पर ब्राह्मण पुराण इतिहास गाथा नाराशंसी ये सब नाम क्यों आये हैं जब कि ये सब एकार्थ हैं। तौ उत्तर यह है कि “ब्राह्मण” यह सामान्य नाम है और इतिहास पुराण गाथा नाराशंसी आदि उसके विशेषों के नाम हैं। जैसे “गृह” सामान्य शब्द है और हर्म्य (महल) भवन शाला आदि उसके विशेष हैं। इसी प्रकार यहां भी जानो। और आपने जो यह कहा कि साङ्ग कहने से अङ्गों में नाराशंसी भी आ जाती फिर साङ्ग लिख कर पुराण क्यों पृथक् लिखते। सो महाशय ! क्या आप वेदों के छः अङ्गों को भी नहीं जानते कि शिक्षा कल्प व्याकरण निरुक्त छन्द और ज्योतिष ये छः अङ्ग कहाते हैं। इन में कल्प कहने से श्रौतसूत्रादि का गृहण है। और पुराण इतिहास ये दो नाम ब्राह्मणों के उस विशेष भाग के हैं जिसमें ऊपर लिखे अनुसार कथादि का प्रसङ्ग है। और यह भी जानना चाहिये कि यदि उपनिषदादि मिलाकर सब वेद हैं तौ “चत्वारो वेदाः” कह कर फिर “सरस्वत्याः” इत्यादि की क्या आवश्यकता रहती। भिन्न गृहण से जाना जाता है कि ये गृन्थ वेद से भिन्न ही हैं।

एक ही गृन्थ का सामान्य विषय एक होता है और उसी गृन्थ के विशेष भागों के विशेष विषय भिन्न भिन्न होते हैं। इसी प्रकार ब्राह्मण सामान्य का विषय यज्ञ है। यह लिख कर ब्राह्मण के वे विशेष भाग जिनका नाम पुराण और इतिहास है, जिन के दो उदाहरण भी हमने ऊपर लिखे हैं, उन भागों का भिन्न “लोकवृत्त” विषय है। इस कथन से विषय भेद ही सिद्ध होता है, गृन्थ भेद नहीं। क्या एक गृन्थ में अनेक विषय नहीं होते ? आप के ही इस द० ति० भा० में अनेक विषय हैं, फिर क्या यह एक गृन्थ नहीं ? और यह कि इतिहास पुराण की प्रामाणिकता में ब्राह्मण ने प्रमाण दिया है कि यह पञ्चम वेद है। इस का उत्तर यह है कि वेद तौ ४ ही हैं। इतिहास पुराण को पञ्चमवेद कहना उस की प्रशंसा है, जैसे किसी पुरुष की प्रशंसा में कहते हैं कि यह तौ दूसरा युधिष्ठिर है वा दूसरा बृहस्पति है। यथार्थ में युधिष्ठिर वा बृहस्पति दूसरे नहीं हैं परन्तु धर्मात्मा और विद्वान अधिक होने से दोनों की उपमा दी जाती है। इसी प्रकार इतिहास पुराण संज्ञक ब्राह्मण भाग की यह प्रशंसा है कि ये पांचवां वेद है। क्या आप यथार्थ में जैसे चारों वेद अपौरुषेय हैं अर्थात् किसी पुरुष के बनाये नहीं इसी प्रकार यह

समझते हैं कि इतिहास पुराण भी वास्तव में ५ वां वेद हैं और यह भी औषधेय हैं ? यदि ऐसा है तो आप अन्य पौराणिकों के सदृश ये भी न मानते होंगे कि पुराणों के कर्त्ता व्यास हैं ! अन्त में आप को भी स्वीकार करना पड़ेगा कि यह वाक्य प्रशंसापरक है । यदि यह कहो कि ब्राह्मण का कोई भाव पुराण है तो उसमें अपनी प्रशंसा आप ही क्यों की गई, तो उत्तर यह है कि मनु ने भी अपनी प्रशंसा में यह कहा है कि—

उत्पद्यन्ते च्यवन्ते च यान्यतोऽन्यानि कानिचित् ।

अर्थात् अल्पविद्या वाले लोगों के बनाये गून्थ आज बनते हैं, कल नष्ट होते हैं, जो कि इस मनु के अतिरिक्त कोई गून्थ हैं । इस से मनु से अपना प्रमाण और प्रशंसा, दूसरों (अल्पविद्यारचितों) का अपमान और निन्दा की है, सो ठीक है । यदि अपने विषय में उचित प्रशंसा वा कथन कोई न करे तो दूसरे द्वारा प्रशंसा न होने तक उस में श्रद्धा वा प्रामाण्य कैसे हो । यदि अपने विषय में स्वयं प्रामाणिकता का कहना अच्छा नहीं तो आपने ही अपने इस द० ति० भास्कर की प्रशंसा और प्रामाणिकता को जताने के लिये आरम्भ में सुखी से गून्थों के नाम और टाइटिल पेज पर “वेदब्राह्मण शास्त्र स्मृति पुराण वैद्यकादि प्रमाणों से अलंकृत” यह प्रशंसा और प्रामाण्य क्यों लिखा है और जब आप ने ही टाइटिल पेज पर वेद शब्द लिखकर फिर ब्राह्मण और पुराण शब्द भिन्न लिखे हैं तो औरों को क्यों कहते हो कि पुराण ५ वां वेद है । यदि पुराण ५ वां वेद हैं तो जैसे वेद कहने से ऋग्, यजुः, साम, आथर्व इन ४ का अर्थ आ जाता है, वैसे ही ५ वें का भी अर्थ आ जाता ॥

वेद में सामान्य शब्द इतिहास पुराणादि हैं, किसी शिवपुराण अग्निपुराणादि आप के अभिमत पुराण का नाम नहीं । वेद में यदि “मनुष्य” शब्द आ जावे तो क्या आप कहेंगे कि देखो वेद में मनुष्य शब्द है और हम (पं० ज्वाला-प्रसाद) भी मनुष्य हैं इस लिये हमारा वर्णन वेद में आया है । इस का सविस्तर उत्तर मेरे बनाये “ऋगादिभाष्यभूमिकेन्द्रपरागे द्वितीयोऽङ्कः” में छपा है, वहां देख लीजिये । जैसे आपने महामोहविद्रावण, सत्यार्थ-भास्कर, सत्यार्थविवेक, महाताबदिवाकर, मूर्त्तिरहस्य, मूर्त्तिपूजा आदि पुस्तकों के आशयों को इकट्ठा करके पिष्टपेषण किया है वैसा हम अच्छा नहीं समझते ॥

आप तौ अभी पुराणों को ५ वां वेद लिख चुके हैं फिर “सर्वे वेदाः” कहने में इतिहास भी (जो आप के लेखानुसार ५ वां वेद है) अन्तर्गत था, फिर “सेतिहासाः” क्यों कहा ? इस लिए आप का तर्क आप ही के पक्ष में दोषारोपण करता है। ब्राह्मण शब्द सामान्य कह कर भी ब्राह्मणान्तर्गत उपनिषद और इतिहास का फिर से गिनाना यह सूचित करता है कि ब्राह्मण वा वेद के जिस भाग में विशेष कर ब्रह्मविद्या है उस भाग का नाम भिन्न उपनिषद पड़ा और जिस ब्राह्मण भाग में लोकवृत्तान्त है उस का नाम भिन्न इतिहास पड़ा। इसी से वे पुनः भी गिनाए गये। “भगवद्गीता” महाभारत के अन्तर्गत है परन्तु विशेष प्रकरण का विशेष नाम “भगवद्गीता” यह भिन्न भी है। इसी प्रकार यहां जानिये।

धन्य हैं ! आप का ऐसे निश्चय हो जाता है तभी तौ इतना पुस्तक बढ़ाय बैठे। भला “८ वें ९ वें दिन में पुराण इतिहास सुनना आदि इससे यह कैसे सिद्ध हो गया कि ब्राह्मणों से पुराणादि पृथक् हैं ? प्रत्युत यह सिद्ध हो गया कि सूत्रकार के समय में आप के माने व्यासकृत १८ पुराण तौ थे ही नहीं, इससे सूत्रकार ने ब्राह्मण ग्रन्थों ही को लक्ष्य करके इतिहास पुराण का पाठ लिखा है। व्यासजी से पूर्व भी कई राजाओं ने अश्वमेध यज्ञ किये उन यज्ञों में ८ वें ९ वें दिन ब्राह्मण ग्रन्थों ही का पाठ किया होगा।

द० ति० भा० पृ० ५० और ५१ में मनु, महाभारत, वाल्मीकीयरामायण, अमरकोष के श्लोक जिन में पुराणशब्द और पुराण का लक्षण है, लिखे हैं परन्तु उन में से किसी में भी ब्रह्मवैवर्त्तादि का नाम पुराण है “यह नहीं लिखा तौ फिर सामान्य पुराण शब्दमात्र आने से कुछ भी सिद्धि नहीं हो सक्ता हां, इस पुराण सिद्धिप्रकरण भरमें केवल एक एक श्लोक द० ति० भा० पृ० ५० में लिखा है कि-

एवं वेदे तथा सूत्रे इतिहासेन भारतम् ।

पुराणेन पुराणानि प्रोच्यन्ते नात्र संशयः ॥

सो इस श्लोक का कुछ पता नहीं लिखा कि यह किस ग्रन्थ का श्लोक है। हमारी समझ में तौ यह पं० ज्वालाप्रसाद का ही कृत्य है। जैसा इस श्लोक में लिखा है कि “इस प्रकार वेद व सूत्र में इतिहास से भारत और पुराण से पुराणों का ग्रहण है इस में संशय नहीं”। ऐसा ऊपर के लिखे वेद ब्राह्मण महाभाष्यादि में

कहीं भी नहीं। मनु, रामायण को तो आप भी व्यासजी से पूर्व रचित मनाते हैं फिर मनु वा वाल्मीकि के प्रमाणों से व्यासकृत पुराणों का गूहण करना अज्ञान नहीं तो क्या है ? इति ।



मीक्षा—स्वामी दयानन्दजी बड़े मजे के मनुष्य थे आप को यहां बहुत ही दूर की सूझी आप यहां पर पुराणों को तो गण्य बतलाते हैं और शतपथादि ब्राह्मण जो कि वेद हैं उनको पुराण बतलाते हैं इस के ऊपर पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्र “मध्याहुतयोहवा” “पुनस्तत्रैवक्षीरो-दन” यह दो प्रमाण शतपथ के देकर दिखलाते हैं कि पुराण और इतिहास को तो ब्राह्मण ग्रन्थ भी प्रमाण मानते हैं इस के ऊपर पं० तुलसीरामजी लिखते हैं कि पुराण मान्य हैं इस को कौन नहीं मानता किन्तु प्रश्न तो यह है कि श्रीमद्भागवतादि पुराण हैं और ब्राह्मण ग्रन्थ पुराण नहीं इस के ऊपर पं० ज्वाला-प्रसादजी को लिखना था सो कुछ नहीं लिखा इस के ऊपर यदि कोई ज्ञाता विचार करे तो मालूम हो जावेगा कि स्वामी दयानन्द के दो पतराज हैं एक तो यह कि पुराण प्रमाण नहीं दूसरा यह कि शतपथादि ब्राह्मण पुराण हैं इन दो प्रश्नों में से प्रथम प्रश्न का उत्तर मिश्र ज्वालाप्रसादजी ने दिया है कि पुराणों को तो ब्राह्मण भी प्रमाण मानते हैं स्वामी दयानन्दजी ने जो ब्राह्मणों को पुराण बतलाया है इस कपोल कल्पित मनगढ़ंत सिद्धान्त का उत्तर आगे दिया जावेगा प्रथम प्रश्न की पुष्टि में मिश्र ज्वालाप्रसादजी और भी प्रमाण देते हैं “सयथाद्रैन्ध्रान्तेः” और “सहोवाच ऋग्वेद भगवोऽध्वेमि” “अरेस्यमहतोभूतस्य” “सप्तदीपावसुप्रती” इन प्रमाणों से यह पुष्टि होगई कि पुराणमान्य और प्रमाण हैं इस के अलावा पं० ज्वालाप्रसादजी ने यह भी सोचा कि समाजी लोग बैठकबाजी बहुत किया करते हैं जब उनका सिद्धांत गिरने लगे तब वे अपने सिद्धान्त की रक्षा के लिये चाणक्यनीति आदि को स्वतः प्रमाण मान लेते हैं और यदि उनके सिद्धान्त में हानि पहुंचावे तो फिर वे ब्राह्म-णादि के प्रमाण को प्रमाण नहीं मानते इसी रीति का अवलम्बन करके सम्भव है कि कोई आर्यसमाजी यहां के लिखे हुए ब्राह्मणादि के प्रमाणों को प्रमाण न माने और यह कह उठावे कि मिश्र ज्वालाप्रसादजी ने जिन ग्रन्थों का प्रमाण दिया है वे समाज को मान्य नहीं किसी मनुष्य को यह कहने का अवसर न मिले इस लिये पं० ज्वालाप्रसादजी “सबृहती दिशमनुष्यचलत्” यह अथर्व वेद का भी प्रमाण देते

हैं कि पुराणों को तो वेद भी प्रमाण मानता है इन सब मन्त्रों के प्रत्युत्तर में पं० तुलसीराम केवल यह लिखते हैं कि पं० ज्वालाप्रसादजी को यह सबूत देना चाहिये कि ब्राह्मण ग्रन्थों को छोड़कर शिवपुराणादि का नाम पुराण कहाँ लिखा है किन्तु पं० तुलसीराम यह न समझे कि मिश्र ज्वालाप्रसाद यहां पर केवल इतना सिद्ध करते हैं कि पुराण प्रमाण हैं उनके प्रमाण होने में कोई भी मनुष्य बाधा नहीं डाल सकता जब कि वेद भी पुराणों को प्रमाण मानता है तब फिर ऐसा कौन आस्तिक होगा जो पुराणों के लिये शिर हिलावे ।

अब रही बात यह कि श्रीमद्भागवतादि पुराण हैं इस में पहिले तो आर्य-समाज को यह सबूत देना चाहिये कि श्रीमद्भागवतादि पुराण नहीं हैं इस में यह प्रमाण है इस में तो स्वामी दयानन्द एक भी प्रमाण नहीं दे सके और न कोई आधुनिक समाजी दे सकता है यदि कोई समाजी यह कहने लगे कि स्वामी दयानन्दजी ने तो “ब्राह्मणानीतिहासान् पुराणानि कल्पान्गाथा नारांशसीरिति” यह प्रमाण दे दिया है इस के ऊपर हम कह सकते हैं कि प्रमाण नहीं दिया किन्तु एक निन्दित चालाकी चलकर संसार के मनुष्यों की आंखों में धूल झांकी है गृहसूत्र के नाम से इतना पाठ अपने मन से गढ़कर तैयार किया है ऐसा पाठ किसी भी गृहसूत्र में नहीं है जब स्वामीजी को यह मालूम हुआ कि मनुष्य गृहसूत्र देख लेंगे और हमारी चालाकी खुल जायेगी इस बात को छिप्ताने के लिये स्वामी दयानन्द ने गृहसूत्र के आगे आदि पद मिला दिया है अर्थात् इस प्रमाण के नीचे लिख दिया कि “यह गृहसूत्रादि का बचन है” जब इनमें पर भी मन न भरा तब आगे लिखते हैं कि “जो ऐतरेय शतपथादि ब्राह्मण लिख आये” जो पाठ स्वामी दयानन्दजी ने लिखा है वह ऐतरेय शतपथादि किसी ब्राह्मण में भी नहीं है क्या कोई भी समाजी स्वामी दयानन्द के लिखे प्रमाण को कहीं पर दिखाना सकता है त्रिकाल में भी नहीं दिखला सकता जब किसी स्थान में भी ऐसा पाठ नहीं फिर मनगढ़ंत कपोल कल्पित पाठ से यह कैसे सिद्ध होगया कि ब्राह्मण ग्रन्थ पुराण हैं और श्रीमद्भागवतादि पुराण नहीं इसके अलावा “ब्राह्मणानीतिहासान् पुराणानि कल्पान्गाथा नारांशसीरिति” इस पाठ का यह कौन अर्थ कर सकता है कि शतपथादि ब्राह्मणों का नाम पुराण है स्वामी दयानन्दजी तथा दो लाख आर्यसमाजियों को भले ही विभक्ति का ज्ञान न हो किन्तु जरा सा व्याकरण पढ़ा हुआ मनुष्य भी यह जान लेगा कि यह समस्त पद द्वितियान्त कर्म और कर्म के विशेषण हैं इस संस्कृत में न कर्त्ता है न

किया ऐसे कान पूँछ कटे संस्कृत का अर्थ वही करेंगे कि जिन को कभी स्वप्न में भी संस्कृत के अक्षरों से काम न पड़ा हो स्वामी दयानन्दजी ने इन पदों को द्वितीयान्त लिखा और अर्थ प्रथमान्त का किया अर्थात् कर्म को कर्त्ता बनाया इस महान् अन्धेर का भी कुछ ठिकाना है न तो यह पाठ किसी ग्रन्थ का है और न इसका यह अर्थ ही होता है न कोई दूसरा प्रमाण है फिर कोई भी विचारशील मनुष्य कैसे मान ले कि शतपथादि ब्राह्मणों का नाम पुराण है इसके अलावा इसी पाठ में यह कहां से निकल पड़ा कि श्रीमद्भागवतादि ग्रन्थों का नाम पुराण नहीं जब कि आर्यसमाज का दावा ही गलत है फिर पं० ज्वालाप्रसादजी को सफाई देने की क्या आवश्यकता स्वामी दयानन्द का दावा तो गलत निकला अब कोई आर्यसमाजी दावा उठावे और उस के सत्य होने का प्रमाण दे नहीं तो इन कपोल कल्पित लेखों से कोई भी मनुष्य शतपथादि वेद ग्रन्थों को पुराण और श्रीमद्भागवतादि पुराण ग्रन्थों को गण्य नहीं मानेगा ।

इसके आगे पं० ज्वालाप्रसादजी "अध्विमंसखं वेदानिर्मिताः" गोपथ ब्राह्मण देकर यह साबित करते हैं कि शतपथादि ब्राह्मणों को पुराण नहीं कहते किन्तु पुराण और इतिहास इन से भिन्न हैं इस अन्त में "सब्राह्मणः" पद पृथक् है जिस से शतपथादि ब्राह्मण लिये गये हैं और "सेतिहासाः" पद पृथक् है जो प्रकट करता है कि इतिहास ब्राह्मणों से भिन्न हैं और "सपुराणाः" पद पृथक् है कि जिस से स्पष्ट हो रहा है कि इतिहास और पुराण ब्राह्मण ग्रन्थों से भिन्न हैं यदि ब्राह्मण ग्रन्थ ही इतिहास और पुराण होते तो "सेतिहासाः" "सपुराणाः" पद क्यों देते इस के ऊपर पं० तुलसीरामजी लिखते हैं कि आप तो अभी पुराणों को ५ वां वेद लिख चुके हैं फिर "सर्ववेदाः" कहने में इतिहास भी (जो आपके लेखानुसार ५ वां वेद है) अन्तर्गत था फिर "सेतिहासाः" क्यों दत्त रख लिये आप का तर्क आप ही के पक्ष में दोषारोपण करता है । ब्राह्मण शब्द सामान्य कह कर भी ब्राह्मणान्तर्गत उपनिषद् और इतिहास का फिर से गिनाना यह कथित करता है कि ब्राह्मण वा वेद के जिस भाग में विशेष कर ब्रह्म विद्या है उस भाग का नाम भिन्न उपनिषद् पड़ा और जिस ब्राह्मण भाग में लोक वृत्तान्त है उस का नाम भिन्न इतिहास पड़ा । इसी से वे पुनः भी गिनाये गये जैसे "भगवद्गीता" महाभारत के अन्तर्गत है परन्तु विशेष प्रकरण का विशेष नाम "भगवद्गीता" यह भिन्न भी है । इसी प्रकार यहां जानिये ।

पं० तुलसीरामजी का लिखना कि पहिले तो ब्राह्मण शब्द सामान्यता से लिखा है और फिर ब्राह्मणों के अन्तर्गत उपनिषद् और इतिहास होने से ब्राह्मण ग्रन्थों के भाग साबित करने के लिये इतिहास और पुराण पद दिये हैं उपरोक्त पं० जी ब्राह्मण ग्रन्थों के उन भागों को इतिहास पुराण मानते हैं कि जिन में कुछ कथा मिलती है यह मन्तव्य पं० तुलसीराम ने अपने मन से गढ़ा है इस में कोई प्रमाण नहीं और इतिहास का विषय आने से ब्राह्मण ग्रन्थ पुराण और इतिहास नहीं हो जाते यदि वास्तव में कथा आने से इतिहास और पुराण हो जाते हैं तब तो स्वामी दयानन्द के माने हुए वेद भी इतिहास पुराण हो जावेंगे क्यों कि वेद में भी कथायें आती हैं जैसे कि—

तस्या वैमनुर्वैवस्वतो वत्स आसीत्पृथिवी पात्रम् । वैन्यो-
धोकतां कृषिं च सस्यं चाधोक ॥ सोदक्रामत्सा सुसुरा नागच्छ-
त्ताम सुरा उपाहूयन्त एहीतितस्या विरोचनः प्राल्हादिवत्स आसी-
त्पृथिवी पात्रम् ।

अ० का ८ अ० ५ सू० १३

इन मन्त्रों में वेन के पुत्र पृथु द्वारा पृथिवी का दुहा जाना और वैवस्वत मनु तथा प्रह्लाद के पुत्र विरोचन का बछरा बनना साफ लिखा है इस कथा को देखते हुए पं० तुलसीराम आदि आर्यसमाजियों के मत में वेद भी पुराण हो गये अब समाजियों के वेद का पता न रहा और पं० तुलसीराम ने जो यह लिखा कि “सर्वेवेदाः” तो लिख ही दिया फिर पञ्चमवेद होने से इतिहास पुराण भी वेद में आ गए अब इतिहास पुराण का लिखना ज्वालाप्रसाद के माने हुए पञ्चम वेद पर आघात करता है इसका उत्तर हमारी तरफ से यह है कि स्पष्ट करने के लिए वेद के भाग लिखे हैं ।

इसके आगे पं० ज्वालाप्रसाद ने “अथस्वाध्यायमधीयीत” आश्वलायन गृह सूत्र का प्रमाण दिया है इसमें भी “ब्राह्मणानि” यह पद पृथक् और “इतिहास पुराणानि” पद पृथक् पड़ कर इतिहास पुराणों का ब्राह्मणों से पृथक् होना सिद्ध करता है इस के ऊपर पं० तुलसीरामजी लिखते हैं कि साध्य की सिद्धि का यहां भी पता नहीं । क्योंकि इस से भी ब्राह्मण ग्रन्थ पुराण नहीं हैं यह सिद्ध नहीं होता और न

यह होता है कि भागवतादि का नाम पुराण है जब कि इस मन्त्र में "ब्राह्मणानि" यह पद भिन्न और इतिहास पुराणानि यह पद भिन्न पड़े हैं जब कि गृहसूत्र ब्राह्मणों से पुराणों को भिन्न कह रहा है फिर हम को नहीं मालूम कि साध्य की सिद्धि में क्या बाधा है और यह क्यों साबित नहीं होता कि पुराण इतिहास ग्रन्थ ब्राह्मणों से भिन्न हैं यहां पर तो पं० तुलसीराम का वह हाल हुआ कि "चौबे गये थे छब्बे होने दुबे होकर आये" गृहसूत्र के प्रत्युत्तर में यह साबित करना था कि पुराण इतिहास यह नाम ब्राह्मण ग्रन्थों के ही हैं यह तो कुछ नहीं कर सके किन्तु पं० ज्वालाप्रसाद के अर्थ को देखकर घबरा गये और मृतक पितरों का श्राद्ध सिद्ध न हो जावे इस लिये गृहसूत्र के अर्थ को ही बदल बैठे आप लिखते हैं "तात्पर्य यह है कि इस सूत्र में स्वाध्याय [पढ़नेरूपी] यज्ञ को पितृयज्ञ की उपमा दी गई है कि जैसे पितरों की सेवा दुग्ध घृतादि से की जाती है वैसे ब्रह्मचारी जो गुरुकुल में रहता है वह अपने माता पिता को घर छोड़ आता है उस का वेदादि पढ़ना ही मानों पितृ सेवा है। वह जो ऋग्वेद पढ़ता है सो ही मानों पितरों के लिये दूध की कुल्या [नहर] बहाता है यजुः पढ़ता है सो घृत की जो साम पढ़ता है मधु की जो अथर्व पढ़ता है सो सोम की जो ब्राह्मण ग्रन्थों को पढ़ता है जो कि कल्प गाथा नाराशंसी इतिहास पुराण कहते हैं सो मानो अमृत की नहरें बहाता है। इस से यह तौ सिद्ध न हुआ कि ब्राह्मण ग्रन्थ पुराण नहीं है न यह कि भागवतादि पुराण हैं किन्तु चारों वेदों को कहकर फिर ब्राह्मणों को वेदों के पश्चात् और पृथक् गिनाने से ब्राह्मणों का वेदों से पृथक् होना वेद न होना वेदों से दूसरी श्रेणी का होना और उन के पुराण इतिहास गाथादि नाम होना ही पाया जाता है।

इस में प्रथम तो स्वाध्याय का पितृ यज्ञ की उपमा दी पं० तुलसीराम का यह लेख बिल्कुल अनर्गल है क्योंकि सूत्र में कोई उपमा वाचक शब्द नहीं फिर इस मन्त्र में कांगड़ी या वृन्दावन का गुरुकुल भी नहीं लिखा गुरुकुल भी पं० तुलसीराम ने अपनी तरफ से मिलाया है इसके आगे जो ऋग्वेद पढ़ता है सो ही मानो पितरों के लिये दूध की कुल्या (नहर) बहाता है पं० तुलसीराम ने जो यह अर्थ किया है यह भी मन गढंत है क्योंकि सूत्र में न तो कोई ऐसा पद है कि जिसका अर्थ हम मानो कर लें और न कोई ऐसी ही क्रिया है कि जिसका अर्थ बहाता कर लें यहां पर पं० तुलसीराम की समस्त चालाकियें बन्द हो गई और फर्जी अर्थ तैयार करने लगे जिस का मतलब यह है कि कहीं ज्वालाप्रसाद का अर्थ सत्य न हो जावे जिस से

मृतक पितरों का श्राद्ध मानना पड़े यह चालाकियां अब नहीं चल सकतीं गृहसूत्र से मृतक पितरों का श्राद्ध उड़ाना संसार की आंख में लाल मिर्च का सुर्मा डालना है गृह में तो मृतक पितरों का श्राद्ध उसी प्रकार ठसाठस भरा पड़ा है जैसे कि वेद में पुष्टि के लिये एक सूत्र हम नीचे लिखते हैं और उसकी पुष्टि में मनु भी देते हैं पढ़िये—

आधत्तपितरो गर्भं मितिमध्यमं पिण्डं पत्नी प्राशनीयात् ।

अर्थ—“आधत्त पितरोगर्भम्” इस मन्त्र को बोलते समय मध्यम पिण्ड को पत्नी खावे । क्या कहीं ऐसा भी होता है मध्यम पिण्ड जो पितामह का भोजन है उसको तो खा जावे श्राद्ध करने वाले की स्त्री और वह बाबा थाली पर से भूखा उठ कर बाजार को चला जावे यदि यह जीवित पितरों का श्राद्ध मान लिया जावे तो यह श्राद्ध नहीं होगा किन्तु यह जीवित पितरों का तिरस्कार या अनादर होगा इसी के ऊपर आगे मनु भी लिखते हैं ।

पतिव्रता धर्म पत्नी पितृ पूजन तत्परा ।

मध्यमं तु ततः पिण्डमद्यात्मन्यक्सुतार्थिनी ॥

आयुष्मन्तं सुतं सूते यशोमेधा समन्वितम् ।

धनवन्तं प्रजावन्तं सात्विकं धार्मिकं तथा ॥

मनु० ३ । २६२ । २६३

अर्थ—पितृ पूजन में तत्पर विवाहित पतिव्रता पुत्र की इच्छा करने वाली स्त्री “आधत्त पितरो गर्भम्” इस मन्त्र के उच्चारण होते हुए मध्यम पिण्ड को भक्षण करे ऐसा करने से आयु वाले यशवान् बुद्धिमान् धनी सात्विक धर्मात्मा पुत्र को उत्पन्न करती है अब पाठक विचार लें कि यह श्राद्ध जीवित पितरों का है या मृतकों का ।

मुझे विश्वास है किसी समय में भी कोई आर्यसमाजी इस पर लेखनी नहीं उठा सकता गर्ज कहने की यह है कि पं० तुलसीराम ने सूत्र में पृथक् पढ़े इतिहासादि पर दी पर समाधान न दिया और जिस मृतक पितरों के श्राद्ध पर भास्कर-प्रकाश का आधा पन्ना काला किया उसको भी गृहसूत्र में न उड़ा सके “स्वाध्याय मधीयीत” इस सूत्र में “ब्राह्मणानि” पद पृथक् और “इतिहासः पुराणानि” पद

पृथक् पड़े हैं जो साबित करते हैं कि ब्राह्मण ग्रन्थों से इतिहास पुराण संज्ञा ग्रन्थ भिन्न है क्या किसी समय में कोई आर्यसमाजी इसके उत्तर के लिये लेखनी उठावेगा हमें तो विश्वास है कि कोई मनुष्य साहस भी नहीं कर सकता गोपथ ब्राह्मण और गृह्यसूत्र से साबित हो गया कि ब्राह्मण ग्रन्थों से इतिहास पुराण पुस्तक भिन्न है विचार शील इसको अपने मन में विचार सकते हैं कि पं० तुलसीराम हठ पर हैं या मिश्र ज्वालाप्रसाद जी ।

इसके आगे पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र व्याकरण के महाभाष्य के प्रथम आन्विक “सप्त द्वीपा वसुमती” प्रमाण देकर लिखते हैं कि यदि नाराशंसी का नाम पुराण होता तो साङ्ग लिख कर फिर पुराण लिखने की क्या आवश्यकता थी इसके ऊपर पं० तुलसीराम लिखते हैं कि “यदि उक्तमहाभाष्य में यहाँ ब्राह्मण पद भी आता और इतिहास पुराण शब्द भी भिन्न विषयक आते तो सिद्ध हो जाता कि ब्राह्मण से इतिहास भिन्न है परन्तु जब ब्राह्मण पद नहीं और इतिहास पुराण शब्द हैं तो हम कह सकते हैं कि ये ही पद ब्राह्मण के ऐसे भाग के नाम हैं जिसमें कोई कथाप्रसङ्ग है वह ब्राह्मण भाग इतिहास है” ।

पं० तुलसीराम ने जो यह लिखा है कि ब्राह्मण पद आता और इतिहास पुराण शब्द भी आते तो सिद्ध हो जाता कि इतिहास पुराण ब्राह्मण से भिन्न हैं परन्तु जब ब्राह्मण पद नहीं फिर इतिहास पुराण भिन्न कैसे मान सकते हैं गोपथ ब्राह्मण और आश्वलायन गृह्यसूत्र में इतिहास पुराण पद ब्राह्मण शब्द से भिन्न आये हैं क्या वहाँ पर आप ने या आर्यसमाज ने मान लिया कि इतिहास पुराण ब्राह्मण ग्रन्थों से भिन्न हैं इस बात को तो समस्त संसार जान गया है कि जब इन का मन गढ़ेत सिद्धान्त कटेगा तब यह वेद और स्वामी दयानन्द के लेख को भी नहीं मानेंगी उसको भी सोलह आने मिथ्याही कहेंगे फिर पं० ज्वालाप्रसाद की तो कथा ही दूसरी है यह क्या बात है कि महाभाष्य में ब्राह्मण पद आता तो पं० तुलसीराम मान लेते और गोपथ तथा आश्वलायन सूत्र में आया तब न माना साफ झलक रहा है कि पं० तुलसीराम को जब कोई रास्ता न मिला तब यही लिख दिया कि ब्राह्मण पद पृथक् होता तो मान लेते यदि समाज ने माननाही सीखा होता तो हम को इस ग्रन्थ लिखने की क्या आवश्यकता थी ।

पं० ज्वालाप्रसादजी ने जो लिखा था कि “यदि नाराशंसी का नाम ही पुराण होता तो साङ्ग लिख कर फिर पुराण लिखने की क्या आवश्यकता थी” पं०

तुलसीराम ने इस का क्या उत्तर दिया इसके बारे में तो एक अक्षर भी न लिखा क्यों न लिखा क्या वास्तव में बुद्धि ने काम नहीं दिया जिस बात का उत्तर नहीं दे सकते उसको न मानना क्या यह साचित नहीं करता कि आर्यसमाज पूरे आग्रह पर है न किसी बात का उत्तर दे सकती है और न वैदिक ग्रन्थों को प्रमाण मानती है।

इसके आगे पं० तुलसीराम जी लिखते हैं कि ब्राह्मणों के उन भागों का नाम इतिहास है कि जिन में कथा है जैसे कि "जनमेजयो हवै" इस गोपथ ब्राह्मण से यह दिखलाया कि ब्राह्मणों में इतिहास है और इतिहास होने की वजह से ब्राह्मणों का ही नाम इतिहास पुराण है हम इस बातको पहिले ही लिख आये हैं कि यदि कथा होने से ब्राह्मण ग्रन्थ पुराण हैं तब तो इनके वेद भी इतिहास पुराण हो जावेंगे तिमिरभास्कर की टिप्पणी में इसी विषय को पं० ज्वालाप्रसाद जी दिखाते हैं—

सभद्रमेधति राष्ट्रं राज्ञः परीक्षितः अथर्व का० २० पु० १२७

अर्थात् राजा परीक्षित के राज्य में सब मनुष्य आनन्द करते थे इसके ऊपर पं० तुलसीराम जी भास्कर प्रकाश की टिप्पणी में लिखते हैं कि यहां अभिमन्यु के पुत्र परीक्षित का नाम नहीं है किन्तु इस का अर्थ यह है कि चारों ओर देखनेवाले राजा के राज्य में प्रजा सुख से बढ़ती है क्या मजे की बात है कि अभिमन्यु का लड़का परीक्षित आजावे तभी तो इतिहास बने नहीं तो इतिहास ही नहीं कहला सकता फिर पं० तुलसीराम ने वह कौन सा सबूत दिया कि जिस से यह परीक्षित अभिमन्यु का लड़का नहीं था और अपने लिखे ब्राह्मण में क्या सबूत दिया कि जिससे वह अभिमन्यु का लड़का ही था आर्यसमाज का एक यह भी सिद्धान्त है कि कथा किसी मनुष्य की यदि किसी पुस्तक में होगी तो वह पुस्तक कथा वाले मनुष्य के बाद बनी होगी इस सिद्धान्त के अनुसार राजा जनमेजय के बाद ही गोपथ ब्राह्मण बना है जिस को आज समाज स्वतः प्रमाण मानती है तुलसीराम के लेख में गोपथ ब्राह्मण आधुनिक और तुलसीराम का लिखा परीक्षित अभिमन्यु का पुत्र था इस में प्रमाण भाव तथा अथर्व वेद का परीक्षित अभिमन्यु का लड़का नहीं था यह तीन दोष आगये हैं जिनका दूरीकरण पं० तुलसीराम से नहीं हुआ अब देखना चाहते हैं आगे को कोई आर्यसमाजी इन दोषों को दूर करता है या सर्वदा के लिये आर्यसमाज के ऊपर पड़े रहते हैं।

पं० तुलसीराम ने अपने लिखे परीक्षित को खास एक व्यक्ति माना और पं० ज्वालाप्रसाद के लिखे परीक्षित को चारों तरफ देखने वाला सामान्य राजा कहते हैं आपने जो यह अर्थ किया है कि चारों तरफ देखने वाले राजा के राज में प्रजा सुखी रहती है यह सत्य है या असत्य इसका पता अब आगे लगता है हम आर्यसमाजियों से पूछते हैं कि हिरण्याक्ष तथा हिरणकश्यपु व रावण तथा वेन शिशुपाल व कंस यह चारों तरफ देखते थे या एक पूर्व दिशा की तरफ ? यदि आर्यसमाजी यह उत्तर दें कि ये तो एक ही तरफ देखते थे इसके ऊपर हमारा प्रश्न होगा कि क्या तीन दिशाओं की तरफ इन की आंखें बंद हो जाती थीं ? यदि ये कहें कि ये तो चारों तरफ देखते थे तो फिर आर्यसमाजी बतलावें कि इनके राज्य में प्रजा कितनी सुखी थी पूर्वोक्त समस्त राजा चारों तरफ देखते थे किन्तु इनके राज्य में प्रजा दुख ही पाती थी फिर वेद का यह कहना कि चारों तरफ देखने वाले राजा की प्रजा सुख पाती है सोलह आने मिथ्या हो गया क्या वेद में यही महत्व है कि वह झूठे लेख लिख कर मनुष्यों को धोखे में डाले वास्तव में वेद सत्य है ईश्वरी ज्ञान है किन्तु आर्यसमाजियों का यह सिद्धान्त है कि वेद के इस प्रकार के मिथ्या अर्थ किये जावें कि जिन अर्थों से लोक में से वेद का महत्व उड़ जावे इसी सिद्धान्त का अनुसरण करके पं० तुलसीराम ने अथर्ववेद का यह अर्थ किया है वेद का महत्व भी जाता रहा और पं० तुलसीराम यह भी सबूत नहीं दे सकते कि हमारा अर्थ सत्य है इस पर तो हमको यही कहना पड़ता है कि “दोनों दीन से गये रे पांडे । हलुचा रहे न माड़े” वेद भी मिथ्या हो गया और वेद से इतिहास भी न उड़ा ।

इसके अलावा वेद में असम्भव दोष भी आवेंगा यह हो ही नहीं सकता कि जो एक तरफ देखता हो वह दूसरी तरफ न देख सके यह प्रत्यक्ष के विरुद्ध है हां अलबत्ते एकाक्षी में यह बात घट सकती है दूसरी आंख न होने के कारण वह सर्वदा एक ही तरफ देखा करता है सम्भव है कि पं० तुलसीराम का यही अभिप्राय हो कि एक आंख वाले राजा के राज्य में प्रजा सुखी रहती है यह भी गलत क्योंकि दो नेत्र वाले राजा के राज में भी प्रजा सुख पाती है यहां पर भी वेद में असम्भव और मिथ्यात्व दोष बने रहते हैं जो त्रिकाल में नहीं हटते मालूम होता है कि पं० तुलसीराम वैदिक ग्रन्थों को मानने को तैयार नहीं और उत्तर में समर्थ नहीं जो बन पड़ता है सो लिख देते हैं चाहे धार जाय या रहे ।

इसके आगे पं० ज्वालाप्रसाद जी लिखते हैं कि यजुर्वेद के अध्याय १२ और मन्त्र ४ में स्वामी दयानन्द ने भी वामदेव्य ऋषि का जाना तथा पढ़ाया साम किया है इस मन्त्र में वामदेव ऋषि की सूक्ष्म कथा मौजूद है इसके ऊपर पं० तुलसीरामजी लिखते हैं कि “वामदेव तो ऋषि पर्याय हैं किसी व्यक्ति का नाम नहीं” यह पढ़कर हंसी आती है स्वामी दयानन्दजी तो व्यक्ति का नाम लिखते हैं (उनका लेख यह है कि वामदेव ऋषि ने जाने व पढ़ाये) और पं० तुलसीराम ऋषि का पर्याय बतलाते हैं आज तो पं० तुलसीरामजी स्वामी दयानन्द के लेख को भी मिथ्या ही मानते हैं पं० तुलसीराम पर ही क्या मुनहसिर है आज जितने भी आर्यसमाजी हैं वे सब अपने को स्वामी दयानन्द से विद्वान् मानते हैं स्वामी दयानन्दजी में तो इतनी विद्वत्ता ही नहीं थी कि वे इनके सामने बोल सकते जब कि आज कल के आर्यसमाजी वेद और खास स्वामी दयानन्द के लेख को ही नहीं मानते तो फिर कोई किस रीति से आर्यसमाज का धार्मिक सुसायदी कह सकता है यहां पर तो “गुरु गुड़ और चेला चीनी हो गये” पं० तुलसीराम स्वामी दयानन्द से भी बढ़ गये जो वामदेव को ऋषि का पर्याय बतलाते हैं ऋषि का पर्याय तो बतलाया किन्तु पर्याय होने में कुछ सबूत नहीं दिया पं० तुलसीराम तो क्या सबूत देंगे किन्तु दो लाख आर्यसमाजी भी यह सबूत नहीं दे सकते कि वामदेव ऋषि पर्याय हैं ।

स्वामी दयानन्द के अर्थ को तुलसीराम क्या खंडन कर सकेंगे कोई भी खंडन नहीं कर सकता स्वामीजी के पक्ष में बड़ा जबरदस्त गवाह पाणिनीय ऋषि है यह अष्टाध्यायी में लिखते हैं कि—

वामदेवाङ्ग्यङ्ग्यौ ४ । २ । १

अर्थ—वामदेव से “दृष्टं सामः” इस अर्थ में ङ्यत् और ङ्य यह प्रत्यय हों इसका उदाहरण यह है कि “वामदेवेन्दृष्टं साम वामदेव्यम्” अर्थात् समाधी अवस्था में जो सामवेद वामदेव ऋषि ने देखा उस साम का नाम “वामदेव्य” है यहां पर पाणिनीयजी खास व्यक्ति का लेने हैं न कि ऋषि पर्याय को स्वामी दयानन्द के इतने पुष्ट सिद्धान्त को तुलसीराम का खंडन करना नाहक में पन्ने काले करना है ।

इसके आलावा यदि हम पं० तुलसीराम के मन्तव्यानुसार वामदेव्य ऋषि का पर्याय मानलें तो चारों वेद समाज के मत में वामदेव्य हो जावेंगे क्योंकि

ऋषियों ने चारों ही वेद जाने और पढ़ाये हैं वास्तव में सामवेद के कुछ मन्त्रों का नाम वामदेव्य है जो कि वामदेव ऋषि को समाधी में दीखे किन्तु पं० तुलसीराम के मत में समस्त ही वेद वामदेव्य होगया मुझे नहीं मालूम कि पं० तुलसीराम ऐसा अयोग्य लेख क्यों लिखते हैं सामवेद में कुछ मन्त्र वामदेव्य कहलाते हैं क्योंकि उनको वामदेव ने जाना है वामदेव का इतिहास यजुर्वेद में है इसको स्वामी दयानन्द अपनी लेखनी से लिखते हैं इसको देखकर पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र लिखते हैं कि यदि इतिहास होने के कारण से ब्राह्मणों का नाम पुराण है तब तो वेद भी पुराण हो जावेंगे इस का उत्तर न तो पं० तुलसीराम ने दिया है और न कोई आर्य समाजी आगे को दे सकता है बस यह बात साफ खुल गई कि सूक्ष्म इतिहास होने पर किसी ब्राह्मण ग्रन्थ का नाम पुराण नहीं है यदि ऐसा है तब तो समाज के मत में वेद भी पुराण ही है।

इस के आगे पं० तुलसीराम लिखते हैं कि "अग्नेर्ऋग्वेदोवायोर्यजुर्वेदः सूर्यात्सामवेदः । शतपथ ११ । ५" अग्नि वायु आदि ऋषियों से ऋगादि वेद हुवे । अग्नि वायु आदि तत्त्व न थे किन्तु जीव विशेष थे । यह सायणाचार्य अपनी ऋग्वेदभाष्य भूमिका में लिखते हैं "जीव विशेषैरग्निवाष्वादित्यैर्वेदानामुत्पादितत्वात्" अर्थात् जीव विशेष अग्नि वायु आदित्यों ने वेदों को प्रकट किया है । इस से इतिहास और पुराण ये दोनों नाम ब्राह्मणों के ही हुवे । पं० तुलसीराम को जब कुछ उत्तर नहीं मिलता तब वे प्रकरण को छोड़कर प्रकरणान्तर में चले जाया करते हैं इसी सिद्धान्त के अनुसार यहां पर भी यही चाल चली है पुराणों का निर्णय छोड़कर वेदोत्पत्तिपर भाग चले इस चालाकी का कारण यह है कि जिस विषय का निर्णय हो रहा है वह रह जावे और दूसरा विषय छिड़ जावे न वह तै हो न वह हो "अग्नेर्ऋग्वेदः" इस लेख से पं० तुलसीराम का क्या मतलब है ब्राह्मणों में इतिहास कथा है इस बात को तो सभी मानते हैं कि ब्राह्मण और संहिता दोनों में ही कुछ कुछ कथा है जब यह बात मानी हुई है फिर अधिक प्रमाण की क्या आवश्यकता, आवश्यकता इस बात की थी कि पं० तुलसीराम इस बात को सिद्ध करते कि वेदों में कथा नहीं है सो तो पं० तुलसीराम क्या कोई भी आर्यसमाजी सिद्ध नहीं कर सकता कि वेदों में कथा नहीं यह तो पिछले लेख से सिद्ध होगया कि वेदों में इतिहास है यदि पूर्व के प्रमाणों से आर्यसमाज को संतोष नहीं है तो फिर इतिहास के दिखलानेवाले दो चार मन्त्र हम नीचे लिखते हैं हमें आशा है कि विचारशील आर्यसमाजी इन प्रमाणों को

देखकर अपने मन में विचार करेंगे कि वास्तव में वेद में इतिहास है या नहीं प्रमाण नीचे लिखता हूँ—

(१) नमोनीलग्रीवाय (यजु०) अर्थात् नीला है गला जिस का ऐसे महा-देव को नमस्कार है इस में महादेव का इतिहास है (२) भृगुणामङ्गिरसातपध्वम् (यजु०) भृगु की संतान अङ्गिरसों ने तप किया इस में अङ्गिरसों का इतिहास है (३) इदं विष्णुर्विचक्रमेत्रेधानि दधे पदं समूढं मस्यपाशसुरे (यजु० ५।१५) अर्थात् विष्णु ने इस दृश्यमान् संसार को नापा और तीन पैर रखे इस मन्त्र में वामनावतार का इतिहास है (४) इन्द्रो दधीचो अस्थिभिवृत्राण्य प्रतिष्कृतः । जघान नवतीर्नव (ऋ० अष्टक १ अध्याय ५) अर्थात् इन्द्र ने दधीचि ऋषि की अस्थियों के वज्र से वृत्रासुर को काटा और ९९ हजार राक्षसों को मारा (५) अपां फेनेन न चुचेः शिर इन्द्रोदवतर्थः । विश्वाय दजयास्पृधेः (ऋ० मं० ८ अनु ६) अर्थात् इन्द्र ने समुद्रफेन से नमचि के शिर को काटा इसमें नमचि का इतिहास है इत्यादि सैकड़ों इतिहास वेद में मौजूद हैं जब वेद में इतिहास मौजूद हैं फिर यह कौन कह सकता है कि वेद में इतिहास नहीं कपट थोड़े ही दिन चलता है अन्त को खुल जाता है इतिहास होने से ब्राह्मण पुराण हैं तो फिर इसी नियम से वेद भी पुराण हैं इसके ऊपर कोई भी लेखनी नहीं उठा सकता वेदों में इतिहास का होना और वेदों को पुराण न मानना सिद्ध करता है कि चाहे ब्राह्मणों में छोटे २ लाख इतिहास दिखलाये जावें किन्तु ब्राह्मण ग्रन्थ त्रिकाल में भी पुराण नहीं हो सकते जब इतिहास दिखाने से ब्राह्मण ग्रन्थों का इतिहास पुराण होना सिद्ध ही नहीं होता तो फिर “अग्नेर्ऋग्वेदः” के लिखने का क्या प्रयोजन है ।

यदि कोई आर्यसमाजी यह कह कि वेदात्पत्ति दिखलाने के लिये “अग्नेर्ऋग्वेदः” लिखा है इस का तो यहां पर प्रकरण ही नहीं जब प्रकरण ही नहीं फिर क्यों लिखा गया इस का लिखना साबित करता है कि पं० तुलसीराम की लेखनी प्रकरण पर कुछ नहीं लिख सकती अतएव प्रकरणान्तर में पहुंचे हम नहीं चाहते थे कि विषयान्तर में जावें किन्तु पं० तुलसीराम के लेख के उत्तर के लिये जाना पड़ा प्रथम तो यह कि सायण ने अपनी ऋग्वेद भाष्य भूमिका में यह कहीं नहीं लिखा “जीव विशेषैरग्निवाष्वादित्यैर्वेदाना मुत्पादितत्वात्” हम ने तो सायण की ऋग्वेद भाष्य भूमिका के पन्ने दो तीन बार उथले किन्तु यह पाठ कहीं पर भी नहीं मिला

और यदि किसी अन्य-प्रेस की छपी हुई पुस्तक में यह पाठ हो और सायण का ही लिखा हो तब भी मानने के योग्य नहीं (१) इस में वेदों का उत्पादित (उत्पन्न) होना लिखा है वेद का उत्पन्न होना मानना बड़ी भारी भूल है वेद नित्य हैं क्योंकि यह नित्य ब्रह्म का ज्ञान है नित्य का उत्पन्न होना बन ही नहीं सकता ऋषियों का सिद्धान्त है कि—

नकश्चिद्वेद कर्तास्याद्वेदस्मर्ता स्वयं भुवः ।

वेद का बनाने वाला कोई भी नहीं वेद का स्मरण करने वाला ब्रह्मा है किसी ने भी वेद की उत्पत्ति नहीं मानी केवल स्वामी दयानन्द ने मानी है जब आज तक समस्त वैदिक शास्त्र वेदों को नित्य मानते हैं उसके विरुद्ध “जीवविशेषः” इस लेख को कोई विचार शील कैसे मान लेगा कि जिसमें वेदों का उत्पन्न होना लिखा है । (२) कई एक वेद मन्त्रों पर भी पानी फिर जाता है क्योंकि वेद मन्त्रों में वेद के कर्ता अग्निवायु आदित्य जीव विशेष नहीं माने वेद बड़े जोर के साथ कहता है कि—

यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वयो वै वेदांश्च प्रहिणोतितस्मै ।

त०० हदेवमात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहंप्रपद्ये ॥

श्वेता श्वेत० अ० ६ मं० १८

इस मन्त्र में स्पष्ट लिखा है कि ब्रह्मा के अन्तःकरण में वेद का प्रादुर्भाव हुआ जब अग्नि वायु और आदित्य के द्वारा वेद होना मानेंगे तो इस मन्त्र पर हड़ताल लगानी पड़ेगी और भी लीजिये—

ॐ ब्रह्मा देवानां प्रथमः सम्बभूव विश्वस्य कर्ता भुवनस्य गोप्ता ।
स ब्रह्मविद्यां सर्वविद्याप्रतिष्ठा मथर्ज्याय ज्येष्ठपुत्राय प्राह ॥ १ ॥
अथर्वणे यां प्रवदेत ब्रह्माथर्वा तां पुरोवाचाङ्गिरे ब्रह्मविद्याम् ।
स भारद्वाजाय सत्यवाहाय प्राह भारद्वाजोऽङ्गिरसे परावराम् ॥ २ ॥
शौन को ह वै महाशालोऽङ्गिरसं विधिवदुपसन्नः पप्रच्छ ।
कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते सर्वनिदं विज्ञातं भवतीति ॥ ३ ॥ तस्मै
स हो वाच ॥ द्वे विद्ये वेदितव्य इति ह स्म यद्ब्रह्मविदो वदन्ति

परा चैवापरा च ॥ ४ ॥ तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदो
 ऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति ।
 अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते ॥ ५ ॥

इन मन्त्रों में स्पष्ट लिखा है कि सब से प्रथम सृष्टि के आरम्भ में ब्रह्मा पैदा हुआ और उसने परा और अपरा विद्या अपने बड़े लड़के को पढ़ाया यहां पर भी वेद का स्मरण होना ब्रह्मा को ही बतलाया गया है इन पांच मन्त्रों के लिये समाज को हड़ताल पीस कर तैयार करनी चाहिये आर्यसमाज ने शास्त्रों की संगति बिठलाना हँसी खेल समझ रक्खा है यह खंडन नहीं है संगति है यदि स्वामी दयानन्द के मन गढ़ंत अग्नि, वायु, आदित्य के द्वारा वेद का प्रकट होना मानेंगे तो फिर इन ६ मन्त्रों की संगति कैसे बैठेगी यदि कोई मनुष्य हौसला रखता हो तो फिर संगति बिठला कर देखें कोशिश करने पर भी सात लाख जन्म में भी नहीं बैठेगी स्वामी दयानन्द ने वेद के इन ६ मन्त्रों के उड़ाने के लिये ही अग्नि, वायु, आदित्य को ऋषि बनाया है इसके सिवाय और कुछ भी प्रयोजन नहीं ।

अब हम आपको “अग्नेर्ऋग्वेदो वायोऽयजुर्वेदः सूर्यात्सामवेदः” का अर्थ बतलाते हैं यह पाठ केवल शथपथ में ही नहीं किन्तु गोपथ में भी है “अग्नेर्ऋग्वेदं वायोऽयजुर्वेदमादित्यात्सामवेदम्” ॥ गोपथ के अलावा यह पाठ तैत्तिरीय ब्राह्मण में भी है “ऋग्वेदएवाग्नेरजायत यजुर्वेदो वायोः सामवेद आदित्यात्” इसके अलावा यह पाठ मनु में भी है “अग्निवायु रविभ्यस्तुत्रयं ब्रह्म सनातनम् । दुदोह यज्ञ सिद्ध यर्थमृग्यजुः साम लक्षणम्” इस विषय में समाज की तरफ से इतने प्रमाण दिये जा सकते हैं यदि कोई और प्रमाण मिले तो उसका भी यही मतलब होगा अब हम इसका उत्तर लिखेंगे उत्तर लिखने से पहिले कुछ कारण ऐसे और बतलाते हैं जिन से यह सिद्ध होता है कि यह ऋषि नहीं और इन के हृदय में वेदों का ज्ञान नहीं हुआ (३) अग्नि, वायु, आदित्य इनके आगे कहीं पर भी ऋषि पद नहीं दिया ऋषि पद का प्रयोग स्वामी दयानन्द ने स्वतः अपने मन से कर लिया है इस लिये इन का ऋषि कहना फर्जी (काल्पनिक) है यदि कोई आर्यसमाजी यह दावा करे कि वास्तव में यह ऋषि थे तो फिर वह प्रमाण दे कि इनको ऋषि के नाम से कहां लिखा है और साथ ही साथ यह भी बतलावे कि यह ऋषि किस के पुत्र थे और

इन की सन्तान कौन २ थी इन्होंने वेदों को जान कर फिर किस को पढ़ाया इनके होने का समय कौन था तथा कितने वर्ष तपस्या करने के बाद यह ऋषि कहलाये जब इनके पहिले वेद नहीं थे तो फिर ये आप्त कैसे हुए इसके ऊपर यदि कोई सायण की भूमिका का लेख दे तो वह नहीं माना जावेगा क्योंकि समाज सायण के लेख को प्रमाण नहीं मानती और सनातनधर्मी भी ऐसी दशा में किसी भी भाष्यकार के लेख को प्रमाण नहीं मानते जब कि वह लेख आष लेख के विरुद्ध पड़ता हो उसमें वेदों का उत्पन्न होना लिखा हो जो सर्वथा वैदिक सिद्धान्त के विरुद्ध है इसके अलावा यह पाठ भी सायण भूमिका में नहीं है सायण के नाम से नया पाठ स्वामी दयानन्द ने अपने आप बनाया है इस लिये इस प्रमाण को छोड़ कर समाजियों को अन्य प्रमाण देना चाहिये अन्य प्रमाण इन को त्रिकाल में भी नहीं मिल सकता आर्यसमाज के सिद्धान्त की पुष्टि में कहीं पर भी कोई अक्षर नहीं मिलता अतएव समाज का यह पक्ष कि यह ऋषि थे यहीं पर समाप्त हो जाता है ।

(५) “ऋग्वेदः” “यजुर्वेदः” तथा “सामवेदः” यह शब्द पुलिङ्ग हैं और गोपथ ब्राह्मण में ऋग्वेदं यजुर्वेदं सामवेदं सह कर्मणि द्वितीया विभक्ति दी है जिसका अर्थ यह होता है कि “अग्नि से ऋग्वेद को और वायु से यजुर्वेद को और आदित्य से सामवेद को” अब यहां पर कर्ता नहीं है कर्ता और मानना पड़ेगा यदि इन से वेद उत्पन्न हुए हैं तब तो वेदों में कर्ता में प्रथमाविभक्ति होना चाहिये यहां पर वेदों को कर्म माना है अतएव इन तीन ऋषियों के द्वारा उत्पन्न होना वही मानेगा जिसको कर्ता कर्म का भी ज्ञान न हो यहां पर क्रिया और कर्ता दोनों का अध्याहार होगा तब ऐसा पाठ बनेगा कि “अग्नेर्ऋग्वेदं वायोर्यजुर्वेदं मादित्यात्सामवेदं दुदोह” जिस का अर्थ यह हुआ कि अग्नि से ऋग्वेद को और वायु से यजुर्वेद को और आदित्य से सामवेद को दूहा गोपथ ब्राह्मण के अर्थ में अन्यादिके द्वारा वेदों का उत्पन्न होना नहीं लिखा किन्तु दूहा जाना लिखा है यदि कहो कि “दुदोह” इस क्रिया का अध्याहार आप ने अपने मनसे किया है इसके ऊपर हमारा उत्तर यह है कि गोपथ के पाठ में क्रिया नहीं है इस वास्ते क्रिया का तो अध्याहार करना ही होगा यदि कोई कहे कि हम किसी दूसरी क्रिया का अध्याहार कर लेंगे जैसा कि आपने अपने मन से किया है इसका उत्तर यह है कि आप किसी दूसरी क्रिया का अध्याहार कर ही नहीं सकते और हमने भी अपने मन से नहीं किया इस के लिये आप मनु को देखिये मनुजी

क्या लिखते हैं “दुदोह यज्ञ सिद्धयर्थं मृग्यजुः साम लक्षणम्” यहां पर किया “दुदोह” पड़ी है।

(६) शतपथ में सूर्य और गोपथ तथा तैत्तिरीय के पाठ में तो आदित्य है किन्तु मनु के पाठ में रवि शब्द है अब आर्यसमाजियों को बतलाना चाहिये कि ऋषि का नाम सूर्य था या कि आदित्य या रवि, क्या सूर्य देव के जितने नाम हैं उस ऋषि के वे सब नाम थे कहीं पर सूर्य और कहीं पर आदित्य कहीं रवि लिखना सावित करता है कि वे ऋषि नहीं थे बल्कि सूर्य देव थे और सूर्य के द्वारा यजुर्वेद का मिलना श्रीमद्भागवत में पाया भी जाता है देखिये—

एवं स्तुतः स भगवान्वाजिरूप धरो हरिः ।

यजूंष्ययातयामानि मुनयेऽदात्प्रसादितः ॥

(द्वादश स्कंध)

इस रीति से सूर्य भगवान् ने महर्षि याज्ञवल्क्य को माध्यन्दिनी शाखा अर्थात् वाजसनेयी संहिता का ज्ञान दिया है जिस के ऊपर स्वामी दयानन्दजी ने भाष्य किया है यदि कोई आर्यसमाजी यह कहे कि हम श्रीमद्भागवत को प्रमाण नहीं मानते पेसी हालत में हम यह कहेंगे कि हम ने आप के मानने का ठेका नहीं लिया है आप चाहे वेदों को भी न मानें ठेका केवल स्वामी दयानन्द के सिद्धान्तों का है स्वामी दयानन्द जी श्रीमद्भागवत को प्रमाण मानते हैं उन्होंने ने अपने बनाये सत्यार्थ प्रकाश में श्रीमद्भागवत को ही नहीं बल्कि समस्त पुराणों को प्रमाण माना है वे लिखते हैं कि हम अङ्ग और उपाङ्गों को प्रमाण मानते हैं उपाङ्गों में १८ पुराण आगये हैं इस कारण स्वामी दयानन्द को पुराण प्रमाण हैं आज धरातल पर कोई एक भी पेसा आर्यसमाजी नहीं है कि जो यह सावित कर दे कि उपाङ्गों में पुराण नहीं हैं पुराणों का उपाङ्ग होना अतएव स्वामी दयानन्द को श्रीमद्भागवत ही नहीं किन्तु समस्त पुराण प्रमाण है ।

(७) इसके अलावा और २ ऋषियों के द्वारा भी वेद ज्ञान संसार में फैला है इसका पता भी वैदिक ग्रन्थों से पाया जाता है इसको हम व्याकरण से दिखलाते हैं देखिये—

दृष्टं साम । ४ । २ । ७ । तेनेत्येव । वसिष्ठेन दृष्टं वासिष्ठं
साम अस्मिन्नर्थेऽण डिद्रा वक्तव्यः ॥ उशनसा दृष्टमौशनम् ।

औशनसम् । कलेर्दक् । ४ । २ । ८ । कलिना दृष्टं कालेयं
साम । वाम देवाद्द्व्यद्द्व्यौ । ४ । २ । १ । वामदेवेन दृष्टं
साम वामदेव्यम् ।

व्याकरण के इन प्रमाणों से सिद्ध है कि वसिष्ठ और उशना तथा कलि और वामदेव आदि २ ऋषियों को भी समाधी में वेद ज्ञान हुआ है ऋग्वेद के मूल में प्रकरण पड़ता है कि त्रित आदि ऋषियों के द्वारा भी संसार में वेद का ज्ञान फैला है जिन ऋषियों के द्वारा ब्रह्मा के पश्चात् कुछ २ मन्त्रों का ज्ञान संसार में आया उन सब का नाम हिन्दुसाहित्य में अङ्कित है किन्तु इन तीन ऋषियों का नाम कहीं पर भी नहीं आया नहीं मालूम स्वामी दयानन्द ने डारवीन की भांति कोई नई थ्युरी तो चलाना नहीं चाहा है ।

(८) इस के अलावा शतपथ ब्राह्मण में जहां पर “अग्नेर्ऋग्वेदो वायोर्यजुर्वेदः सूर्यात्सामवेदः” यह लिखा है वहीं पर इस के ऊपर “तेभ्यस्तप्तेभ्यस्त्रयो वेदा अजायन्त” लिखा है उसके नीचे “अग्नेर्ऋग्वेदो वायोर्यजुर्वेदः सूर्यात्सामवेदः” पाठ है अर्थात् शतपथ में पूरा पाठ इस प्रकार है—

तेभ्यस्तप्तेभ्यस्त्रयो वेदा अजायन्ताग्ने ।
ऋग्वेदो वायोर्यजुर्वेदः सूर्यात्सामवेदः ॥

श० का ११ । ५

पं० तुलसीराम ने आधे पाठ को छिपाया है उनके मन में यह खटक गया था कि यदि हम समस्त पाठ को लिख देंगे तो स्वामी दयानन्द के मनगढ़ंत सिद्धान्त की बनावट खुल जावेगी इस लिये आधा छिपा लिया परन्तु क्या कोई मनुष्य संसार में शतपथ नहीं जानता शतपथ देखा गया देखते ही पं० तुलसीराम की चालाकी ऊपर आगई धर्म निर्णय में छल कपट करना आर्यसमाज ने खूब सीखा है और इसी से इस का कल्याण होगा क्या कोई भी आर्यसमाजी ऐसे पुरुषों को धार्मिक के नाम से पुकार सकता है कि जो लोग पद पद पर कपट कर धोका देते हैं अस्तु अब इस में यह लिखा है कि तपे हुए अग्नि, वायु, सूर्य, से ऋगू० यजु० साम० प्रकट हुए क्या वास्तव में सच ही यह तीनों ऋषि थे क्या ईश्वर ने इनको

चूल्हे या भट्टी अथवा भाड़ में तपाया था और जब यह तप गये बिल्कुल लाल हो गये तब इन को वेदों का ज्ञान हुआ था इन का तपाया जाना ही सिद्ध करता है कि यह ऋषि नहीं थे किन्तु वायु, अग्नि, सूर्य जड़ थे इन आठ युक्तियों से हम दयानन्द के सिद्धान्त को गिराते हैं यदि कोई आर्यसमाजी आगे को लेखनी उठावेगा तो फिर स्वामी दयानन्द की मानी वेदोत्पत्ति वेद विरुद्ध और अनर्गल सिद्ध करने के लिये १६ युक्ति और देंगे परन्तु हमें तो विश्वास है कि स्वामी दयानन्द के लेखों की कलाई खुल गई और अब आगे को उनके लेख सत्य करने के लिये कोई भी पुरुष साहस नहीं कर सकता अतएव इस को यहीं छोड़ता हूँ और वेदों की उत्पत्ति किस प्रकार हुई अग्नि, वायु, सूर्य यह कौन हैं इन का ठीक निर्णय लिखता हूँ आगे पढ़िये । ब्रह्माने प्रथम देवताओं को रचा फिर वेद को प्रकट किया—

कर्मात्मनां च देवानां सोऽमृजत्प्राणिनां प्रभुः ।

साध्यानां च गणं सूक्ष्मं यज्ञं चैव सनातनम् ॥

मनु० अ० १ श्लो० २२

अर्थ—उस ब्रह्मा ने देवताओं के गण को और इंद्रादिक प्राणियों को तथा कर्म स्वभावों को अप्राणि पाषाणादिकों को और साध्य जो देवता विशेष हैं तिन के समूह को ज्योतिष्ठोम आदि यज्ञों को और सूक्ष्म साध्यनाम देवता विशेष के समूह को उत्पन्न किया ॥ २२ ॥

अग्निं वायु रविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम् ।

दुदोहं यज्ञसिद्ध्यर्थमृग्यजुः साम लक्षणम् ॥

मनु० अ० १ श्लो० २३

अग्निवायुरविभ्यस्त्वित्यादि । ब्रह्म ऋग्यजुः सामसंज्ञं वेद त्रयं अग्नि वायु रविभ्य आकृष्टवान् । सनातनं नित्यं । वेदापौ रुषेयत्वपक्ष एव मनोरभिमतः । पूर्व कल्पे ये वेदास्त एव परमात्म- तैर्ब्रह्मणः सर्वज्ञस्य स्मृत्यारूढाः । तानेव कल्पादौ अग्नि वायु रविभ्य आचकर्ष । श्रौतश्चायमर्थो न शङ्कनीयः । तथाच

श्रुतिः—“अग्नेर्ऋग्वेदो वायोर्यजुर्वेद आदित्यात्सामवेदः” इति ।
आकर्षणार्थत्वा दुहि धातोर्नाग्निवायुरखीणाम कथित कर्मता
किंत्वपादानतैव । यज्ञसिद्ध्यर्थं त्रयी संपाद्यत्वाद्य ज्ञानां आपीन
स्थक्षीर वद्विद्य माना नामैव वेदानामभि व्यक्ति प्रदर्शनार्थं
आकर्षण वाच को गोणो दुहिः प्रयुक्तः ।

भाषार्थ—“अग्नि, वायु, रविभ्यः” इत्यादि का अर्थ लिखते हैं अग्नि, वायु, रवि
से ऋग्यजु साम नाम वाले तीन वेद को ब्रह्म ने खींचा वेद सनातन और नित्य हैं
वेदों को जो अयौरूपेय माना है अर्थात् यह वेद पुरुष (ब्रह्म) के भी बनाये नहीं
क्योंकि नित्य सनातन हैं यही पक्ष ठीक सिद्ध होता है पूर्व कल्प में भी वेद थे वे
ही वेद परमात्मा (ईश्वर) की मूर्ति जो ब्रह्मा है उसकी स्मृति में आये उन्हीं वेदों
को कल्प के आदि में अग्नि, वायु, रवि, से आकर्षण किया इस अर्थ में शंका न करना
क्योंकि “अग्नेर्ऋग्वेदः” इत्यादि श्रुति कहती है अब एक बात व्याकरण की कहते हैं
ये वेद अग्न्यादि से आकर्षित हुए इसी कारण से अग्नि, वायु, रवि इनको दुह धातु
की अकर्मता रही यदि आकर्ष न माना जाये तो द्विकर्म दुह धातु का कर्म हो जावेगे
इनको अकथित कर्मता नहीं अपादानता है अतएव “अग्नि, वायु, रविभ्यः” यह अपा-
दान में पञ्चमी विभक्ति है यज्ञ की सिद्धि के अर्थ वेदत्रयी में जो कहे यज्ञ हैं उन
यज्ञों के अर्थ जैसे आपीन (पेन) अनेक देशों के भेद से जिसके अनेक नाम हैं उस
आपीन स्थित दूध की भांति प्रथम ही विद्यमान जो वेद हैं उनके प्रकटता दिखलाने
के लिये आकर्षण वाचक दुह धातु का प्रयोग है ।

अर्थात् जैसे इस कल्प में वेद हैं पूर्व कल्प में यह ऐसे ही थे क्योंकि यह नित्य
सनातन है और की तो क्या कहे यह ईश्वर के भी बनाये नहीं पूर्व कल्प में जब
प्रलय हुआ यह उस समय भी लीन अवस्था में रहे जब इस कल्प की रचना हुई तब
यह वेद रूपी ज्ञान इसी प्रकार अग्नि, वायु, रवि तत्वों में समाया था जैसे कि इस
समय पञ्च तत्व में ईश्वर समा रहा है कल्प के आदि में परमात्मा की साकार मूर्ति
जो ब्रह्मा है उसकी स्मृति में आया कि पूर्व कल्प में ईश्वरीय ज्ञान वेद था और अब

वह अव्यक्त रूप से अग्नि, वायु, रवि तत्व में मिला है उसको पृथक् करना चाहिये उसने अपनी अनन्त शक्ति से तीनों तत्वों को तपाया इसके पश्चात् वेद को इनमें से खींच कर प्रकट कर अपने पुत्र अर्थात् को पढ़ाया अर्थात् ने अङ्गिरा को और अङ्गिरा ने भारद्वाज को इस प्रकार यह ईश्वरीय ज्ञान संसार में फैला इसके पश्चात् भी कुछ २ मन्त्र किसी २ ऋषि को समाधि अवस्था में मिले उनके नाम भी खास वेद व्याकरणादि में लिखे हैं वेद के प्रकट होने का मार्ग शास्त्रों में इस प्रकार बतलाया है इन सबको न देखकर स्वामी दयानन्द ने तत्वों को ही ऋषि मान लिया बस इसी एक उदाहरण से पाठक जान सकते हैं कि दयानन्द को वेदों का कितना ज्ञान था हम अपनी लेखनी लिखते क्या अच्छे लगें।

अब इस वेदोत्पत्ति को छोड़कर फिर इतिहास पुराण पर चलिये पं० तुलसीरामजी लिखते हैं कि यही अर्थ आप भी द० ति० भा० पृ० ४६ पं० १७ में लिखते हैं कि “जिस में कोई कथा प्रसङ्ग होता है सो इतिहास जिस में जगत् की पूर्वावस्था सर्गादि का निरूपण होता है सो पुराण” सो ये दोनों बातें ब्राह्मण ग्रन्थों में (जैसा कि हमने ऊपर गोपथ और शतपथ का प्रमाण दिया) भी पाई जाती हैं इस से ये इतिहास पुराण हुवे । पं० ज्वालाप्रसादजी ने जो कुछ लिखा है वह सोलह आने चौसठ पैसे सत्य है किन्तु पं० तुलसीराम की समझ ही विलक्षण है या तो समझ में नहीं आया या जान बूझ कर छिपाते हैं पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र ने यही तो लिखा कि जिस में जगत् की पूर्वावस्था और सर्गादि का निरूपण होता है सो पुराण है पं० तुलसीराम ने नहीं मालूम सर्गादि पद का क्या अर्थ किया है एक सर्ग और आदि पद करके चार विषय और लिये जाते हैं ऐसे ५ विषय जिस में हों उस का नाम पुराण हैं नीचे देखिये—

सर्गश्च प्रति सर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च ।

वंशानुचरितं चैव पुराणं पंच लक्षणम् ॥

अर्थ—सर्ग, विसर्ग, वंश, मन्वन्तर, वंशचरित्र, ये पांच विषय जिस में हों उसका नाम पुराण है पं० तुलसीराम तो क्या कोई भी आर्यसमाजी वंश का वर्णन

१ यहां तक मनुस्मृति का अर्थ है २ यह शतपथ कहता है ३ यह मुण्डकोपनिषद कहता है ४ यह मल ऋग्वेद और अष्टाध्यायी आदि व्याकरण के ग्रन्थ कहते हैं ।

और मनुओं का हाल तथा वंश के मनुष्यों के चरित्र किसी ब्राह्मण ग्रन्थ में नहीं दिखला सकते जब कि यह माना है कि पांच विषय जिसमें पूरे हों उस को पुराण कहते हैं फिर तीन विषय जिन ब्राह्मण ग्रन्थों में बिल्कुल ही नहीं और सर्ग तथा प्रतिसर्ग जैसे होने चाहिये वैसे नहीं जब उन में पांच विषय ही नहीं फिर नहीं मालूम स्वामी दयानन्द के मिथ्या लेख के सत्य करने को पं० तुलसीराम क्यों साहस करते हैं पांच विषय न होने के कारण ब्राह्मण ग्रन्थ पुराण नहीं हो सकते ।

इतिहास के विषय में पं० ज्वालाप्रसादजी ने यह बतलाया कि जिस में कथा प्रसङ्ग हो उसको इतिहास कहते हैं पं० तुलसीरामजी लिखते हैं कि बस इस लक्षण से ब्राह्मण ग्रन्थ ही इतिहास हैं क्योंकि उन में मनुष्यों की कथा आती है यहां पर भी पं० तुलसीराम आग्रह के पंजे में पड़े हैं क्योंकि संहिता और ब्राह्मणों में किसी खास मनुष्य के विषय में कुछ जग सा लेख मिलता है इसको कथा प्रसङ्ग या इतिहास नहीं कहते विस्तार पूर्वक मनुष्यों के चरित्रों का वर्णन जिस में हो उसको इतिहास कहते हैं यह लक्षण ठीक महाभारतादि ग्रन्थों में घट सकता है न कि ब्राह्मणों में यदि ब्राह्मणों में यह लक्षण है तो फिर आर्यसमाजी बतलावें कि राजा रघु तथा दलीप या पृथु या वेन आदि २ राजाओं की कथा ब्राह्मणों ने कहा लिखी है न सही इनकी किसी और ही राजा की पूरी कथा दिखलावें सो त्रिकाल में कहीं मिल नहीं सकती इस के अलावा यदि पं० तुलसीरामजी के कथनानुसार हम ब्राह्मण ग्रन्थों को ही इतिहास मान लें तब तो भारत का सारा गौरव नष्ट हो जावेगा सृष्टि के आदि से हिन्दुस्तान में मुसलमानों के आने तक या जहां तक के राजाओं की कथा महाभारतादि इतिहासों में लिखी है उनका पता भी न लगेगा राम रावण संग्राम और महाभारत युद्ध आदि २ कई एक संग्रामों का भी बे पता हो जावेगा हिन्दू जाति का समस्त गौरव नष्ट हो जावेगा मालूम होता है कि पं० तुलसीराम अपने देश का गौरव नष्ट करके देशोन्नति करना चाहते हैं यह आर्य-समाज की देशोन्नति है जिस के बारे में रात दिन समाज की प्रशंसा की जाती है कि समाज देशोन्नति करेगी हम अधिक क्या कहें महाभारत ग्रन्थ पर कई स्थान में "इतिहास" यह शब्द लिखा है स्वामी दयानन्दजी के मत में महाभारत ग्रन्थ ईश्वर कृत है इसके लिये धर्मप्रकाश के द्वितीय समुल्लास पृ० १५२ पर लिखा स्वामी दयानन्द का दिया शोलेतूर का विज्ञापन पढ़िये जब कि स्वामी दयानन्दजी महाभारत को ईश्वरकृत मानते हैं और उसमें इतिहास नाम से महाभारत को

पुकारा गया है नहीं मालूम पं० तुलसीराम उसको इतिहास क्यों नहीं मानते क्या तुलसीराम की दृष्टि में स्वामी दयानन्द का लेख कुछ भी महत्व नहीं रखता जब यह स्वामी दयानन्द के लेख को ही नहीं मानते फिर पं० ज्वालाप्रसाद के लेख को न मानें तो क्या कोई आश्चर्य है यदि नहीं मानते तो न मानें किन्तु स्वामी दयानन्दजी तो महाभारत को इतिहास मानते हैं इससे अधिक प्रमाण देना फिजूल समझता हूँ।

इसके आगे पं० तुलसीराम जी लिखते हैं कि “चत्वारो वेदाः” कह कर फिर “सर हस्याः” इत्यादि की क्या आवश्यकता रहती। भिन्न ग्रहण से जाना जाता है कि ये ग्रन्थ वेद से भिन्न ही हैं। इस लेख के लिखने से समाज का कोई लाभ नहीं और न पं० ज्वालाप्रसादजी ने इस पर कोई आपत्ति की है उन्होंने तो यह लिखा था कि “साङ्गाः” लिख कर इतिहास पुराण लिखना सावित करता है कि पुराण इतिहास ग्रन्थ भिन्न हैं किन्तु इसके ऊपर तो पं० तुलसीरामजी मौन ही धारण कर बैठे।

इस के आगे पं० ज्वालाप्रसादजी न्याय दर्शन के वात्स्यायन भाष्य को लिख कर दिखलाते हैं कि वात्स्यायन भाष्य में तो पुराण और इतिहास को ५ वां वेद बतलाया है इस के ऊपर पं० तुलसीरामजी वही लिखते हैं कि ब्राह्मण ग्रन्थों को ही पुराण इतिहास कहते हैं ब्राह्मण ग्रन्थ पुराण और इतिहास हैं इस में पं० तुलसीराम ने कोई प्रमाण नहीं दिया केवल लिख देते हैं और जो कुछ भी आगे लिखा है सब समस्त ब्राह्मण ग्रन्थों के ही लिये लिखा है किन्तु कोई यह तो बतलावे कि ब्राह्मण ग्रन्थों को पुराण और इतिहास अमुक जगह लिखा है।

इस के आगे पं० ज्वालाप्रसादजी ने “सवृहती” वेद मन्त्र का प्रमाण दिया है कि इस मन्त्र में वेद ने पुराणों को प्रमाण माना है इस के ऊपर पं० तुलसीरामजी लिखते हैं कि वेद में सामान्य शब्द इतिहास पुराणादि हैं किसी शिवपुराण अग्नि पुराणादि आप के अभिमत पुराण का नाम नहीं। वेद में यदि “मनुष्य” शब्द आजावे तो क्या आप कहेंगे कि देखो वेद में मनुष्य शब्द है और हम (पं० ज्वालाप्रसाद) भी मनुष्य हैं इस लिये हमारा वर्णन वेद में आया है। इसका सविस्तार उत्तर मेरे वनाये “ऋगादिभाष्य भूमिकेन्द्रपरागे द्वितीयोऽशः” में छपा है वहां देख लीजिये। जैसे आप ने महामोहविद्रावण, सत्यार्थभास्कर, सत्यार्थविवेक, मह-

ताव दिवाकर, मूर्तिरहस्य, मूर्तिपूजा आदि पुस्तकों के आशयों को इकट्ठा करके पिष्टपेषण किया है वैसा हम अच्छा नहीं समझते । वेद में सामान्य शब्द पुराण है इसी कारण से समस्त अठारह पुराणों का ग्रहण हो जावेगा क्योंकि जब किसी खास का नाम नहीं होता ऐसी दशा में समस्त का ही ग्रहण हुआ करता है यह नियम "त्यक्तानुबन्धे सामान्य ग्रहणम्" अटल है वेद में यदि मनुष्य शब्द आजावे तो वेशक पं० ज्वालाप्रसादजी अकेले का ग्रहण नहीं होगा किन्तु मनुष्यमात्र का होगा इस के लिये तो पं० तुलसीराम स्वतः ही स्वीकार करते हैं । यदि हम अकेले किसी पुराण का ग्रहण करते उस दशा में तो पं० तुलसीराम को पं० ज्वालाप्रसादजी का उदाहरण देना उचित था किन्तु जब हम समस्त पुराणों का ग्रहण करते हैं ऐसी दशा में एत-राज करना बिल्कुल अयोग्य और भूल है ।

इस के आगे पं० तुलसीरामजी लिखते हैं कि इस के लिये हमारा बनाया ऋगादिभाष्यभूमिकेन्द्रपरागे द्वितीय अंश में देखना क्या खूब रही यह उत्तर नहीं है किन्तु एक किताब के बेचने का नोटिस है जो आप ने वहां लिखा वह लेख क्या यहां पर नहीं लिख सकते थे फिर आपने उस में कौन सी बढ़िया बात लिख दी । उस में भी तो यही लिखा है कि ब्राह्मणों को पुराण कहते हैं लिख तो दिया मगर प्रमाण के स्थान में तो वहां पर भी शून्य भगवान् की ही कृपा है ।

इस के आगे पं० तुलसीरामजी लिखते हैं कि हम आप की भांति के मनुष्य नहीं जैसे आप ने महामोहविद्रावण, सत्यार्थभास्कर, सत्यार्थविवेक, महताव दिवा-कर, मूर्तिरहस्य, मूर्तिपूजा आदि पुस्तकों के आशयों को इकट्ठा करके पिसे हुए को पीसा है ऊपर लिखे हुए ग्रन्थों के कर्त्ताओं ने अपनी अपनी बनाई पुस्तकों में समस्त प्रमाण वैदिक ग्रन्थों के लिखे हैं इन पुस्तकों के निर्मात्ताओं ने एक भी प्रमाण स्वतः नहीं बनाया गर्ज यह है कि प्रमाण इन के बनाये नहीं किन्तु वेदादि सच्छास्त्रों के हैं यदि वे ही प्रमाण पं० ज्वालाप्रसादजी ने दयानन्द तिमिरभास्कर में लिख दिये तो इस में हानि क्या होगई हानि तो जब समझी जाती जब कि उपरोक्त ग्रन्थों के कर्त्ताओं के बनाये हुए प्रमाणों को पं० ज्वालाप्रसादजी अपने बनाये करके लिख देते मिश्रजी ने तो वह ग्रन्थ बनाया कि जिस को देखकर सैकड़ों मनुष्यों ने समाज को तिलांजलि दे दी और जो आज भी बड़े बड़े महोपदेशकों के बगल में दबा रहता है और आप जो अपनी इतनी बड़ाई करते हैं आप के बनाये भास्करप्रकाश को तो पं०

शिवशंकर आदि शास्त्रार्थ में कह देते हैं कि हम भास्करप्रकाश की बात को नहीं मानते पं० तुलसीराम ने तो बिना विचारे जो जी में आया लिख मारा है इसके अलावा जो मनुष्य धर्मप्रकाश को देखता है वही भास्करप्रकाश की प्रशंसा करता है शुरु से आखिर तक एक विषय की भी तो पुष्टि न कर सके फिर नहीं मालूम आप अपनी प्रशंसा क्यों करते हैं जब उत्तर न दे सके तब पं० ज्वालाप्रसाद को उलाहिना देकर ही भास्करप्रकाश के पन्ने काले कर दिये। इसी वेद मन्त्र पर आपने इतनी आल्हा गाई एक तिहाई पृष्ठ काला किया और पं० ज्वालाप्रसादजी से सौतों कैसी लड़ाई ठानी किन्तु तिमिरभास्कर के लेख का भी कुछ उत्तर दिया उत्तर में तो केवल जीरो ही रहा।

इसके आगे पं० ज्वालाप्रसाद जी ने “एतच्छ्रुत्वारहः सूतः” बालकाण्ड का श्लोक लिख कर यह दिखलाया है कि महर्षि वाल्मीकि कहते हैं कि अब तुम उस कथा को सुनो जो हमने पुराणों में सुनी है जो कथा वाल्मीकि में कही है वह कथा ब्राह्मण ग्रन्थों में नहीं है किन्तु पुराणों में है इस कारण से भागवतादि को ही पुराण कहते हैं इसके ऊपर पं० तुलसीराम जी मौन ही हो बैठे।

इसके अलावा अश्वमेधयज्ञ और मृतक पितरो के श्राद्ध में पुराणों का सुनना पं० ज्वालाप्रसादजी ने प्रमाण देकर लिखा है इस के ऊपर पं० तुलसीरामजी यह लिखते हैं कि धन्य है ! आप का ऐसे निश्चय हो जाता है तभी तौ इतना पुस्तक बढ़ाय बैठे। भला “८ वें ६ वें दिन में पुराण इतिहास सुनना आदि” इस से यह कैसे सिद्ध होगया कि ब्राह्मणों से पुराणादि पृथक् हैं प्रत्युत यह सिद्ध होगया कि सूत्रकार के समय में आप के माने व्यासकृत १८ पुराण तौ थे ही नहीं इससे सूत्रकार ने ब्राह्मण ग्रन्थों ही को लक्ष्य करके इतिहास पुराण का पाठ लिखा है। व्यास जी से पूर्व भी कई राजाओं ने अश्वमेध यज्ञ किये उन यज्ञों में ८ वें ६ वें दिन ब्राह्मण ग्रन्थों ही का पाठ किया होगा।

बड़ी खुशी की बात है कि पं० तुलसीरामजी ने वेदों में अश्वमेधयज्ञ का तो होना माना जिससे स्वामी दयानन्दकृत वेद भाष्य अप्रामाणिक हो गया स्वामी दयानन्दजी ने अपने भाष्य में वेदों से समस्त यज्ञों को धता बुला दिया स्वामी दयानन्दजी तो वेदों में अश्वमेधादि यज्ञ ही नहीं मानते और तुलसीराम उन का खोना मानते हैं पाठक इस विरोधपर स्वतः विचार करसकते हैं कि गुरु सच्चा या चेला।

और व्यासजी ने तो पुराणों के श्लोक बना दिये हैं पुराण ज्ञान तो अनादि है व्यास को भी पुराणों का उपदेश देवर्षि नारद से हुवा है नारद को सनतकुमार से, सनतकुमार को ब्रह्मा से, फिर आप कैसे कहते हैं कि उस समय में पुराण नहीं थे इस विषय की पुष्टि के लिये पुराण देखिये ।

इसके आगे पं० तुलसीरामजी “एवं वेदे” इस श्लोक पर कहते हैं कि यह श्लोक बिना पते का है मालूम होता है कि पं० ज्वालाप्रसादजी ने ही गढ़ा है हम इस श्लोक को फेरे लेते हैं इस का पता पं० ज्वालाप्रसादजी से पूछेंगे यदि मिल गया तो आर्यसमाज को उत्तर देना होगा नहीं तो कोई आवश्यकता उत्तर की नहीं ।

इसके आगे पं० ज्वालाप्रसादजी ने “एतच्छ्रुत्वारहः” “पुराणमितिहासश्च” “अष्टादश पुराणानि” “सर्गश्च प्रति सर्गश्च” “पुराणं मानवो धर्मः” वाल्मीकीय रामायण और महाभारत के इन श्लोकों से यह दिखलाया कि श्रीमद्भागवतादि को ही पुराण कहते हैं इसके ऊपर पं० तुलसीरामजी लिखते हैं कि द० ति० भा० पृ० ५० और ५१ में मनु महाभारत वाल्मीकीय रामायण अमरकोष के श्लोक जिन में पुराण शब्द और पुराण का लक्षण है लिखे हैं परन्तु उन में से किसी में भी “ब्रह्मवैवर्त्तादि का नाम पुराण है” यह नहीं लिखा तौ फिर सामान्य पुराण शब्द मात्र आने से कुछ भी सिद्ध नहीं हो सकता ।

जब पं० तुलसीराम से उत्तर देते न बना तब यही लिख दिया कि उन में भागवतादि पुराणों का नाम कहीं पर भी नहीं है वाल्मीकीय रामायण के श्लोक में साफ लिखा है कि मैं अब उन कथाओं को सुनाता हूँ जो पुराणों में लिखी हैं आगे जो कथा सुनाई है वे सगर, भगीरथ, वलि आदि की हैं क्या इन से श्रीमद्भागवतादि पुराणों का ग्रहण नहीं हो गया क्या ब्राह्मण ग्रन्थों में भी ऊपर के राजाओं की कथा लिखी हैं क्या जवाब है मौनता के सिवाय और कुछ भी उत्तर नहीं हो सकता ।

“अष्टादश पुराणानि”, इस श्लोक में पुराणों की संख्या १८ और इन के निर्माता व्यास को बतलाया क्या सचही ब्राह्मण ग्रन्थ १८ हैं और वे सब वेद व्यास ने बनाये हैं यदि नहीं तो फिर १८ संख्या देने से या वेद व्यास कर्ता बतलाने पर श्रीमद्भागवतादि पुराणों का ग्रहण नहीं होगा जबरन संसार को अन्धा बनाना तात्सुब नहीं तो और क्या है ।

“सर्गश्च प्रतिसर्गश्च” इस श्लोक में पांच लक्षण होने से पुस्तक का नाम पुराण रखा गया है क्या सच ही ब्राह्मण ग्रन्थों में यह पांच बातें हैं यदि नहीं हैं तो श्रीमद्भागवतादि को पुराण क्यों न माना जावे ।

“पुराणं मानवो धर्म” इसमें जब एक स्थान में पुराण और दूसरे स्थान में साङ्ग वेद पड़ा है तो फिर पुराण शब्द से श्रीमद्भागवतादि क्यों न लिये जावें ब्राह्मण ग्रन्थ तो साङ्ग वेद में आजावेंगे किसी का भी उत्तर न देना और केवल यह लिख देना कि भागवतादि पुराण नहीं लिये जा सकते क्या किसी विचारशील मनुष्य को तोषदायक हो सकता है हम जोर देकर कह सकते हैं कि इस विषय में आर्य-समाज चारों खाने चित्त गिरी और पं० तुलसीरामजी कुछ भी न लिख सके और स्वामी दयानन्द की मिथ्या कल्पना ऊपर आ गई अब आगे को देखना है कि समाज इस विषय पर लेखनी उठाती है या पुराणों को प्रमाण मानती है ।

तिलकादि ।

सत्त्वार्थप्रकाश—

जो विद्या पढ़ने पढ़ाने के विघ्न हैं उन को छोड़ देवें जैसा कुसंग अर्थात् दुष्ट विषयीजनों का संग, दुष्टव्यसन जैसा मद्यादि सेवन और वेश्यागमनादि, बाल्यावस्था में विवाह अर्थात् पच्चीसवें वर्ष से पूर्व पुरुष और सोलहवें वर्ष से पूर्व स्त्री का विवाह हो जाना, पूर्ण ब्रह्मचर्य्य न होना, राजा, माता, पिता और विद्वानों का प्रेम वेदादि शास्त्रों के प्रचार में न होना, अतिभोजन, अतिजागरण करना, पढ़ने पढ़ाने परीक्षा लेने वादेने में आलस्य, वा कपट करना, सर्वोपरि विद्या का लाभ न समझना, ब्रह्मचर्य्य से बल, बुद्धि, पराक्रम, आरोग्य, राज्य, धन की वृद्धि न मानना, ईश्वर का ध्यान छोड़ अन्य पाषाणादि जड़ मूर्ति के दर्शन पूजन में व्यर्थ काल खोना, माता, पिता, अतिथि और आचार्य्य, विद्वान् इन को सत्य मूर्ति मान कर सेवा सत्संग न करना, वर्णाश्रम के धर्म को छोड़ ऊर्ध्वपुण्ड्र, त्रिपुण्ड्र, तिलक, कंठी, मालाधारण, एकादशी, त्रयोदशी आदि व्रत करना, काश्यादि तीर्थ और राम, कृष्ण, नारायण, शिव, भगवती, गणेशादि के नामस्मरण से पाप दूर होने का विश्वास,

पाखंडियों के उपदेश से विद्या पढ़ने में अश्रद्धा का होना, विद्या धर्म योग परमेश्वर की उपासना के बिना मिथ्या पुराणनामक भागवतादि की कथादि से मुक्ति का मानना, लोभ से धनादि में प्रवृत्त होकर विद्या में प्रीति न रखना, इधर-उधर व्यर्थ घूमते रहना इत्यादि मिथ्या व्यवहारों में फँस के ब्रह्मचर्य और विद्या के लाभ से रहित होकर रोगी और मूर्ख बने रहते हैं ।

आजकल के संप्रदायी और स्वार्थी ब्राह्मण आदि जो दूसरों को विद्या सत्संग से हटा और अपने जाल में फँसा के उनका तन मन धन नष्ट कर देते हैं और चाहते हैं कि जो क्षत्रियादि वर्ण पढ़ कर विद्वान् हो जायेंगे तो हमारे पाखंड जाल से छूट और हमारे छल को जान कर हमारा अपमान करेंगे इत्यादि विघ्नों को राजा और प्रजा दूर करके अपने लड़कों और लड़कियों को विद्वान् करने के लिये तन मन धन से प्रयत्न किया करें (प्रश्न) क्या स्त्री और शूद्र भी वेद पढ़ें ? जो ये पढ़ेंगे तो हम फिर क्या करेंगे ? और इन के पढ़ने में प्रमाण भी नहीं है जैसा यह निषेध हैः—

स्त्रीशूद्रौ नाधीयातामिति श्रुतेः ॥

स्त्री और शूद्र न पढ़ें यह श्रुति है (उत्तर) सब स्त्री और पुरुष अर्थात् मनुष्यमात्र को पढ़ने का अधिकार है । तुम कुआ में पड़ो और यह श्रुति तुम्हारी कपोलकल्पना से हुई है किसी प्रामाणिक गून्थ की नहीं । और सब मनुष्यों के वेदादि शास्त्र पढ़ने सुनने के अधिकार का प्रमाण यजुर्वेद के छब्बीसवें अध्याय का दूसरा मन्त्र हैः—

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः । ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय ॥ यजु० अ० २६ । २ ॥

परमेश्वर कहता है कि (यथा) जैसे मैं (जनेभ्यः) सब मनुष्यों के लिये (इमाम्) इस (कल्याणीम्) कल्याण अर्थात् संसार और मुक्ति के सुख देने वाली (वाचम्) ऋग्वेदादि चारों वेदों की वाणी का (आ, वदानि) उपदेश करता हूँ वैसे तुम भी किया करो । यहां कोई ऐसा प्रश्न करे कि जन शब्द से द्विजों का ग्रहण करना चाहिये क्योंकि स्मृत्यादि गून्थों में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य ही को वेदों के पढ़ने का अधिकार लिखा है स्त्री और शूद्रादि वर्णों को नहीं (उत्तर) (ब्रह्मराजन्याभ्याम्) इत्यादि देखो परमेश्वर स्वयं कहता है कि हमने ब्राह्मण, क्षत्रिय, (अर्याय)

वैश्य (शूद्राय) शूद्र और (स्वाय) अपने भृत्य वा स्त्रियादि (अरणाय) और अति शूद्रादि के लिये भी वेदों का प्रकाश किया है अर्थात् सब मनुष्य वेदों को पढ़ पढ़ा और सुन सुना कर विज्ञान को बढ़ा के अच्छी बातों का गृहण और बुरी बातों का त्याग करके दुःखों से छूट कर आनन्द को प्राप्त हों । कहिये अब तुम्हारी बात मानें वा परमेश्वर की ! परमेश्वर की बात अवश्य माननीय है । इतने पर भी जो कोई इसको न मानेगा वह नास्तिक कहावेगा क्योंकि “नास्तिको वेदनिन्दकः” वेदों का निन्दक और न मानने वाला नास्तिक कहाता है । क्या परमेश्वर शूद्रों का भला करना नहीं चाहता ? क्या ईश्वर पक्षपाती है कि वेदों के पढ़ने सुनने का शूद्रों के लिये निषेध और द्विजों के लिये विधि करे ? जो परमेश्वर का अभिप्राय शूद्रादि के पढ़ाने सुनाने का न होता तो इनके शरीर में वाक् और श्रोत्र इन्द्रिय क्यों रचता जैसे परमात्मा ने पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, चन्द्र, सूर्य और अन्नादि पदार्थ सब के लिये बनाये हैं वैसे ही वेद भी सब के लिये प्रकाशित किये हैं और जहां कहीं निषेध किया है उसका यह अभिप्राय है कि जिसको पढ़ने पढ़ाने से कुछ भी न आवे वह निर्बुद्धि और मूर्ख होने से शूद्र कहाता है । उसका पढ़ना पढ़ाना व्यर्थ है और जो स्त्रियों के पढ़ने का निषेध करते हो वह तुम्हारी मूर्खता, स्वार्थता और निर्बुद्धिता का प्रभाव है देखो वेद में कन्याओं के पढ़ने का प्रमाणः—

ब्रह्मचर्येण कन्यायुवानंविन्दतेपतिम् ॥ अथर्व० कां० ११। प्र० २४। अ० ३। मं० १८ ॥

जैसे लड़के ब्रह्मचर्य सेवन से पूर्ण विद्या और सुशिक्षा को प्राप्त होके युवति विदुषी, अपने अनुकूल प्रिय सदृश स्त्रियों के साथ विवाह करते हैं वैसे (कन्या) कुमारी (ब्रह्मचर्येण) ब्रह्मचर्य सेवन से वेदादि शास्त्रों को पढ़ पूर्ण विद्या और उत्तम शिक्षा को प्राप्त युवति होके पूर्ण युवावस्था में अपने सदृश प्रिय विद्वान् (युवानम्) पूर्ण युवावस्थायुक्त पुरुष को (विन्दते) प्राप्त होवे इसलिये स्त्रियों को भी ब्रह्मचर्य और विद्या का गृहण अवश्य करना चाहिये (प्रश्न) क्या स्त्री लोग भी वेदों को पढ़ें ? (उत्तर) अवश्य, देखो श्रौत सूत्रादि मेंः—

इमं मन्त्रं पत्नी पठेत् ॥

अर्थात् स्त्री यज्ञ में इस मन्त्र को पढ़े । जो वेदादि शास्त्रों को न पढ़ी होवे तो

यज्ञ में स्वर सहित मंत्रों का उच्चारण और संस्कृतभाषण कैसे कर सके भारतवर्ष की स्त्रियों में भूषणरूप गागी आदि वेदादि शास्त्रों को पढ़ के पूर्ण विदुषी हुई थीं यह शतपथ ब्राह्मण में स्पष्ट लिखा है। भला जो पुरुष विद्वान् और स्त्री अविदुषी और स्त्री विदुषी और पुरुष अविद्वान् हो तो नित्यप्रति देवासुर-संग्राम घर में मचा रहै फिर सुख कहाँ ! इसलिये जो स्त्री न पढ़ें तो कन्याओं की पाठशाला में अध्यापिका क्यों कर हो सकें तथा राजकार्य न्यायाधीशत्वादि, गृहाश्रम का कार्य जो पति को स्त्री और स्त्री को पति प्रसन्न रखना घर के सब काम स्त्री के आधीन रहना इत्यादिकाम बिना विद्याके अच्छे प्रकार कभी ठीक नहीं हो सकते।

देखो आर्यावर्त के राजपुरुषों की स्त्रियां धनुर्वेद अर्थात् युद्ध विद्या भी अच्छे प्रकार जानती थीं क्योंकि जो न जानती होतीं तो केकयी आदि दशरथ आदि के साथ युद्ध में क्योंकर जा सकतीं ? और युद्ध कर सकतीं ! इसलिये ब्राह्मणी और क्षत्रियों को सब विद्या, वैद्या को व्यवहार विद्या और शूद्रा को पाकादि सेवा की विद्या अवश्य पढ़नी चाहिये जैसे पुरुषों को व्याकरण, धर्म और अपने व्यवहार की विद्या न्यून से न्यून अवश्य पढ़नी चाहिये वैसे स्त्रियों को भी व्याकरण, धर्म वैद्यक, गणित, शिल्पविद्या तो अवश्य ही सीखनी चाहिये क्योंकि इनके सीखे बिना सत्यासत्य का निर्णय, पति आदि से अनुकूल वर्तना, यथायोग्य सन्तानोत्पत्ति, उनका पालन वर्द्धन और सुशिक्षा करना, घर के सब कार्यों को जैसा चाहिये वैसा करना कराना वैद्यक विद्या से औषधवत् अन्न पान बनाना और बनवाना नहीं कर सकतीं जिससे घर में रोग कभी न आवे और सब लोग सदा आनन्दित रहें शिल्प विद्या के जाने बिना घर का बनवाना वस्त्र आभूषण आदि का बनाना बनवाना गणित विद्या के बिना सब का हिसाब समझना समझाना वेदादि शास्त्र विद्या के बिना ईश्वर और धर्म को न जान के अधर्म से कभी नहीं बच सके। इसलिये वे ही धन्यवादार्ह और कृत्यकृत्य हैं कि जो अपने सन्तानों के ब्रह्मचर्य, उत्तम शिक्षा और विद्या से शरीर और आत्मा के पूर्ण बल को बढ़ावें जिससे वे सन्तान मातृ, पितृ, पति, मामु, स्वशुर, राजा, प्रजा, पड़ोसी, इष्ट, मित्र और सन्तानादि से यथायोग्य धर्म से वर्त्तें। यही कोश अक्षय है इसको जितना व्यय करे उतना ही बढ़ता जाय अन्य सब कोश व्यय करने से घट जाते हैं और दायभागी भी निजभाग लेते हैं और विद्या कोश का चोर वा दायभागी कोई भी

नहीं होसकता इस कोश की रक्षा और वृद्धि करनेवाला विशेष राजा और प्रजा भी हैं ।

कन्यानां सम्प्रदानं च कुमाराणां च रक्षणम् ॥ मनु० ७ । १५२ ॥

राजा को योग्य है कि सब कन्या और लड़कों को उक्त समय से उक्त समय तक ब्रह्मचर्य में रख के विद्वान् कराना जो कोई इस आज्ञा को न माने तो उसके माता पिता को दण्ड देना अर्थात् राजा की आज्ञा से आठ वर्ष के पश्चात् लड़का वा लड़की किसी के घर में न रहने पावे किन्तु आचार्यकुल में रहें जब तक समावर्त्तन का समय न आवे तब तक विवाह न होने पावे ॥

सर्वेषामेव दानानां ब्रह्मदानं विशिष्यते । वार्यन्नगोमहीवासस्तिलकाञ्चनसर्पिषाम् ॥ मनु० ४ । २३३ ॥

संसार में जितने दान हैं अर्थात् जल, अन्न, गौ, पृथिवी, वस्त्र, तिल, सुवर्ण और घृतादि इन सब दानों से वेद विद्या का दान अतिश्रेष्ठ है । इस लिये जितना बन सके उतना प्रयत्न, तन, मन, धन से विद्या की वृद्धि में किया करे । जिस देश में यथायोग्य ब्रह्मचर्य विद्या और वेदोक्त धर्म का प्रचार होता है वही देश सौभाग्यवान् होता है । यह ब्रह्मचर्याश्रम की शिक्षा संक्षेप से लिखी गई है इस के आगे चौथे समुल्लास में समावर्त्तन और गृह्यश्रम की शिक्षा लिखी जायगी ॥

इति श्रीमद्भयानन्दसरस्वतीस्वामिकृते सत्यार्थप्रकाशे सुभाषाविभूषिते

शिक्षाविषये तृतीयः समुल्लासः सम्पूर्णः ॥ ३ ॥

तिमिरभास्कर—

क्योंजी मस्तकपर तिलक लगाने में कौनसी हानि है इस के लगाने में कौनसा पाप है तिलक बहुधा चन्दन का लगाते हैं जिस से चित्त प्रसन्न हो शीतलता आरोग्यता होती है, परन्तु तिलक लगाने में भेद इस कारण होगये कि जैसे आपने नमस्ते की परिपाटी अपनी समाज में चलाई है कि जहां नमस्ते किया कि दयानन्दी मालूम होगये परमात्मा जयति कहतेही इन्द्रमाणिक्य के पंथी विदित होने लगे, इसीप्रकार ऊर्ध्वपुण्ड्र त्रिपुण्ड्र आदि तिलकों

से यह बात स्पष्ट होजाती है कि यह अमुक पुरुष के शिष्य हैं जैसे शेर के चिह्न से गवर्नमेंट की वस्तु सेना आदि विदित होती हैं वैसे ही यह चिह्न हैं और देवता के पूजन उपरान्त स्वयं भी तिलक धारण करै जिस देवता के अर्चन पूजन तिलक का जो विधान है वैसाही आप तिलक धारण करै जिस से बिना पूछे उसका उपासना वृत्तान्त विदित होजाय वाल्मीकिरा० अयो० का० सर्ग १६।
६ रामचन्द्र का तिलक लगांना लिखा है ॥

वराहरुधिराभेण शुचिना च सुगंधिना ।

अनुलिप्तं परार्ध्येन चन्दनेन परंतपम् ॥

अर्थ—महाराज रामचन्द्र सुगंधियुक्त लाल चन्दन लगाये थे चन्दन के गुण राजनिघंटु में इसप्रकार हैं ॥

श्रीखंडं कृदुतिक्तशीतलगुणं स्वादेकषाद्यं किय-

त्पित्तभ्रांतिवमिज्वरक्रिमितृषासंतापशान्तिप्रदम् ।

वृष्यं वक्ररुजापहं प्रतनुते कीर्तिं तनोर्देहिनां

लिप्तं सुप्तमनोजसिंधुरमदारंभातिसंरंभदम् ॥ १ ॥

वेदचन्दनमतीव शीतलं दाहपित्तशमनं ज्वरापहम् ।

छर्दिमोहतृषिकुष्ठतैमिरोत्कासरक्तशमनं च तिक्तकम् ॥ २ ॥

चन्दनके गुण यह हैं कटु तिक्त शीतल स्वादिष्ट कसैला है और पित्त भ्रांति वमन ज्वर गरमी कृमि तृषा संताप इनकी शान्ति करनेवाला वृष्य मुखरोगहारक देह में लगाने से कान्ति का देनेवाला और सुगंधि करनेहारा है तथा रुचिकारक है १ मलयागिरि के निकट के पर्वतों पर जो चन्दन होता है उसे वेद कहते हैं वोह चन्दन अत्यन्त शीतल है दाह पित्त ज्वर का शान्तिकारक व मनो-मोहन तृषा कुष्ठ तिमिर कास रक्तदोष का शमन करनेहारा और तिक्त भी है आप तिलक लगाना निषेध करते हैं देखिये इस विषय में मनुजी लिखते हैं ॥

मंगलाचारयुक्तः स्यात्प्रयतात्मा जितेन्द्रियः ।

जपेच्चजुहुयाच्चैवनित्यमग्निमतन्द्रितः ॥ १४५ ॥

मंगलाचारयुक्तानां नित्यञ्च प्रयतात्मनाम् ।

जपतां जुह्वतां चैव विनिपातो न विद्यते ॥ १४६ ॥

चंदन रोली आदि का लगाना मंगल है गुरु सेवा आचार है इन दोनों से युक्त हो तथा बाहरी भीतरी शौच से युक्त जितेंद्रिय रहै गायत्री आदि का जप और होम को नित्य आलस्य रहित होकर करै ॥ १४५ ॥ चंदन आदि लगाने गुरुसेवा करने जितेंद्रिय रहने गायत्री जप और हवन करने से दैवी मानुषी उपद्रव नहीं होते हैं ॥ १४६ ॥ मनु० अ० ४ त्र्यायुषं जमदग्ने० इसयजु० अ० ३ मं० ६२ से यज्ञकी विभूति लगाते हैं ।

यदि स्वामीजी चंदन लगाते होते तो बुद्धि को आंति न होती न मगज को इतनी गरमी चढ़ती पर आपके चेले वार्षिकोत्सव में खूब चंदन लगाते हैं यह बड़ी विपरीत करते हैं परन्तु एक दिन लगाने से बुद्धि शुद्ध नहीं होती होय कहां से उस एक दिन में भी उस में बहुतेरी केशर डाल देते हैं जिस से बुद्धिज्यों की त्यों रहती है और जब गणेश शिव देवी आदि नाम आप ईश्वर के लिख चुके हैं तो क्या इन नामों से पाप दूर न होंगे ईश्वर का नामही पाप दूर न करेगा तो क्या आपके कल्पित ग्रन्थ दूर करेंगे इस की विशेष महिमा नाम तीर्थ और व्रत तथा देव प्रकरण में लिखेंगे जिसप्रकार से नामादि जपने से मनुष्यों के पाप दूर होते हैं ।

भास्करप्रकाश—

“नमस्ते” चिन्ह ही किन्तु शिष्याचार है। और चिन्ह होना और बात है तथा पापनिवृत्ति का उपाय समझना और बात है । स्वामीजी पापनाशक विश्वास का खण्डन करते हैं । और भिन्न २ वेदविरोधी सम्प्रदायों के चिन्ह धारण करना भी अच्छा नहीं । आप को चन्दन के गुण बताते हैं सो तो केवल लेपन और कथादि

में पान करने को हैं जिससे कोई नकार नहीं करता। स्वामीजी चन्दन केशर आदि लगाते थे और आर्य लोग भी लगाते हैं, उन की बुद्धि शुद्ध है। आप के ऊर्ध्व-पुण्ड्रादि में चिताभस्म के तिलक का विधान होने से मुर्दे के राख का बुरा प्रभाव आप के शैव अनुयायियों पर पड़ा है इसी से वैदिकधर्म के विरोधी बने हैं ॥



मीक्षा—स्वामी दयानन्दजी ने वालकों के लिये दुर्व्यसनों का निषेध किया है बहुत अच्छा लिखा है वास्तव में माता पिता को दुर्व्यसनों से बच्चों को बचाना चाहिये तथापि एक किन्तु तो हम यहां पर भी लगावेंगे वह यह है कि समाज वेद को छोड़ कर और किसी पुस्तक को प्रमाण नहीं मानती अब हम यह पूछना चाहते हैं कि यह कौन वेद मन्त्र का अर्थ है ? कल को कोई मनुष्य यह लिख देगा कि अपना घर और अपनी दृष्टि साफ रखो काम बहुत अच्छा है किन्तु यह किसी मज़हब से ताल्लुक नहीं रखता इसी प्रकार स्वामी दयानन्दजी ने यहां पर लिखा है जिस का कि वेद में कहीं भी जिक्र नहीं। अब पूछना यह है कि समाज स्वामी दयानन्द के लेख को मानती है या वेद को ? वेद २ चिल्लाते जाना और जो जी में आवे वह लिखते जाना छल नहीं तो और क्या है ?

इस के आगे स्वामी दयानन्दजी ने स्त्री का विवाह १६ वर्ष की अवस्था में लिखा है यह ठीक ही लिखा क्योंकि अमेरिका आदि देशों में इसी अवस्था में स्त्रियों के विवाह होते हैं। अमेरिका जो २ काम करता है वही आर्यसमाज का धार्मिक सिद्धान्त है और उसी को वेद ने लिखा है आश्चर्य की बात है कि हिन्दुओं के वेदों में अमेरिका का समस्त आचरण लिखा किन्तु हिन्दुओं का एक भी आचरण या धर्म रीति या रश्म वेद में नहीं मिलते वास्तव में वेद में जो बातें हैं उनको छिपा कर और गला घोट कर उस के अर्थ बदल कर जबरदस्ती अमेरिका के आचरणों का कानून बनाया जा रहा है क्या कोई आर्यसमाजी वेद धर्म स्त्रि पुराण, इतिहास में यह दिखला सकता है कि १६ वर्ष की कन्या का विवाह अमुक ग्रन्थ में लिखा है और यों कहने के लिये और लिखने के लिये तो ८० वर्ष की स्त्री का विवाह कह सकते हैं और लिख सकते हैं।

इसके आगे स्वामी दयानन्दजी लिखते हैं कि अन्य पाषाणादि जड़ मूर्तियों के दर्शन पूजन में काल न खोना बहुत ही अच्छा बतलाया। मनुष्य को क्या करना चाहिये ईश्वर की मूर्ति के न दर्शन करने चाहिये और न पूजन करना चाहिये और न उसमें मन लगाना चाहिये मन लगाने के लिये तो स्वामी दयानन्दजी ने पीठ (कमर) का हाड़ बतला दिया है जब मन लगाना हो फौरन कमर के हाड़ में लगा ले और यदि पूजन करना हो तो स्वामी दयानन्द ने संस्कार विधि के चौल (चूड़ा) प्रकरण में लिख दिया है कि पूजन नाई के छूरे का करना उससे वर मांगना और उसको नमस्ते करना भला इस इतने ऊँच विचार का क्या ठिकाना ? क्या सच ही आज तक किसी भी आर्यसमाजी ने इसका विचार किया कि नाई का छुरा तो पूजे और देव मूर्तियों को धता बुलावे यही तो आर्यसमाजियों की तरक्की है।

**देव मूर्ति कभी न पूजें, पूजें छुरा जो नाइयों का।
यही हाल संस्कारविधि में, आर्यसमाजी भाइयों का ॥**

छुरा पूजना अच्छा या ईश्वरकी मूर्ति ? इसका विचार पाठकोंके ऊपर छोड़ता हूँ।

जब कि वेद में बड़े जोर के साथ मूर्तिपूजन लिखा है तब फिर ईश्वर की आज्ञा को छोड़कर एक मामूली मनुष्य के लेख में बंधकर क्या कोई विचारशील मनुष्य मूर्तिपूजन को छोड़ सकता है यहां पर हम अधिक तो प्रमाण नहीं देंगे अधिक प्रमाण तो आगे दिये जावेंगे किन्तु यज्ञ में होनेवाली हिरण्यमयी प्रजापति की मूर्ति का कुछ थोड़ासा लेख लिखते हैं। कात्यायन श्रौतसूत्र में लिखा है कि प्रजापति की मूर्ति सुवर्ण की बनाई जाती है—

(१) तस्मिन् रुक्म मधः पिण्ड ब्रह्मजज्ञानमिति ।

कात्या० श्रौत० सू० १७।४।२।

अर्थ—स्वफलक पत्र पर सुवर्ण के विन्दु (पिण्ड) बनाता जावे और “ब्रह्म यज्ञानम्” इस मन्त्र को बोलता जावे इसी को शतपथ कहता है।

(२) अथ रुक्म मुपदधाति ।

शतपथ० ७।४।१।१०

यह सुवर्ण पुरुष स्थापन शतपथ में अच्छी तरह से लिखा है देखिये—

(३) अथ पुरुष मुपदधाति स प्रजापतिः सोग्निः स यजमानः स हिरण्यमयो भवति ज्योतिर्वै हिरण्यं ज्योतिरग्निस्मृतं हिरण्यममृत मग्निः पुरुषोभवति पुरुषोहि प्रजापतिः ।

श० ७।४।१।१५

अर्थ—स्थूल प्रपञ्चाभिमानी विराट् पुरुष ही अग्निरूप है और सूक्ष्म पञ्चाभिमानी हिरण्यगर्भ हैं । वह हिरण्यगर्भ रूप ही वर्तमान है और अग्नि का प्रतिकृति रूप हिरण्य पुरुष है । इस कारण वह पुरुषाकृति के योग्य है । उभय प्रतीक में एक ध्येय का प्रतिकृति कहते हैं इस को शतपथ स्वयं कह रहा है जो ज्योति हिरण्य है वही ज्योति अग्नि है वही अमृत है वही अग्नि पुरुष और वह पुरुषही प्रजापति है ।

(४) उत्तान प्राञ्चां हिरण्य पुरुषं तस्मिन् हिरण्य गर्भ इति ।

कात्यायन कल्प सूत्र० १७।४।३

अर्थ—रुक्मके ऊपर हिरण्य पुरुष स्थापन करें अर्थात् पूर्वभिमुख उत्तिष्ठमान हिरण्य पुरुषको “हिरण्यगर्भः” इसमन्त्र से सुवर्ण फलक के ऊपर स्थापन करें ।

(५) हिरण्यं कास्माध्रियते आयम्य मान मिति वाहियते जनाज्जनमिति वाहित रमणं भवतीतिवाहृदय रमणं भवतीति ॥

निरुक्त० २।१०

अर्थ—जिस सुवर्ण का यह पुरुष बनता है उस की प्रशंसा निरुक्त करता है कि शिल्पियों से विस्तारित होने से हिरण्य कहलाता है । दुर्भिक्षादि में हित है तथा सर्वदा सब को रमण कराने से सोने को हिरण्य कहते हैं । इस के आगे—

नमो ऽस्तु सर्वेभ्योयेके च पृथिवी मनु ।

ये अन्तरिक्षे दिवितेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ॥

यजु० १३।६

इस मन्त्र से उस पुरुष की प्राण प्रतिष्ठा होती है । प्राण प्रतिष्ठा से मूर्ति में शक्ति उत्पन्न होती है । इसको शतपथ कहता है ।

अथ साम गायति एतद्वैदेवा एतं पुरुष सुपधाय समेता दश
मेवा पश्य न्यथैतच्छुष्कं फलकम् ॥ २२ ॥ ते अब्रुवन् उपत
ज्जानीत यथा स्मिन् पुरुषे वीर्यं दधा मेतिते अब्रुवंश्वतय
ध्वमिति चितिमिच्छतेति वाच तद् ब्रुवंस्तदिच्छत यथास्मिन्पुरुषे
वीर्यं दधामिति ॥ २३ ॥ तेचतय मानाः एतत्सामा पश्यं स्तद्
गायं स्तदस्मिन्वीर्यं मध धुस्तथै वास्मिन्नयमेतद्दधाति पुरुषे
गायति पुरुषे तद्वीर्यं दधाति चित्रे गायति सर्वाणिहि चित्रा
प्यग्निस्तमुपधीयन् पुरस्तात्परोयान्ने नमायमग्निर्हि न सदिति
॥ २४ ॥ अथ सर्प नामै रुपतिष्ठते इमे वै लोकाः सर्पाः ॥

शत० ७।४।१-२२-४४

अर्थ—पूर्वकाल में जब देवताओं ने हिरण्यमय पुरुष को सुवर्ण फलक के ऊपर किया तब यह परामर्श किया कि वह सुवर्ण पुरुष चेतना से रहित शुष्क फलक के समान है तब फिर सब बोले कि इस हिरण्य पुरुष में शक्ति प्रादुर्भाव के निमित्त परामर्श करो। सब देवताओं ने इस बात का अनुमोदन किया कि इसमें वीर्य स्थापन करें वह देवता मीमांसा करते हुए तब (नमोऽस्तु सर्पेभ्यो० या इषवो यातु० ये वामी रोचते०) इन तीन मन्त्र रूप साम की उपलब्धि को प्राप्त हुए और इस मन्त्र रूप साम हो गाया तब उस हिरण्यमय पुरुष में वीर्य अर्थात् फलप्रादयक शक्ति को स्थापन किया। इसी प्रकार यह यजमान भी इसी साम के बल से इस पुरुष में सामर्थ्य का विधान करता है। तात्पर्य यह ऊपर के तीन मन्त्र पढ़ने से पुरुष में सामर्थ्य का विधान करता है। तात्पर्य यह ऊपर के तीन मन्त्र पढ़ने से पुरुष में सामर्थ्य प्रकट होती है। “चित्रं देवानां०” यह मन्त्र यजु० ७।४२ का है। वहां जो धर्मरूपता में सूर्य और अग्नि की एकता प्रतिपादन की है वह चित्ररूप से और हिरण्य गर्भ चित्र रूप होता ही है। इस से वही हिरण्य पुरुष का शरीर है इससे हिरण्य पुरुष का विधान करके यजमान उसके आगे गमन न करें ऐसा करने से अनिष्ट होता है। सर्प नाम तीन मन्त्रों से यजमान हिरण्य पुरुष का उपतिष्ठ मान करें।

आवाहन ।

(१) आह्वानञ्च निविदाम् ।

आश्व० श्रौ० सू० १५ अ० ५ कं० ६

(२) तान्पूर्वया निविदा हूमहे वयं भगं ।

मित्रमदितिं दक्ष मस्त्रिधम् ॥

अर्यं मणं वरुणं सोम मश्विना ॥

सरस्वतीनः सुभगामयस्करत् ॥

ऋ० वेद भा० १ अ० ६ व १५ मं० ३

अर्थ—हम पूर्वकालीन नित्य वाणी से भग, मित्र, अदिति, दक्ष, अर्यमा, वरुण, सोम, अश्विनीकुमार, सरस्वतीको आवाहन करते हैं । ये हमको सुखकारक हों ।

पाठक बृन्द ! वेद इत्यादि में अनेक मन्त्र आवाहन के हैं जिनसे मूर्ति में देवशक्ति आती है । यह मन्त्र वेद का है जिन को देखे बिना वेद में मूर्ति पूजन नहीं है कि डुगी पीटी जा रही है ।

पूजन का मन्त्र ।

अर्चन्त प्रार्चन्त प्रियमेधासो अर्चत ।

अर्चन्तु पुत्रका उत्पुंरं न धृष्णवर्चत ॥

ऋ० अष्ट० ६ अ० ५ सू० ५८ मं० ८

अर्थ—हे अध्वर्यु आदि जनों तुम परमात्मा (इन्द्र) का पूजन करो स्तुति विशेष से पूजन करो । प्रियमेधस सम्बन्धी तुम पूजन करो । हे पुत्रो ! तुम इन्द्र का पूजन करो जैसे घर्षण पुरुष को पूजते हो वैसे ही पूजन करो ।

देखिये पूजा भी खास वेद में ही मौजूद है ।

भोग ।

अथैन मुप विश्यामि जुहोति आज्येन पञ्चगृहीतेन तस्थोक्तो
बन्धुः सर्वतः परिसर्वं सर्वाभ्य एवैन मेतद्दिग्भ्योऽन्नेन प्रीणाति०

शत० ७ । ४ । १ । ३२

इसी का कात्यायन श्रौ० सू० अ० १७ कं० ४ सू० ७

उपविश्य पंच गृहीतं जुहोति पुरुषे कृणुष्वपाज इति प्रत्यूचं
प्रतिदिश मपरि सर्पम् ।

अर्थ—कृणुष्व पाज इत्यादि पांच मन्त्रों से पञ्चधा गृहीत घृत से होम करे ।
चार मन्त्रों से ४ दिशाओं में पञ्चम मन्त्र से अग्नि में आहुति दे जिस दिशा में
अग्नि में आहुति दे स्वयं भी उसी दिशा में चले इन मन्त्रों से हिरण्य पुरुष को
नैवेद्य लगाया जाता है कारण यह है कि पूर्व में “हिरण्यगर्भ” इस में “कस्मै देवाय
हविषा विधेम” ऐसा कहा है कि हम प्रजापति की आहुति से उपासना करते हैं ।

पाठक बृन्द ! हिरण्य पुरुष की प्रतिमा का निर्माण पूजन आप देख चुके ।
अब इसका निर्णय आपके ऊपर छोड़ता हूँ कि वेद में मूर्तिपूजन है या नहीं । इतना
और बतलाये देता हूँ कि इन सब विषयों को पं० ज्वालाप्रसादजी ने तिमिरभास्कर
में लिखा था तथापि भास्करप्रकाश निर्माता पं० तुलसीराम ने इस के उत्तर में एक
अक्षर भी न लिखा ऐसी सफाई से विषय को हजम किया कि मानो यह लेख
तिमिरभास्कर में है ही नहीं ।

जब कि वेद मूर्ति पूजा के लिये इतनी विधि दे रहा है तब फिर इतने वेद
पर कलम फेर कर मूर्ति पूजा कैसे छोड़ी जा सकती है ? क्या पं० तुलसीरामजी
स्वामी दयानन्दजी के लेख को सत्य और वेद को असत्य मानते हैं यदि ऐसा नहीं
तो फिर मूर्ति पूजा क्यों छोड़ दी जावे इसका प्रयोजन हमारी समझ में नहीं आया
सम्भव है कि प्रतिनिधि समझाने की कुछ कोशिश करे ।

इसके आगे तिलकों के विषय में कुछ लिखा है इसका उत्तर पश्चात् दिया
जावेगा । प्रथम व्रत के खण्डन का उत्तर सुनिये—स्वामी दयानन्दजी एकादशी से
आदि लेकर समस्त व्रतों का खण्डन करते हैं इन व्रतों को बुरा बतलाते हैं एकाद-
श्यादि व्रत मामूली पुरुषों के लिखे नहीं किन्तु आप्त लोगों के लिखे हैं स्वामी दया-
नन्द के खण्डन से कोई विचारशील उनको छोड़ नहीं सकता व्रत का रखना फिला
स्फी आदि से सिद्ध है । एकादशी व्रत में दश इन्द्रिय और एक मन इन ग्यारह को
अपने २ विषय से हटा कर जगत के प्रभु भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र की सेवा में लगा
कर ग्यारह ही को अपने वश किया जाता है इसी का नाम योग है । स्वामीजीने

इस विज्ञान के ऊपर जरा भी दृष्टि नहीं डाली किन्तु यही ध्यान रक्खा कि हम सब से उल्टे चलेंगे और सब को गालियां देंगे जो दूसरों के लिये कुवा खोदता है वह आप ही गिरा करता है इसी कहावत के अनुसार जो स्वामी दयानन्दजी यहां पर व्रत को बुरा बतलाते हैं वे ही अपनी बनाई संस्कारविधि उपनयन प्रकरण में ब्रह्मचारियों से व्रत रखवाते हैं। नीचे पढ़िये—

“पयोव्रतो ब्रह्मणो यवागूव्रतो राजन्य आमिक्षाव्रतो वैश्यः” यह शतपथ ब्राह्मण का बचन है। जिस दिन बालक का यज्ञोपवीत करना हो उससे तीन दिन अथवा एक दिन पूर्व तीन वा एक व्रत बालक का करना चाहिये। उन व्रतों में ब्राह्मण का लड़का एक बार वा अनेक बार दुग्ध पान क्षत्रिय का लड़का (यवागू) अर्थात् यव को मोटा दल के गुड़ के साथ पतली जैसी कि कढ़ी होती है वैसे बना कर पिलावे और (आमिक्षा) अर्थात् जिसको श्रीखण्ड वा सिखण्ड कहते हैं वैसी जो दही चौगुना दूध एक गुना तथा योग्य खांड केशर डाल के कपड़े में छान कर बनाया जाता है उसको वैश्य का लड़का पी के व्रत कर अर्थात् जब २ लड़कों को सूख लगे तब २ तीनों वर्णों के लड़के इन तीनों पदार्थों ही का सेवन करें अन्य पदार्थ कुछ न खावें पीयें। अब इन समाजियों से पूछिये कि व्रत रखना अच्छा है या बुरा जिस काम को स्वामी दयानन्द बुरा बतलाते हैं उसी को आप भी करवाते हैं इसका सारा अभिप्राय यह है कि हमारे गोल में आवा।

इसके आगे स्वामी दयानन्दजी तीर्थों का भी खण्डन करते हैं तीर्थ में जाने वाले मनुष्यों को बुरा समझते हैं यदि वास्तव में तीर्थ जाना बुरा है तो स्वामी दयानन्दजी ने बहुत ही बुरा किया जो १२ वर्ष तक नग्न हो कर गंगातट पर विचरा किये। यदि तीर्थ जाने वाले मूर्ख हैं तो फिर स्वामी दयानन्दजी कौन ? इसका विचार आर्यसमाज को करना चाहिये मनुष्य गृहस्थ में रह कर भगवत आराधना और सत्संगादि कुछ भी नहीं कर सकता। जिस समय मनुष्य तीर्थ को तैयार होता है तब अपने घर का वह काम जो हफ्ता भर में होता एक ही दिन में कर लेता है और जो कुछ रह जाता है अपने मन में विचार करता है कि इसको आकर करूंगा घरसे रवाना होते ही भगवती जान्हवी और शंकर में मन लगाता हुआ जय गंगाजी की, जय गंगाजीकी पुकारता हुआ तीर्थ को चला जाता है। वहां जाकर स्नान ध्यान दान करता है और महात्माओं का सत्संग करता हुआ उपदेश सुनता हुआ संसार

के प्रभु ईश्वर की तरफ मन को ले जाना है । स्वामी दयानन्दजी इससे मोक्ष होना नहीं मानते उनकी सम्मति में आर्यसमाज का प्लेट फारम लगा कर सब धर्मों के खण्डन किये बिना बड़े २ आचार्य ऋषि मुनि महात्माओं को गाली सुनाये बिना कभी मोक्ष हो ही नहीं सकती । आर्यसमाज को यह अच्छी प्रकार जान लेना चाहिये कि स्वामी दयानन्दजी वेद का बहाना लेकर आर्यसमाज के द्वारा वेद का ही खण्डन करवाते हैं जिस तीर्थ महत्व को वेद प्रतिपादन कर रहा है उस तीर्थ सेवा को स्वामी दयानन्द के कहने पर कोई धार्मिक मनुष्य कैसे छोड़ सकता है ? स्वामीजी जिस तीर्थ महत्व को बुरा बतलाते हैं वेद उसकी महिमा गाता है । देखिये—

इममेगंगेयमुने सरस्वतिशुतुद्रिस्तो मंसचतापरुणया ।
असिकन्यामरुद्बृधे वितस्तयार्जी कीये श्रणुह्यासुषोमया ॥

ऋ० म० १० अ० ३ सू० ७५ मं० ५

अर्थ—हे गंगे यमुने सरस्वति शुतुद्रि तुम संपूर्ण मेरे यज्ञ को सन्मुख होकर सेवन करो हे अरुद् बृधे आर्जीकीये परुणी असिकनी वितस्ता सुषोमा के साथ मेरे यज्ञ को सेवन करो मेरी स्तुतियों को सब प्रकार से सुनो । ५ निरु० उत्त० अ० ३ । २६ में ऊपर लिखे अनुसार व्याख्यान है ।

जब वेद तीर्थों की महिमा इस प्रकार गा रहा है तब फिर तीर्थों को न मानना वेद की जड़ काट कर गिराना है । इसके आगे स्वामी दयानन्दजी रामकृष्ण नारायण गणेशादि के नाम स्मरण से पाप दूर होने का विश्वास झूठ बतलाते हैं आपने सत्यार्थप्रकाश के प्रथम समुल्लास में यह नाम ईश्वर के बतलाये और अब कहते हैं कि इन नामों का लेना ही व्यर्थ है यदि सचमुच व्यर्थ है तो आप ने आर्या-भिविनय में ईश्वर के नाम लेकर बड़ी २ प्रार्थना की हैं वे सब व्यर्थ ही होंगी । इसके आगे श्रीमद्भागवतादि पुराणों का फिर भी खण्डन करते हैं । एकही बात को कई बार लिखना क्या यह पुनरुक्तदोष नहीं है न्याय दर्शन में महर्षि गौतम ने “तद प्रमाण्य मन्वित व्याघात पुनरुक्त दोषेभ्यः” सूत्र में यह दिखलाया है कि झूठ व्याघात पुनरुक्त इन तीनों दोषों में से यदि कोई दोष वेद में भी आजाय तो वेद को भी मत मानो । नहीं मालूम सत्यार्थप्रकाश के बारे में समाजी लोग क्या इस सूत्र को भूल गये यदि वास्तव में पुराण मिथ्या ही हैं तब तो आर्यसमाजियों को एकादश समु-

ल्लास में लिखी राजवंशावली निकाल डालना चाहिये । यदि कोई आर्यसमाजी यह कहे कि वह तो दूसरे ग्रन्थ से बनी है तो इस का उत्तर यह है कि वह दूसरा ग्रन्थ पुराणों से ही बनाया गया है पुराणों ही का खण्डन करें और पुराणों ही के लेख सत्यार्थप्रकाश में भरें इस बुद्धिमान्नी का कौन ठिकाना ।

इसके आगे स्वामी दयानन्दजी लिखते हैं कि आजकल के संप्रदायी और स्वार्थी ब्राह्मण आदि जो दूसरों को विद्या मन्त्रज्ञ से हटा और अपने जाल में फंसा के उनका तन मन धन नष्ट कर देते हैं और चाहते हैं कि जो क्षत्रियादि वर्ण पढ़ कर विद्वान् हो जायेंगे तो हमारे पाखण्ड जाल से छूट और हमारे छल को जान कर हमारा अपमान करेंगे । स्वामी दयानन्दजी गाली देना खूब जानते थे नहीं मालूम यह सब दिन गाली ही दिया करते थे क्या । गालियों का उत्तर गाली देना यह भी अच्छा नहीं इस वास्ते गालियों के ऊपर तो हम कुछ नहीं लिखेंगे लेकिन गालियों के सेठ स्वामी दयानन्दजी से यह अवश्य पूछेंगे कि किस सम्प्रदायने या किस पंडित ने क्षत्रिय वैश्य को वेद या विद्या पढ़ने से रोका है क्या कोई आर्य-समाजी इस विषय में कोई प्रमाण दे सकता है । हमारी समझ में कोई लेखनी उठाने का साहस भी नहीं कर सकता । और स्वामी दयानन्द ने जो ब्राह्मणों के जिम्मे ये मिथ्या कलंक लगाया है इस का प्रयोजन यह है कि क्षत्रिय वैश्य अपने मन में यह समझ लें कि ब्राह्मणों ने हमारे साथ में बहुत बुराई की है यह समझ कर ब्राह्मणों को घृणा की दृष्टि से देखें जिस से देश में ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यों में फूट होजावे और देशकी तरक्की हो । आर्यसमाज तो डींग मारा करती है कि स्वामीजी देश का हित चाहते थे परस्पर में प्रेम चाहते थे परन्तु इस लेख से परस्पर प्रेम की सारी कलाई खुल जाती है और यह सिद्ध हो जाता है कि स्वामीजी की लेखनी और आर्यसमाज का जन्म देश में फूट डालने के ही लिये हुआ है ।

जो कलंक स्वामी दयानन्दजी ने इस लेख में ब्राह्मणों के ऊपर लगाया है वही कलंक आर्यमित्र ता० २४-२-१४ में बा० घासीराम ने ब्राह्मणों के ऊपर लगाया इसके खण्डन में पं० लुट्टनलाल स्वामी ने जो उत्तर दिया उसको अक्षरसः हम नीचे लिखते हैं देखिये वेदप्रकाश वर्ष १८ मास ३ पृ० ८१ ।

हमको आश्चर्य है ।

आर्यमित्र २४-२-१४ का पढ़ कर हमको आश्चर्य हुआ कि श्री बा० घासी-रामजी एम० ए० जैसे मतिमान् पुरुष भी पुरोहितों और ब्राह्मण जातिमात्र से हृदय

में शत्रुभाव रखते हैं। हम अब तक इसी विचार में थे कि आर्यजाति में नामधारी मात्र लोग ही ऐसे संकुचित विचार रखते होंगे जैसे कि बाबू घासीरामजी की लेखनी से निकले हैं। जब कि श्रीमती आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान पदप्राप्त अंग्रेजी के विद्वान् कानून के निधन महान् पुरुषों के ऐसे घोथे और परस्पर ईर्ष्या उत्पन्न करनेवाले लेख उनकी लेखनी से निकलें तब पेरे गैरों की तौ कथा ही क्या है। पुरोहितों का हित इतिहासों में देखिये। जहां राणा प्रताप जैसे की जान बचाने को पुरोहितों ने अपनी जान खो दी। ब्राह्मणों ने वेदों को कण्ठ कर के निर्धन रहना स्वीकार किया। हम नहीं जानते कि बाबू साहब जैसे इतिहासवेत्ता और संस्कृत में भी कुछेक प्रवेश रखनेवाले किम प्रमाण से कहते हैं कि ब्राह्मणों ने वेद को अपनी मौखिकी समझ रक्खा है।

बाबूजी ! ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य द्विज मात्र को वेदाधिकार दिया गया है। यदि वेदादि का किसी को न देने का अधिकार किसी जाति को होता तौ हमारी समझ में तौ यह आज्ञा देते कि धन रखने का अधिकार केवल ब्राह्मणों को ही है। बाबूजी क्या वेद क्या सत्य सब आलस्यप्रमाद से अन्यो के पूर्वजों ने छोड़ा था छोड़ रहे हैं। हमें बताओ जब स्वामी दयानन्द ने भी अधिकार दिया तौ भी आपने एम० ए० अंग्रेजी में न कर के शास्त्री परीक्षा क्यों नहीं दी या अपने पुत्रों को गुरुकुल में क्यों नहीं पढ़ाते।

हम सच कहते हैं कि आप लोग ऐसे घोथे द्वेष भरे विचार लिख कर आर्य समाज में आग बर्षाने का काम न कीजिये। शान्ति सिखाइये। स्वामी दयानन्द से पहिले बा० तोताराम आदि जैसे बुद्धिमान वैश्य थे। किसी को संस्कृत पढ़ाने से या वेद पढ़ाने से नहीं रोका गया। परन्तु यास्काचार्य उपदेश करते हैं कि—

विद्याहवै ब्राह्मणमाजगाम गोपाय मा शैवधिष्टे हमस्मि ।

असूयकायानृजवैज्यताय नमा ब्रूया वीर्यवतीतथास्याम् ॥

इत्यादि में बताया है कि निन्दक कुटिल दुर्व्यसनी पुरुषों को मुझे मत दो। इसलिये निन्दकों को किसी ने न पढ़ाया तौ इस में किसी जाति मात्र से वेद को नहीं छिपाया गया।

दूसरी बात यह है कि पूर्वकाल में तौ सभी वर्ण वेद वेदाङ्ग पढ़ते थे फिर जब ब्राह्मणों ने न पढ़ाया तौ अपने पिताओं से ही क्यों न पढ़ लिया ।

बाबू साहब को कोई प्रमाण प्रस्तुत करना चाहिये कि वेद पढ़ने से ब्राह्मणों ने आपके पूर्वजों को कैसे रोका नाहक किसी से बैर भाव रखना आर्यता नहीं है ।

ब्राह्मण भी ग्रहण समय दान लेना बुरा समझते हैं तब हम नहीं जानते कि बाबूजी के प्रोफेसर को किस पामर ने ग्रहण होते हुवे यह कह दिया कि पुण्य करो राहु ने चन्द्रमा को पकड़ रक्खा है । कहीं स्वप्न देखा होगा । ग्रहण के समय पुण्य करो धर्म करो ऐसा भङ्गी कहते हैं । ब्राह्मणों को गाली देना बृथा है । छोटी आयु में बेटों का विवाह करना बुरा है पर कोई आंखों के रोग से बहूजी के कहने से प्रोफेसर होकर भी १० । १२ वर्ष की अवस्था में विवाह कर दे तौ इस में ब्राह्मणों का क्या दोष है । स्वामी दयानन्द ने गुण कर्म स्वभावानुसार वर्ण व्यवस्था बताई है इस को प्रत्येक बुद्धिमान् जान सकता है । परन्तु हमारे स्वतन्त्रता प्राप्त बाबू साहब को पहले अपना ही वर्ण का वर्णन बता देना चाहिये और जिस वर्ण में आप हों उसी में नाते रिश्ते विवाह काज करने चाहिये । जहाँ तौ प्रोफेसर के ग्रहण के समान ही प्लीडर साहब भी अन्ध विश्वासी ही समझे जावेंगे । क्या आप भी पुरोहितों के पंजे में पड़े हैं स्वामीजी की खोली हुई बेड़ी फिर क्यों पहिनाते हैं । हमारे कई एक मित्र और आर्य अपने कुलक्रमानुसार वेदों का अक्षर बिना पढ़े ही त्रिवेदी चतुर्वेदी लिखते हैं । यथा बनारसीप्रसाद चतुर्वेदी । गुप्त, वर्मा, शर्मा, सब कुछ कुलाम्नायानुसार करते हैं । और दूर क्यों यदि गुण कर्मों को देखें तौ कई आर्य भी नहीं कहा सकते आर्य भी केवल वंश अवतंस होने से ही हैं । “ऋषिसन्तान” होने का ही हम को गर्व है बस ब्राह्मण वंश में पैदा होने से शर्मा नहीं तौ वैश्य वंश में होने से गुप्त ही क्यों क्षत्रिय कुल के क्षत्रिय कौन से कर्मों से हैं । आर्यकुल के आर्य ही क्यों । बस बिना वेद विज्ञान जाने कोई द्विज नहीं रह सकता । अब जो मौजूदा वैश्य क्षत्रिय केवल वंशके घमण्डी यज्ञोपवीत पहनते हैं सब को जनेऊ निकाल डालने चाहिये क्या ।

उत्तर देनेवालों को नम्बरवार निम्नस्थ प्रश्नों का उत्तर देना चाहिये—

- (१) किस आर्षग्रन्थ में क्षत्रिय वैश्यों को घेद पाठ का निषेध किया गया वह किस ब्राह्मण ने बनाया ?

- (२) किस अनार्ष स्मृति में भी क्षत्रिय वैश्यों को वेद पाठ का निषेध किस ब्राह्मण ने किया ?
- (३) किसी पुराण में भी किस ब्राह्मण ने क्षत्रिय वैश्यों को वेद पाठ का अनधिकारी लिखा ?
- (४) वेद छोड़कर अन्य संस्कृत व्याकरणादि पढ़ाने में किसी भी जाति को निषेध किस ब्राह्मण ने किया है ?

छुट्टनलाल स्वामी ।

जिस विषय पर आर्यसमाजी ही लेखनी चलाते हैं जिस का मिथ्या समझ पं० छुट्टनलाल ही खण्डन करते हैं उस के ऊपर कलम उठाना व्यर्थ समझता हूँ । स्वामी दयानन्दजी के लेख इतने अयोग्य हैं कि उन के लेखों का खण्डन करे बिना आर्य-समाजियों से भी नहीं रहा जाता बाज बाज आर्यसमाजी तो स्वामी दयानन्द के समस्त सिद्धान्तों को वेद विरुद्ध बतलाते हैं जैसे अर्जुन मासिकपत्र ऊर्दू के सम्पादक पं० राजनारायण शर्मा ।

इसके आगे स्वामी दयानन्दजी स्त्री को वेद पढ़ना लिखते हैं जिसका उत्तर पूर्व इसी समुल्लास में लिख दिया गया है वहां पर ही पाठक देख लें अब तिलक की कथा चलती है । स्वामी दयानन्दजी ने तिलक का खण्डन किया है इस के ऊपर पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्र लिखते हैं कि (१) तिलक लगाने में क्या हानि है इस में कौन पाप कूद पड़ा इस में तो लाभ है इस में पं० ज्वालाप्रसादजी ने "श्रीखण्ड" आदि एक श्लोक राज निघण्टू का भी दिया है जिस में चन्दन के गुण बतलाये हैं (२) चिन्ह भेद या चन्दन भेद विशेष ज्ञान के लिये होता है और इस को स्वामी दयानन्द ने भी रक्खा है । नमस्ते की फौरन जान लिया कि यह पुरुष दयानन्दी है जहां आत्माजयति कहा कि फौरन मालूम होगया कि यह पुरुष इन्द्रमणि के पंथ का है जहां पर शेर का चिन्ह आया कि फौरन पहिचान लिया कि यह वस्तु ब्रिटिश गवर्नमेंट की है । इसीप्रकार त्रिपुण्डादि से फौरन पहिचान लिया जाता है कि यह अमुक पुरुष का शिष्य है इससे लाभ है या हानि (३) देवता के पूजन के उपरान्त स्वयं तिलक धारण करने की विधि है जैसा तिलक देवता का हो वैसा ही तिलक धारण करना चाहिये (४) बाल्मीकीय रामायण में लिखा है कि प्रभु राघव कुल दिवाकर भगवान रामचन्द्रजी भी सुगन्धियुक्त लाल चन्दन लगाये थे इस में मिश्र

जी ने "बराहसधिमेण" एक श्लोक भी प्रमाण में दिया है (५) मनुसे यह भी दिखलाया कि चन्दन लगाना संगल है (६) यह भी बतलाया कि मनु अष्टाध्याय ४ में "व्यायुषं जमदग्ने" इस यजुर्वेद अ० ३ मन्त्र ६२ से यज्ञ की विभूति लगाना लिखते हैं (७) आर्यसमाजी चन्दन नहीं लगाते इस से उनके दिमाग में भ्रान्ति हो जाती है (८) जब चन्दन लगाना बुरा है या पाप है तो आज कल के समाजी उत्सवों पर क्यों लगाते हैं (९) दयानन्द चन्दन क्यों लगाते थे ?

इसके ऊपर पं० तुलसीरामजी लिखते हैं कि "नमस्ते चिन्ह नहीं किन्तु शिष्टाचार है" इस के ऊपर हम को एक बात याद आ गई—एक "जाट" गयाजी गया था जब वह लौटकर आया तब अपनी माता से बोला कि मां मैंने काशी के समस्त पण्डित जीत लिये माता बोली कि बेटा यह बात तो असम्भव है तू एक अक्षर नहीं पढ़ा और काशी में बड़े बड़े विद्वान् पण्डित हैं उनसे तू कैसे जीत सकता है मुझे मालूम पड़ता है तू झूठ बोलता है। माता की इस बात का सुनकर वह बोला कि इस का तो सहल उपाय है इस में लिखने पढ़ने की क्या आवश्यकता थी इस का तो उपाय मैंने यह किया था कि चाहे कोई कुछ भी कहे किसी की भी न सुने अपनी ही कहता जावे। ठीक यही हाल पं० तुलसीराम का है चाहे कोई कितना समझावे वेद दिखलावे किन्तु यह महात्मा किसी की बात नहीं मानते इन्हें तो दयानन्द की बात सच्ची करना है यदि कहीं पर दयानन्द लिख दें कि एक रोज एक ऊँट को बिल्ली ले गई तो फिर उस की पुष्टि के लिये पं० तुलसीरामजी यही लिखेंगे कि हमने अपनी आंख से बीस बार देखा है वास्तव में बिल्ली ऊँट को उठा ले जाती है। ये स्वामी दयानन्दजी की बात को पुष्ट करेंगे चाहे धर्म कर्म दोनों से ही हाथ धोने पड़ें किन्तु स्वामी दयानन्द की असम्भव बात की पुष्टि कर बिना न रहेंगे। यही हाल नमस्ते के ऊपर है स्वामी दयानन्दजी इसी नमस्ते के ऊपर हरिद्वार में मुन्शी इन्द्रमणि से शास्त्रार्थ में हार गये और मध्यस्थ पं० भीमसेनजी ने फैसला दे दिया कि स्वामीजी मुन्शीजी ठीक कहते हैं आप का कथन अयोग्य है (२) दूसरे फिर मुरादाबाद में स्वामी दयानन्द और मुन्शी इन्द्रमणि से इसी नमस्ते पर विवाद चला अन्तिम फल यह हुआ कि समस्त मनुष्यों के सन्मुख स्वामी दयानन्दजी ने अपने श्रीमुख से यह कह दिया कि मुन्शी वास्तव में परस्पर में नमस्ते कहना अयोग्य है स्वामी दयानन्दजी जब अपने मुह से अयोग्य बतला गये (३) किसी भी वैदिक ग्रन्थ में जब परस्पर में नमस्ते करने की आज्ञा नहीं (४) इस के विरुद्ध जब कि मनुस्मृति अध्याय २

श्लोक १२१, १२२, १२३, १२४, १२५ में अभिवादन प्रत्यभिवादन की आज्ञा दी है (५) जब कि हिन्दु साहित्य में शिष्ट परम्परा में कहीं पर भी दोनों तरफसे नमस्ते किसी ने न की (६) जब कि स्वामी दयानन्द ने न किसी को कभी नमस्ते की और न चिट्ठी में लिखी (७) जब कि "प्रत्यभिवादे शूद्रे ८।२।८२" आदि आदि व्याकरण के सूत्र अभिवादन प्रत्यभिवादन करना कह रहे हैं (८) जब कि व्याकरण में छन्द को छोड़कर गद्य में "तुभ्यं" के स्थान में "ते" आदेश हो ही नहीं सकता जब कि "नमस्ते" शब्द ही नहीं बन सकता (९) जब कि नमस्ते करने पर अपने पुरुषाओं का अनादर होता है उन को एक वचन देकर उन को "तू" तड़ाक कहना है जब कि मनु ने इस के ऊपर प्रायश्चित्त लिखा है (१०) जब कि स्वामी दयानन्दजी ने संस्कार विधि में उपनयन के समय में "अभिवादन प्रत्यभिवादन" करना ही लिखा यदि इतने लेख पर पानी फेर इस का कुछ भी उत्तर न दे पं० तुलसीराम नमस्ते को शिष्ट परम्परा लिखें तो क्या कोई उन की लेखनी को पकड़ सकता है यह तो वही बात हुई कि हम ने किसी की भी न सुनी जो हमारे मन में आया वही कह दिया यदि किसी आर्यसमाजी को अपने धर्म के सत्य होने का अभिमान हो तो फिर वह "नमस्ते" को शिष्ट परम्परा से सिद्ध करे और यों लिखने से क्या होता है कलम अपनी दवात अपनी कागज अपना जो चाहे सो लिखो किन्तु हम यह दावे से कहते हैं कि नमस्ते शिष्ट परम्परा नहीं किन्तु चिन्ह है जिस को दावा हो वह लेखनी उठावे ।

इसके अलावा पं० ज्वालाप्रसादजी ने "परमात्मा जयति" चिन्ह दिखला तथा ब्रिटिश गवर्नमेंट का शेर का चिन्ह दिखलाया इस का क्या उत्तर दिया कुछ नहीं इस को तो हड़प्पही कर गये इस के अलावा अब जो आर्यसमाजी उत्सवों पर अपने अपने मस्तक पर पीतल का ओ३म् लगाते हैं क्या यह भी शिष्ट परम्परा है यह आर्यसमाजी होने का चिन्ह है आप चिन्हों से बचकर जावोगे कहां घबराइये मत चिन्ह आप रखते हैं ।

आगे चलकर पं० तुलसीरामजी लिखते हैं कि स्वामीजी पापनाशक विश्वास का खण्डन करते हैं इस के उत्तर में प्रथम हम पं० तुलसीराम से यह पूछते हैं कि आर्यसमाजी जो मस्तकों के ऊपर "ओ३म्" लगाते हैं इस से पाप नाश होता है या नहीं यदि कहो कि होता है तो फिर क्या ईश्वर ने यह इकरारनामा लिख दिया है

कि आर्यसमाजी जो "ओ३म्" का चिन्ह लगावें उस से पाप नाश हो किन्तु सनातन धर्मी जो चन्दन लगावें उस से पाप का नाश न हो यदि इसके उत्तर में पं० तुलसीराम कहें कि पाप का नाश तो नहीं होता तो क्या यह "ओ३म्" केवल दिखलाने मात्र को ही मानते हैं क्या "ओ३म्" लगाना भी समाजियों ने फैशन में दाखिल कर लिया है अच्छा फैशन बनाया वेद के बीजभूत ओंकार की मिट्टी ख्चार करके छोड़ी। वर्तमान आर्यसमाज तो पाप के विषय में चू नहीं कर सकती क्योंकि इन के मत में तो आध पाव घी लेकर जहां चार मन्त्र बोलकर अग्नि में घी डाला कि फौरन भङ्गी चमार ईसाई मुसलमान शर्मा बन गया जिस पाप से उस का जन्म इन जातियों में हुआ है उस पाप का नाश होगया और वह मनुष्य आर्यसमाज का महात्मा गुरु ऋषि होगया जिन वेद मन्त्रों में इतने पाप नाश करने की शक्ति हो यदि उन्हीं वेद मन्त्रों से चन्दन लगाया जावे तो पाप का नाश क्यों न होगा इस का उत्तर देना प्रतिनिधि का फर्ज है "नौ सौ चूहे खाय तिलैया हज्ज को चली" जिन वेद मन्त्रों के जोर से मुसलमान आदि को ब्राह्मण बना लिया जाता है अब समाज का क्या मुंह है कि उन्हीं वेद मन्त्रों की आज्ञा से लगे चन्दन को पापनाशक होने का निषेध कर ने यदि पं० तुलसीराम यह कहें कि हम तो मुसलमान आदिकों की शुद्धि ही नहीं मानते और न स्वामी दयानन्द ने ही मानी है इस के ऊपर हम यही कहेंगे कि "एकै घर में दो मता तो कुशल कहां से होय" आप पहिले अपने घर का तो निश्चय करिये कि शुद्धि वैदिक है या अवैदिक जब आप अपने घर को एक नहीं कर सकते जब कि आप का उपदेश समाज ही नहीं मानती फिर आप का और स्वामी दयानन्द का क्या मुंह है कि दूसरों की आलोचना करें और यदि हम यही मान लें कि शुद्धि गलत सोलह आने वेद विरुद्ध है और आज कल के अंगरेजी वाले सबू जबर्दस्ती आर्यसमाजी बनते हैं और यह वेद को नहीं मानने बल्कि वेद का बहाना लेकर धर्म का नाश करते हैं इन का जो नाम आर्यसमाज की मंम्वरी में लिखा गया यह समाजों की भूल है और पं० तुलसीराम तथा दयानन्द का ही लेख सत्य है इस कोटी में हमारा यह उत्तर है कि स्वामी दयानन्द के मत में तो ईश्वर के नाम का जप करने से भी पाप दूर नहीं होता चन्दन लगाने की तो बात ही क्या है स्वामीजी के मत में तो खण्डन करने और दूसरों को गालियां सुनाने से पाप नाश होता है।

अब हम यह दिखलाना चाहते हैं कि चन्दन लगाने से पाप दूर होते हैं जो काम विधि से किया जाता है वही ठीक फल देता है विधि में व्यतिक्रम या तार-

तम्यता अथवा अंग भंग होने पर उस कार्य की सिद्धि नहीं होती कि जिस कार्य सिद्धि के लिये अनुष्ठानादि किया जाता है इस को स्वतः वेद ही कहता है प्रत्यक्ष में यही देखने में आता है । उपासना में देवता का शेष चन्दन अपने शिर पर धारण करना यह विधि है यदि चन्दन न लगाया जावे तो ऐसी दशा में विद्वच्चनुसार अनुष्ठान नहीं होता अतएव चन्दन लगाना आवश्यकीय है क्योंकि यह उपासना विधि का अंग है उपासना का फल यह है कि पाप नाश होकर ईश्वर के दर्शनों का होना तत्पश्चात् मोक्ष की प्राप्ति होनी इस को वेद इसप्रकार कहता है—

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुनाश्रुतेन ।

यमेवैष बृणुतेतेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विणुते तनुः स्वाम् १

मुण्ड० उप० मुण्ड० ३ मन्त्र० ३

अर्थ—आत्मा बहुत बकवादी होने से नहीं मिलता और बुद्धिवान् तथा वेद वेत्ता होने से भी नहीं मिलता जो पुरुष ईश्वर की उपासना करता है वही आत्मा को पाता है और उसी को परमात्मा अपने शरीर के दर्शन देता है ।

दर्शन करने के पश्चात् क्या होता है इस को वेद यों बतलाता है—

भिद्यते हृदयग्रन्थी श्लिन्दते सर्वसंशयाः ।

क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे ॥ २ ॥

मुण्ड० उप० मुण्ड० २ मन्त्र ८

अर्थ—जिससमय परावर आत्मा (ब्रह्म) दर्शन देता है उस समय हृदय की ग्रन्थी (गांठ) खुल जाती है समस्त संशय मिट जाते हैं और समस्त कर्मों का नाश हो जाता है ।

अब यहाँपर आर्यसमाजी क्या उत्तर देते हैं वह देखनी है और चन्दनसे पाप नष्ट होते हैं इस के ऊपर कुछ अधिक लिखना भी नहीं किन्तु इतना विचार अवश्य करना है कि पं० तुलसीराम जान वृत्तकर वेद पर हड़ताल लगाकर स्वामी दयानन्द के मिथ्या लेख की पुष्टि क्यों करते हैं करें पं० तुलसीरामजी के लेख से दयानन्द के लेख की पुष्टि नहीं होती किन्तु पं० तुलसीराम का पूर्ण पक्षपाती होना सिद्ध होता है ।

पं० तुलसीरामजी लिखते हैं कि "और वेद विरोधी सम्प्रदायों के चिन्ह

धारण करना भी अच्छा नहीं" आर्यसमाज को छोड़कर और कोई सम्प्रदाय ही वेद विरोधी नहीं। लिख देने से कुछ नहीं होता सबूत दीजिये। शैव वैष्णव आदि में कौन वेद विरोधी हैं इस का सबूत न तो पं० तुलसीराम दे सके न कोई आर्यसमाजी आगे को दे सकता है। इसके ऊपर तो समाज को शिर नीचाही रखना पड़ेगा। यदि कोई आर्यसमाजी यह कहे कि जब ये सम्प्रदाय वेद विरोधी ही नहीं तो पं० तुलसीराम ने मिथ्या लिखा क्यों? इसके ऊपर हम बड़े जोरके साथ कहेंगे कि पूर्वोक्त पण्डितजी ने सत्य लेख कौनसा लिखा। दयानन्दकी झूठी बातों के अनुकूल वेदशास्त्रको बनाना क्या आर्यसमाज इस को सत्य मानती है दूसरे यह सत्य के कारण नहीं किन्तु देशोन्नति के लिए लिखा है कि जो मनुष्य हमारे लेख को देखेगा वह सम्प्रदायों को वेद विरोधी अवश्य कहेगा जिसको कहेगा उसको क्रोध आवेगा मार पीट होगी बस यही देशोन्नति है। आर्यसमाज का मुख्य सिद्धान्त यही कि भारतवर्ष के एक एक मनुष्य में द्वेष भाव करवा दिया जावे और आर्यसमाज इसीको देशोन्नति समझती है। ज़रा आर्यसमाज की देशोन्नति के ऊपर भी विचार करें। यदि कोई समाजी यह सिद्ध कर सकता हो कि अमुक सम्प्रदाय वेद विरोधी है तो वह द्वेष को दूर फेंक कर प्रकट करे कि अमुक अमुक सम्प्रदाय वेद विरोधी हैं।

हमने ऊपर यह लिखा है कि आर्यसमाज वेद विरोधी है उसका हम प्रमाण देते हैं देखिये (१) वेदों में अश्वमेधादि यज्ञों का वर्णन है समाज ने उनको निकाल कर वेदों के अमेरिकन अर्थ कर लिए (२) ग्यारह सौ इकतीस शाखाओं में से केवल चार शाखाओं को प्रमाण माना (३) उपनिषद् और ब्राह्मण जो वेद हैं उनको लिखा कि वेद ही नहीं (४) वेद स्त्री को पातिव्रत धर्म की आज्ञा देता है किन्तु आर्यसमाज उनको विधवा विवाह और ग्यारह पति व्याज में सिखलाता है (५) वेद ने वर्ण जन्म से माना आर्यसमाज विद्या से अदलाबदल करता है (६) वेद शूद्र और स्त्रियों को वेद पढ़ने का निषेध करता है आर्यसमाज इसका द्वेषी है (७) वेद में जगह जगह पर अवतारों का वर्णन है आर्यसमाज इनको मानता नहीं (८) वेदमें मूर्तिपूजन लिखा है समाज इसका खण्डन करता है (९) वेद में मृतक पितरों का आश्रय है आर्यसमाज इसको गपोड़ा बतलाता है इत्यादि सैकड़ों प्रमाण दिये जा सकते हैं। जो आर्यसमाज सम्प्रदायों को वेद विरोधी साबित करता है वास्तव में आर्यसमाज ही वेद विरोधी है और पं० तुलसीराम उसीमें जाकर फँसे इनका भी वही हाल है कि "सुदरा फज़ीहत दीगरा नसीहत" आप तो वेद विरोधी पार्टी के उपदेशक बनै और दूसरों को नसी-

हृत करें। पं०जी सम्प्रदायों का वेद विरोधी होना त्रिकालमें भी सिद्ध नहीं होसकता और यों लिखने को आपके हाथ में कलम है चाहै जो लिख दें।

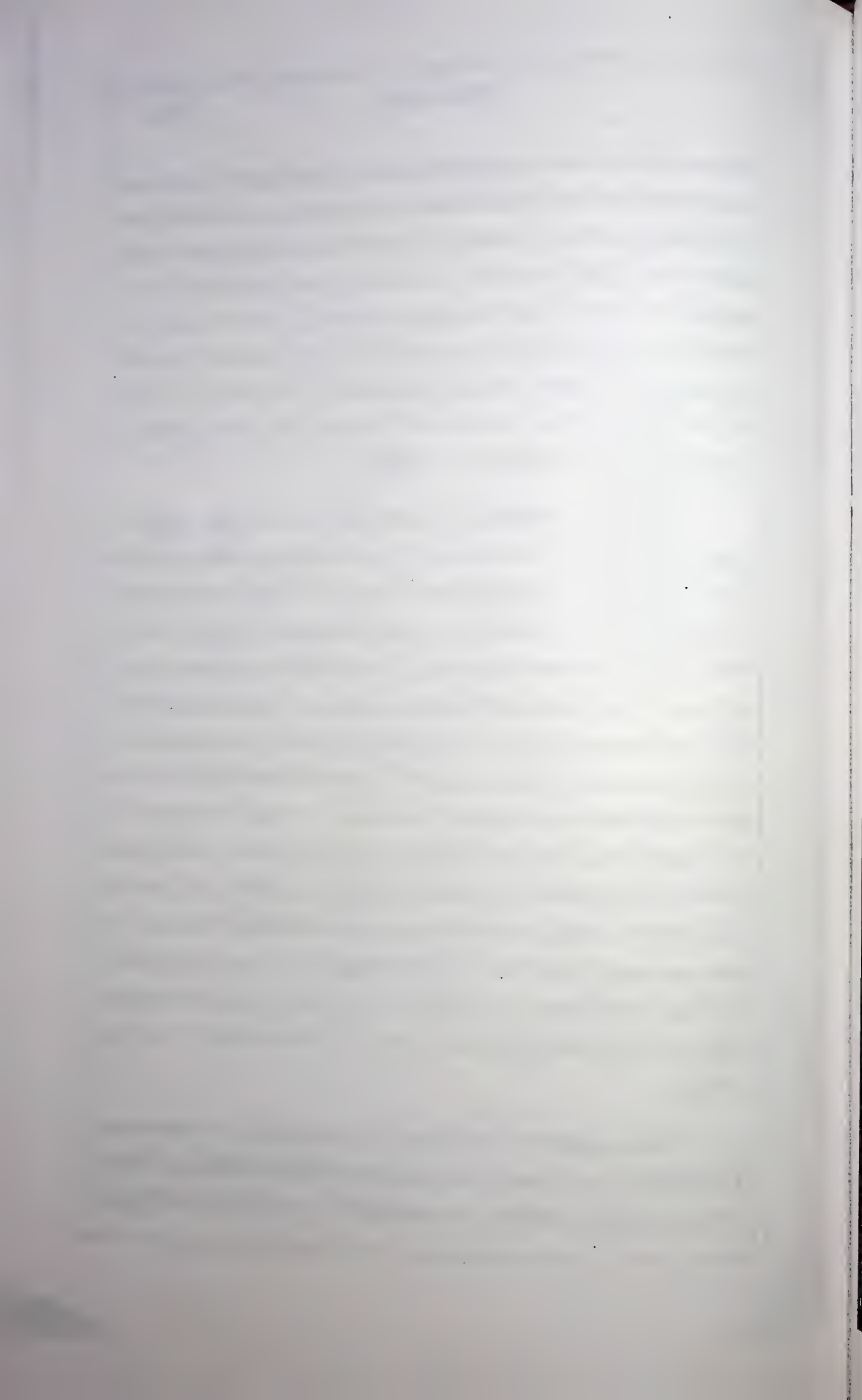
पं० तुलसीरामजी लिखते हैं कि पं० ज्वालाप्रसादजी ने जो चन्दन के गुण बतलाए वे लेपन और काथादि में हैं उनसे कौन इनकार करता है ठीक है पं० तुलसीराम की समझ में चन्दन को मस्तक पर रख कर या तो सड़ाया जाता है नहीं तो दूध गर्म किया जाता होगा। बातें न बनाइये यदि लेपन में गुण है तो मस्तक पर चन्दन का लेप ही तो किया जाता है जिससे लाभ पहुंचे उसको क्यों छोड़ दें स्वामी दयानन्द मना करते हैं केवल इसलिये ? गुण का तो अच्छा उत्तर दिया समाजियों को समझना चाहिए कि चन्दन मस्तक पर गुण करता है या नहीं।

इसके आगे पं० तुलसीराम लिखते हैं कि स्वामीजी चन्दन केशर आदि लगाते थे और आर्य लोग भी लगाते हैं उनकी बुद्धि शुद्ध है। जयरामाकृष्ण की। जिस चन्दन लगाने के खण्डन में स्वामी दयानन्द और पं० तुलसीराम की लेखनी उठी उसी को यह सब लगाते हैं यदि ऐसा है तो फिर हमको क्यों मना करते हो ? जिस चन्दन से तुम्हारी बुद्धियां पवित्र होगई वही हमको बुरा क्यों इसका क्या उत्तर है ? हमको चन्दन लगाने को मना करना और आर्यसमाजी लगावें तो उनकी बुद्धियां पवित्र होजावें यह क्या है ? यह खुलमखुला पक्षपात है। चाहे आर्यसमाजी दिन में दो दफा चन्दन लगाते हों और चाहे स्वामी दयानन्द दिन में २४ बार समस्त शरीर में चन्दन लगाते हों किंतु बुद्धि दोनों की शुद्ध नहीं ? आप स्वामी दयानन्दका उदाहरण इसप्रकार समझ सकते हैं कि सत्यार्थप्रकाश में अवतार का खण्डन लिखा और यजुर्वेद अध्याय ५ मन्त्र ६ के भाष्य में ईश्वर को "नाबालिग" बच्चा लिख दिया। सत्यार्थप्रकाश में मूर्ति पूजा का खण्डन और सन्ध्या में ईश्वर की मानसिक परिक्रमा लिख दी जो बिना मूर्ति माने हो ही नहीं सकती। मन्तव्य मन्तव्य में जीव, ईश्वर प्रकृति नित्य माने और समाज के प्रथम नियम में प्रकृति जीव का कर्ता ईश्वर बना दिया जिसका बनाया सत्यार्थप्रकाश आज तक शुद्ध न हो सका ग्यारह कलेवर बदले फिर भी अशुद्ध। इन बातों को देखकर हम कह सकते हैं कि शुद्ध की तो बात ही दूसरी ऐसा तो मामूली बुद्धि वाला भी नहीं लिख सकता इससे तो मालूम होता है कि पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र की बतलाई बुद्धि की दशा ठीक है यदि कोई आर्यसमाजी कहे कि न सही स्वामी दयानन्द की बुद्धि शुद्ध समाजियों की बुद्धि ठीक पवित्र

होगई यह भी बात गलत । जिस दिन समाजियों की बुद्धियां पवित्र हो जावेंगी उस दिन खण्डन और गालियों को छोड़ विचार के ऊपर आजावेंगे । यदि समाजियों की बुद्धि पवित्र हो जावे तब तो भारतवर्ष में न कोई किसी को बुरा कहे और न कोई किसी का शत्रु ही रहे । आज यू० पी० में जो बाबू दल तथा पण्डित पार्टी बना कर महाभारत ठान दिया क्या यह पवित्र बुद्धि ही का नमूना है ? इसी वर्ष पञ्जाब प्रतिनिधि के चुनाव पर जो लिखे पढ़े आर्यसमाजियों में गाली गलोज और मार पीट हुई क्या यह पवित्र बुद्धि का ही फल है ऐसी हालतों को देख लाचार हो कर हम को मानना पड़ता है कि पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्र का लेख पत्थर की लकीर है इनकी तो बुद्धि वैसी है जैसी मिश्रजी ने लिखी है ।

इस के आगे पं० तुलसीरामजी लिखते हैं कि “आप के ऊर्ध्व पुण्ड्रादि में चिताभस्म के तिलक का विधान होने से मुर्दे के राख का बुरा प्रभाव आप के शैव अनुयायियों पर पड़ा है इससे वैदिक धर्म के विरोधी बने हैं” मुर्दे की भस्म लगाने का किस वेदादि ग्रन्थ में विधान है पं० तुलसीराम ने बतलाया तो होता । शंकर ने स्वतः तो मुर्देकी भस्म लगाई किन्तु भक्तको शंकरपर मुर्देकी भस्म लगाना यह कहाँ पर लिखा है ? पं० तुलसीराम तो क्या बतलावें संसार भर के आर्यसमाजी ही बतला दें यदि नहीं बतला सकते तो फिर पं० तुलसीराम ने जो इसका विधान बतलाया वह मिथ्या है इतना कहने में क्यों लज्जा आती है । पं० ज्वालाप्रसादजी ने जो यह बतलाया था कि यज्ञकी भस्म लगाना वेदमें लिखा है इसका क्या उत्तर दिया ? इसका उत्तर यही तो हुआ कि चाहे हजार बार वेद बतलावें उसको न माना जावेगा क्योंकि स्वामी दयानन्द इसका खण्डन कर गये हैं स्वामी दयानन्द की बुद्धिको वेद कर्ता ईश्वर की बुद्धि नहीं पहुँच सकती । चन्दन और भस्मका लगाना वेद विधि है शिष्ट परम्परा से लगता चला आता है ये दोनों प्रमाण पं० ज्वालाप्रसादजी देखके इनको छोड़ देना और वेद विरुद्ध स्वामी दयानन्द के लेख पर विश्वास कर बैठना यह कोई भी विचारशील मनुष्य से नहीं होसकता यह तो उसी से होगा जो स्वामी दयानन्द के हाथ बिक चुका हो ।

और पं० तुलसीराम जो यह लिखते हैं कि अतएव शैव मत अनुयायी वेद विरोधी होगये । यह भी गलत । क्या सबूत दिया जिससे हम शैवोंको वेद विरोधी मान लें पं० जी सबूत नहीं देखते हुक्म चढ़ाया करते हैं । जब ये वेदोक्त मन्त्रों में प्रति-



पाद्य शिव विष्णु आदि ब्रह्मके रूप की प्रतिमा बनाकर नित्य पूजन करते हैं फिर हम कैसे मान लें कि ये वेद विरोधी हैं ये मृतक पितरों के श्राद्ध भी करते हैं वेद के अमेरिकन अर्थ भी नहीं करते ये तो त्रिकाल में भी वेद विरोधी नहीं इनको वेद विरोधी कहना सोलह आने मिथ्या है ।

वेदधर्म ।

तिमिरभास्कर—

क्या जो कुछ आप ने सत्यार्थप्रकाश में लिखा है उसमें आप ने सब वेद ही के मंत्र लिखे हैं जब आप का मत वेद ही है तौ क्यों चरक सुश्रुत स्मृति उपनिषदादि में घुसते हो वेद ही के मंत्र सब लिखे होते कोई यज्ञ किया होता तौ जानते कि तुम्हारा मत वेद है वेद में आप के यही लिखा होगा कि संन्यासी रुपये जोड़े नफेसे पुस्तकें बेचे दुशाला ओढ़े ।

इति श्रीदयानन्दतिमिरभास्करे सत्यार्थप्रकाशान्तर्गततृतीयसमुल्लासस्य खंडने सम्पूर्णम् ।

भास्करप्रकाश—

वेद अन्य सब ग्रन्थों का मूल है इसलिये स्वामीजी ने वेद और वेद के अविरुद्ध अन्य शास्त्रों के प्रमाण दिये हैं । संन्यासी (स्वामीजी) ने रुपये नहीं जोड़े, न नफे से पुस्तक बेचे किन्तु लोकोपकारार्थ आयों ने सम्मति करके स्वामीजी के द्वारा वैदिक धर्म सम्बन्धी पुस्तकों के प्रचारार्थ वैदिक यन्त्रालय स्थापित किया था और है, स्वामीजी ने उस में का स्वयं कुछ नहीं भोगा । आप ज़रा काशी के स्वामी विशुद्धानन्दजी आदि पर तौ दृष्टि डालिये कि कैसा ठाठ व विभूति है ।

इति तुलसीराम स्वामिविरचिते भास्करप्रकाशे तृतीयसमुल्लास—मण्डनम् ।



मीक्षा—स्वामी दयानन्दजी ने यह लिखा कि हमारा मत वेद है जो कुछ वेद ने करना कहा उस को हम करते हैं और वेद ने जिसको छोड़ना लिखा उसको हम छोड़ते हैं। इसके ऊपर पं० ज्वालाप्रसाद मिश्रजी लिखते हैं कि “क्या जो कुछ आपने सत्यार्थप्रकाश में लिखा है उस में आपने सब वेदही के मन्त्र लिखे हैं जब आप का मत वेदही है तो क्यों चरक सुश्रुत स्मृति उपनिषदादि में घुसने हो वेद ही के मन्त्र सब लिखे होते कोई यह किया होता तो जानते कि तुम्हारा मत वेद है वेद में आप के यही लिखा होगा कि संन्यासी रुपये जोड़े नफे से पुस्तकें बेंच दुशाला ओढ़े” इस के ऊपर पं० तुलसीरामजी लिखते हैं कि “वेद अन्य ग्रन्थों का मूल है” इस लिये स्वामीजी ने वेद और वेद के अविरुद्ध अन्य शास्त्रों के प्रमाण दिये हैं संन्यासी (स्वामीजी) ने रुपये नहीं जोड़े, न नफे से पुस्तक बेंचे किन्तु लोकोपकारार्थ आयों ने सम्मति करके स्वामीजी के द्वारा वैदिक धर्म सम्बन्धी पुस्तकों के प्रचारार्थ वैदिक यन्त्रालय स्थापित किया था और है, स्वामीजी ने उस में का स्वयं कुछ नहीं भोगा। आप जरा काशी के स्वामी विशुद्धानन्दजी आदि पर तो दृष्टि डालिये कि कैसा ठाठ व विभूति है। पं० तुलसीराम का यह लिखना कि वेद सब ग्रन्थों का मूल है इसलिये स्वामी दयानन्द ने वेद और वेद के अविरुद्ध अन्य शास्त्रों के प्रमाण दिये हैं यह लिखना संसार को धोखा देना और दिन दोपहर आंखों में धूल झोकना है। वेदसे विरुद्ध अवि-रुद्ध कैसा यदि ऐसा माना जावे कि जो वेद कहें वही अन्य शास्त्र कहें तो अविरुद्ध यदि वास्तव में यही अविरुद्ध है तो फिर वेदके ही मन्त्र प्रमाण में क्यों नहीं दिये ? यदि स्वामी दयानन्दजी ने न दिये तो फिर पं० तुलसीराम ही देते या कोई और ? समाजी अभी प्रमाण दे। त्रिकाल में भी तो नहीं मिलेंगे। जब कुछ उत्तर न बना तब उन को वेदानुकूल लिख दिया यदि उन्हीं मन्त्रों को हम प्रमाण दें तो वे ही वेदविरुद्ध होजावें। पं० तुलसीराम धर्मका उपदेश करते हैं कि मनुष्यों को चालबाजियां सिख-लाते हैं। प्रथम समुल्लास की द्वितीयावृत्तिकी भूमिकामें जो झूठ बोला यह किस वेद मन्त्र में लिखा है कि झूठ बोलना तथा धोखा देना मनुष्य का धर्म है ? ब्रह्मादि जो ईश्वर के स्वरूप हैं उन्हीं का खण्डन वेद से किया होता मित्रादि देवताओं का खंडन करके इनको ईश्वर के नाम बतलाये इसी में वेद का प्रमाण दिया होता। ओंकार प्रकरणमें जो ओंकार के महत्व मोक्षदानृत्व को नष्ट किया उसी में प्रमाण दिया होता।

द्वितीय समुल्लास में जो बाल शिक्षा लिखी उसमें चाणक्य के ही “माता शत्रु पिता बैरी” प्रमाण से काम चलाया उसमें वेद का प्रमाण देते गर्भाधान की त्याज रात्रियों में ही वेद का प्रमाण लिखते । क्यों योनि संकोचन आपने वेद से ही लिखा क्या सच ही वेद कोकसार से भी चढ़ गया । भूत प्रेत निर्णय में वेदने भूत प्रेतका अस्तित्व और उसको दूर करने का उपाय बतलाया उसको स्वामीदयानन्द या किसी दूसरे आर्य समाजीने मान लिया ? स्वामी दयानन्दजी ने जो जगह जगहपर बुजुर्गों को गालियाँ दीं क्या यह भी वेद की ही आज्ञा थी ? गालियाँ देनेवाले सभ्यता से गिरे मनुष्य को महर्षि की पदवी देना यह किस वेद में लिखा है सूर्यादि ग्रहों को स्वामीजी ने जड़ बतलाया क्या यह भी वेद की ही आज्ञा है ज्योतिषशास्त्र का फल असत्य है यह किस वेद में लिखा मिला ? स्वामी दयानन्द ने शोलेनूर के विज्ञापन में अष्टाध्यायी, महाभाष्य, भृगुसंहिता, महाभारतादि २१ ग्रन्थ ईश्वरकृत लिखे यह भी वेद से ही देखकर लिखे होंगे । मन्त्रों के फल का खण्डन जो स्वामी दयानन्द ने किया यह किस वेद में लिखा है ? गर्भ में ही बच्चे को पढ़ाकर पण्डित बना देना भी चारोंही वेदों में लिखा होगा । पढ़ने पढ़ाने का जो कानून स्वामी दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश में लिखा यह किस वेद के कौन मन्त्र में कहा है इसी का कोई पता चलावे । स्त्री शूद्र को वेद पढ़ने का निषेध रहते भी स्वामी दयानन्द ने दोनों को अधिकार दे दिया क्या इसी का नाम वेदानुकूल है ? “यथेमांवाचं कल्याणीम्” वेद मन्त्र का जान बूझ कर अर्थ लौटना अर्थ का अनर्थ कर मनुष्यों को धोखा देना स्वामी दयानन्द के इस काम को कोई वेद मन्त्र कहने की आज्ञा देता है । क्या गायत्री मन्त्र का जो अर्थ स्वामी दयानन्द ने किया यह वेदानुकूल है ? यदि है तो ऐसा अर्थ किस मन्त्र में लिखा है । स्वामी दयानन्दजी ने जो प्राणायाम करना बतलाया क्या इस में भी कोई वेद मन्त्र मिलता है ? यदि मिलता है तो मन्त्र दिखलाओ । आचमन से कफ निवृत्ति किस वेद में लिखी है ? क्या जैसा मन से हो वैसा ही बोले वेद में स्वाहा शब्द का अर्थ यही है ? हवन से वायु शुद्ध होना किस वेद में लिखा है ? यज्ञपात्र जो दयानन्द ने फर्जी बनवाये क्या कोई आर्यसमाजी उनका वेद में दिखला सकता है ? गुरुकुल किस वेद में लिखा है यदि नहीं लिखा तो इस विषय में पुराण को स्वतः प्रमाण क्यों माना ? गुरुकुल का अर्थ पाठशाला किस वेद में लिखा है इस का ही कोई पता चलावे । वेद के सृष्टिक्रम पर हड़ताल लगाकर जो स्वामी दयानन्द ने वेद विरोधी मनमाना सृष्टिक्रम लिखा क्या इसी का नाम तो वेदानुकूल नहीं ? पाठन पाठन विधि जो स्वामी

दयानन्द ने लिखी यह किस वेद में लिखी है ? स्वामी दयानन्द ने सिद्धान्तकौमुदी आदि पुस्तकों को जाल ग्रन्थ लिखा यह किस वेद में मिला ? जिन पुराणों के महत्त्व को वेद गान कर रहे हैं उनकी निन्दा लिखना भी वेद का मानना कहा जा सकता है ? जिन देवताओं का आह्वान यज्ञों में होता है उनका खण्डन करना किस वेद में लिखा है ? तिलक का खण्डन जो स्वामी दयानन्द ने लिखा वह किस वेद के किस मन्त्र में मिला ? स्वामीदयानन्द ने प्रथम, द्वितीय, तृतीय समुल्लास में जितने विषय लिखे एक में भी वेद का एक मन्त्र न लिखा फिर वेदानुकूल कैसा ? वेद के नाम से मनुष्यों को नास्तिक बनाना यह कहाँ तक छिपा रहेगा और इस वेदानुकूल और वेद विरुद्ध की चालवाजी को अब कहाँ तक छिपाओगे अब सब जान गये कि जिस प्रमाण को आर्यसमाज पेश करता है वह वेदानुकूल हो जाता है और जिस प्रमाण को सनातन धर्मी दे वह वेद विरुद्ध हो जाता है इससे साफ साबित होता है कि आर्य समाज नास्तिक पार्टी है वास्तव में वह किसी पुस्तक को भी प्रमाण नहीं मानती किन्तु चालाकियों से काम चलाती है। वेदानुकूल और वेद विरुद्ध के ऊपर पं० राम-सहाय बाजपेयी भजनोपदेशक कालपी ने एक भजन में लिखा है कि “धसने व फौरन निकलने की बाबा ने कुंजी बताई है” । पं० तुलसीराम अब बतलावें कि वेद को छोड़ कर चरकादि के प्रमाण क्यों दिये ? क्या उत्तर है ? कुछ नहीं । सर्वदा के लिए मौनव्रत की उपासना करनी होगी ।

पं० ज्वालाप्रसाद मिश्रजी ने लिखा है स्वामीजी ने औरों को धर्म बतलाया किन्तु आपने तो रुपये जोड़े दुशाला ओढ़े यह सन्यासी के लिये कहाँ लिखा है ? इसके ऊपर पं० तुलसीराम जब कुछ उत्तर न दे सके तब लिखा कि यह काम लोकोपकारार्थ किया स्वामीजी ने कुछ नहीं भोगा वैदिक यन्त्रालय स्थापित किया आप स्वामी विशुद्धानन्द की तरफ तो देखिए यह भी कोई उत्तर है कि विशुद्धानन्द को देखिये यदि विशुद्धानन्दजी कोई बुरा काम करें तो फिर स्वामी दयानन्द को भी कोई निषेध नहीं ? जो जो काम स्वामी दयानन्द ने किये वे स्वामी विशुद्धानन्द ने नहीं किये स्वामी दयानन्द ने चन्दा मांगा उससे पुस्तकें छपाई फिर उनका व्यापार किया उन को मोल बेचा बुकसेलर बने उसमें मनमाना मुनाफा लिया । सन्यासी को दान देना चाहिये इस विषय का मनु के नाम से श्लोक भी गढ़ा कि रुपया मिलते ही कोट बूट धारण किये एक हुक्का खरीदा गया उसमें चांदी की मुहनाल लगी जब वह दिल्ली में खो गई तब नौकर को सैकड़ों गालियों की दक्षिणा मिली । भंग महारानी की भी



कृपा होने लगी कई एक सज्जन संन्यासी समझकर आटा दाल आदि (सीधा) दे जाया करते थे दयानन्दजी उसको बेचकर दाम गांठ में बांधते थे । स्वामीजी बढिया से बढिया भोजन करते थे डासन के वूट और दुशाला आदि उत्तम कपड़े पहिन्ते थे । पं० तुलसीराम की दृष्टि में भोग ही नहीं भोगते थे । वाहरे पक्षपात तू जो चाहे वह कहलावे । इस के अलावा स्वामीजी ने जान बूझकर पुस्तकों पर झूठे कलंक लगाये जैसा कि श्रीमद्भागवत पर "हिरण्याक्ष का पृथिवी को चटाई बना कर ले जाना" "हिरण्यकश्यपु के द्वारा स्तम्भ का गर्भ होना और प्रह्लाद का उस पर चींटी चलते देखना" आदि आदि "वेद व्यासजी को कसाई लिखना" और "हिन्दुओं के यहां का भोजन न करना" क्योंकि मूर्ति पूजते थे इन को छोड़कर मुसलमानों के यहां का भोजन करना जो गोवध करते थे आर्यसमाजियों को मनुष्य मांस खाने का उपदेश देना यह संसार को उपदेश किया या उपकार किया जो आज तक सत्यार्थप्रकाश में लिखा है समाजी इन सब को जान गये कि वास्तव में ये सब विषय स्वामीजी ने झूठ लिखे इतना समझ कर भी सत्यार्थप्रकाश से नहीं निकालते क्योंकि यदि ये विषय निकल जावें तो फिर संसार को धोखा देना जो समाज का मुख्य काम है उसमें हानि पहुंचेगी अपना व्रत पालन के लिये उसको रख छोड़ा है । इसके अलावा आर्यसमाजियों को बैल आदि नर पशु और गौ का मारना लिखा फिर वेद के अमेरिकन अर्थ गढे इत्यादि काम तो स्वामी विशुद्धानन्दजी ने नहीं किए और न इतने भोगही भोगे कि जितने स्वामी दयानन्दजी ने भोगे और जितने पाप प्रचारक काम किये इतने काम तो विशुद्धानन्द तो क्या किसी ने भी नहीं किये । बस सिद्ध होगया कि आर्यसमाज वेदानुकूल धर्म नहीं है और जो कुछ यह धर्म धर्म चिन्ताते हैं स्वतः उसके अनुकूल करना भी नहीं चाहते । पाठकवर्ग स्वतः विचार सकते हैं कि पं० तुलसीराम धर्म की रक्षा के लिये लिख रहे हैं या पक्षपात कर रहे हैं ।

इति श्रीकालूरामविरचिते धर्मप्रकाशे तृतीयसमुद्भासः ।

The first of these is the fact that the
the first of these is the fact that the
the first of these is the fact that the
the first of these is the fact that the
the first of these is the fact that the
the first of these is the fact that the
the first of these is the fact that the
the first of these is the fact that the
the first of these is the fact that the
the first of these is the fact that the

The second of these is the fact that the
the second of these is the fact that the
the second of these is the fact that the
the second of these is the fact that the
the second of these is the fact that the
the second of these is the fact that the
the second of these is the fact that the
the second of these is the fact that the
the second of these is the fact that the
the second of these is the fact that the

The third of these is the fact that the
the third of these is the fact that the
the third of these is the fact that the
the third of these is the fact that the
the third of these is the fact that the
the third of these is the fact that the
the third of these is the fact that the
the third of these is the fact that the
the third of these is the fact that the
the third of these is the fact that the

THE END OF THE WORLD

THE END OF THE WORLD

THE END OF THE WORLD

≡ ब्रह्मप्रेस इटावा की सर्वोत्तम पुस्तकें ≡

आर्यमतनिराकरण प्रश्नावली ।

सनातनधर्मी सज्जनों को विपक्षियों से शास्त्रार्थ और शंकासमाधान करने के लिये जैसी पुस्तक की आवश्यकता है यह वैसीही पुस्तक है इसका प्रथम संस्करण छपते ही छूमन्तर होगया था, मांगों की भरमार देखकर इस का द्वितीय संस्करण छपाना पड़ा अब इस में प्रश्नों की संख्या भी अधिक बढ़ा दी गई है । प्रश्नों की संख्या अब ४०० सौ से ऊपर पहुंच गई है इस पुस्तक को हाथ में लेकर आप आर्य-समाजियों के कदर से कदर पण्डित को बात की बात में पछाड़ सकते हैं, इसमें जो प्रश्न छापे गये हैं उन का जवाब आर्यसमाजी एक जन्म में तो क्या सात जन्मों में भी नहीं दे सकते मूल्य सिर्फ ॥

❧ दयानन्दमतविद्रावण ❧

यह पुस्तक भी आर्यसमाजियों के मुख्य ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश के खण्डन में बनाई गई है पुस्तक की भाषा बड़ी रोचक और दिलचस्प है इसमें जिस खूबसूरती के साथ थोड़े ही में सत्यार्थप्रकाश की छीछालेदर की गई है वह देखने योग्य है पुस्तक देवरी जिला सागर निवासी लाला भवानीप्रसाद नम्बरदार की बनाई हुई है । मूल्य सिर्फ ॥ आना है ।

लीजिये ! लीजिये !! शीघ्रता कीजिये !!!

→ षोडशसंस्कारविधि ←

जिस को देखने के लिये सहस्रों सनातनधर्मी सज्जन वर्षों से प्रतीक्षा कर रहे थे वही पुस्तक षोडशसंस्कारविधि छपकर तैयार है । इस में १६ संस्कारों का साङ्गोपाङ्ग विधान है, ऊपर मूल संस्कृत में विधान लिखकर नीचे भाषा टीका दी गई है जगत्प्रसिद्ध पं० भीमसेन शर्मा सम्पादक ब्राह्मण सर्वस्व ने इस पुस्तक की रचना स्वयं की है इसी से आप समझ सकते हैं कि पुस्तक कैसी हुई होगी, सोलहों संस्कारों के एकत्र विधान की कोई पुस्तक अभी तक कहीं नहीं छपी थी इस पुस्तक से यह अभाव मिट गया, इससे साधारण पढ़े लिखे भी प्रत्येक संस्कार को विधि पूर्वक करा सकते हैं प्रत्येक द्विजाति को इस पुस्तक की एक प्रति मंगानी चाहिये । मूल्य २॥ है । शीघ्रता कीजिये थोड़ी ही पुस्तकें छपी हैं ।

पता—मैनेजर, ब्रह्मप्रेस, इटावा ।

श्री:

➤ मूर्तिपूजा ➤

इस पुस्तक में ६ अध्याय हैं। प्रथम अध्याय में—यह दिखलाया है कि अफ्रिका, अमेरिका, यूरोप, एशिया, आदि २ भूमण्डल के समस्त देशों में मूर्तिपूजन पूर्व में होता रहा था और अब भी होता है। जिस देश में जिस मूर्ति का पूजन होता है उसका स्वरूप व नाम भी बतलाया है। यह भी लिखा है कि स्वामी दयानन्द ने जिन वेद मन्त्रों से मूर्तिपूजा का खण्डन किया है उनका यह अर्थ त्रिकाल में भी नहीं हो सकता खण्डनात्मक अर्थ फ़र्जी और मिथ्या है। “नतस्य प्रतिमा अस्ति” इस निवेद्यात्मक मन्त्र से ही यज्ञ में मूर्ति स्थापित होती है। मूर्तिपूजन समस्त युगों में होता रहा है। द्वितीय अध्याय में—वेद से ईश्वर के अङ्गों का वर्णन, मूर्ति पूजन करने की आज्ञा, और उस का फल, मनुस्मृति, अष्टाध्यायी, महाभाष्य से भी मूर्तिपूजन की सिद्धि दिखलाई है। तृतीयाध्याय में—स्वामी दयानन्द लिखित मूर्तिपूजन दिखलाया है। सन्ध्या में ईश्वर की मानसिक परिक्रमा, आर्याभिविनय की रीति से ईश्वर को खीर खिलाना और दवाई पिलाना, पञ्चमहायज्ञविधि के अनुसार बृश्चों और भद्रकाली को भोग लगाना, “घृतेन सीता मधुना” इस मन्त्र से खेत के पहेटा (पटेला) का पूजन करना, संस्कारविधि के अनुसार ओखली मूसल को नित्य भोग धरना, संस्कारविधि के लेख से कुश और नाई के छुरे का पूजन करना, दिखलाया गया है अर्थात् यह सिद्ध किया है कि समाजी लोग ईश्वर की प्रतिमा का तो निषेध करते हैं किन्तु स्वामी दयानन्द के लेखानुसार ऊपर लिखी मूर्तियों को पूजते हैं। चतुर्थ अध्याय में—यज्ञ में जिन मूर्तियों का पूजन होता है वेद के मन्त्रों के द्वारा विस्तार से दिखलाया है। पञ्चम अध्याय में स्वामी दयानन्द और पं० तुलसीराम तथा अन्य अन्य समाजियों की तकों के मुंह-तोड़ उत्तर दिये गये हैं जिन को सुनकर आर्यसमाजियों के मुंह बंद हो जाते हैं। षष्ठाध्याय में—आज कल के होने वाले मूर्तिपूजन के व्याख्यान लिखे हैं। मासिकपत्रिका सरस्वती प्रयाग, ब्राह्मण सर्वस्व मासिकपत्र इटावा, सनातनधर्म पताका मुरादाबाद, ब्रह्मचारी मासिकपत्र हरिद्वार आदि ने इसकी बहुत प्रशंसा छापी है। यह अद्वितीय ग्रन्थ है इस पुस्तक के निर्माता पं० कालूराम शास्त्री हैं और मूल्य ॥॥ है।

कामताप्रसाद दीक्षित,

अमरौधा, (कानपुर)।

श्रीः ५

उपहार

स्वामी दयानन्द कृत असली सत्यार्थप्रकाश सन १८७५ में छपा था। इस सत्यार्थप्रकाश में मांस से हवन करना, मृतक पितरों का श्राद्ध, इस श्राद्ध में मांस का पिण्ड देना, बैल आदि पशुओं को यज्ञ में मारना, तथा गोवध करना स्वामी दयानन्दने आर्यसमाजियों के लिए वेद धर्म बतलाया है। इस सत्यार्थप्रकाश को देखकर आर्यसमाजी घबराते हैं। इस सत्यार्थप्रकाश के जिस विषय को सनातनधर्मी पब्लिक को सुनाते हैं आर्यसमाजी फौरन कह देते हैं कि झूठे कलंक लगाते हैं। स्वामी दयानन्दजी जो इतने बड़े विद्वान थे, जो महर्षि थे, क्या वे ऐसी अयोग्य बातें लिखेंगे यह कोई मान सकता है इत्यादि बातें बनाकर कहने वाले को मिथ्यावादी बनाना चाहते हैं। बड़े दिन की तारीख सन १८९३ शहर मेरठ की सनातन-धर्म-सभा के उत्सव पर यही मामला हुआ। मोहनलाल आर्यसमाजी ने कहा कि यदि कोई मनुष्य स्वामी दयानन्दकृत प्रथमावृत्ति सत्यार्थप्रकाश में गोवध करना बतला दे तो मैं आर्य समाज छोड़ दूँ नहीं तो पं० रलियारामजी अमृतसर सनातन धर्म छोड़ें दोनों के इकरारनामे हुए किन्तु मेरठ में वह सत्यार्थप्रकाश न मिला तब मैंने पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्र से चिट्ठी लिखवाई उनके घरसे सत्यार्थप्रकाश आया वह दिखलाया गया। मोहनलाल ने आर्यसमाज में इस्तीफा दे दिया। इन दिक्कतों को दूर करने के लिये हमने "प्रथमावृत्ति सत्यार्थप्रकाश मर्दन" ग्रन्थ लिखा है। इस ग्रन्थ में मोटे टाइपमें समस्त सत्यार्थप्रकाश दिया है फिर छोटे टाइप में इसका खण्डन छपा है। मूल्य इस पुस्तक का ३) और डाक महसूल पृथक् है। किन्तु धर्मप्रकाश के ग्राहकों से बजाय ३) के एक रुपया लिया जावेगा डाक महसूल यहां भी अलग है। यह उपहार उन्हीं सज्जनों को दिया जावेगा जिन के ३) पेशगी आगये हैं। लेने वाले सज्जनों को आडर जल्द भेजना चाहिये जिन सज्जनों का आडर ३० नवम्बर तक नहीं आवेगा उनको हम उपहार न दे सकेंगे।

कामताप्रसाद दीक्षित,

अमरौधा, (कानपुर)।

नोट—हमने ग्राहकों से पूछा है उनकी सम्मति आतेही पुस्तक छपने लगेगी।

धनुर्धर-अर्जुन

—:0:—

यह जीवन-चरित्र हिन्दी के सुलेखक और “भीष्म पितामह” व “नर-शार्दूल अभिमन्यु” आदि के रचयिता श्री ब्रजमोहन झा ने लिखा है और हमने अभी प्रकाशित किया है। भाषा इसकी शुद्ध और बहुत ही सरल है। पुस्तक उपन्यास की शैली में लिखी गई है अतः रोचक भी इतनी है कि एकबार हाथ में लेकर बिना पूरा किए रखने को जी नहीं चाहता। अर्जुन के वीरत्व-पूर्ण कामों को ऐसी ओजस्विनी भाषा में वर्णन किया है कि कायर हृदय भी इसके एकबार पढ़ने से जोश में हिलोरें लेने लगता है। इसके अतिरिक्त हमारे इस केवल एक ही चरित्र के पढ़ने से महाभारत की अधिकांश बातें विदित हो जाती हैं क्योंकि महाभारत में अर्जुन ही का चरित्र सबसे बड़ा है।

वीरता के अतिरिक्त इस नर-व्याघ्र के चरित्रसे साहसिकता, निर्भीकता, जितेन्द्रियता, गुरुभक्ति, भ्रातृस्नेह, व प्रतिष्ठा पालन आदि अनेकानेक विषयों पर समयोपयोगी शतशः शिक्षाप्रद उदाहरण पद पद पर प्राप्त होते हैं।

गीता का सारांश भी इसमें है। श्लोकों के नीचे हिन्दी अनुवाद दिया गया है और विषय को ऐसी सरल रीति से समझाया है कि गीता की शिक्षा का एक चित्र मनुष्य के चित्त पर चित्रित हो जाता है। इस उच्च धर्म शिक्षा के अतिरिक्त सम्पूर्ण पुस्तक के पढ़ने से यह विश्वास हो जाता है कि अपने धर्म पर स्थित रह कर उद्योग करने से मनुष्य सब कुछ कर सकता है अतः मेधा आलसी और अत्यन्त अकर्मण्य पुरुष के मन में भी कर्म करने की इच्छा होने लगती है।

विद्यार्थियों व नवयुवकों का जीवन देश, जाति व भाषा के प्रति हितकर बनाने के लिए तो यह पुस्तक बहुत ही उपयोगी है। अन्य स्त्री पुरुषों के लिए भी समान उपयोगी पाठ्य व उपादेय है। इतना होते हुए भी इस ३०० पृष्ठ की अत्यन्त मनोहर छपी हुई पुस्तक का मूल्य ॥२॥, साधारण जिल्द सहित ॥३॥, कपड़े की सुन्दर जिल्द सहित ॥४॥ है डाकव्यय पृथक्।

मिलने का पता :—

मैनेजर, मरचंट प्रेस, रेलगंज कानपुर।

श्रीः

→ श्राद्ध ←

इस पुस्तक में ४ अध्याय हैं। प्रथमाध्यायमें [क] स्वामी दयानन्दकृत श्राद्ध का लक्षण (तारीफ) डिफिनेशन की अशुद्धता दिखलाई गई है कि इसमें अति व्याप्ति दोष है और इस लक्षण से विवाह, द्विरागमन, गृहनिर्माण, सभा का उत्सव, आदि २ समस्त काम श्राद्ध होजाते हैं [ख] वेद में श्राद्ध मृतक पितरों का ही लिखा है इस विषय को वेद मंत्र देकर विस्तार से लिखा है। द्वितीयाध्यायमें यह दिखाया है कि जीवित पितरों का जो श्राद्ध है यह मृतगदन्त है इसकी पुष्टि में वेदादिका कोई भी प्रमाण आज तक न मिला है और न आगे को मिल सकता है। तृतीयाध्यायमें इस बात का सबूत है कि स्वामी दयानन्दजी मृतक पितरों का ही श्राद्ध तर्पण मानते थे। सन्यासप्रकाश, संस्कारविधि में अब भी मृतकों का ही श्राद्ध तर्पण लिखा है। चतुर्थाध्याय में उग्र शंकाओं का मुंहतोड़ उत्तर दिया गया है कि जो शंका आर्यलमाजी सनातन धर्मियों से किया करते हैं (१) अन्यके कर्म का फल अन्य को कैसे मिल सकता है श्राद्ध करे पुत्र और उसका फल भोगे पिता (२) ब्राह्मणों का पेट क्या लेकर बाक्स है जो इधर डाला और उधर पितरों को मिल गया (३) श्राद्ध का भोजन ब्राह्मणों को ही क्यों खिलाया जावे (४) दश बीस ब्राह्मण जमाकर क्या पितरों का पेट फाड़ना है (५) हमारे पिता तो गया होगए अब हम पूरी कचौरी क्यों खिलावें (६) पितरों को भोजन मिलने की कोई रसीद है। इत्यादि पश्चात् यह दिखलाया है कि श्राद्ध सदा से होता है और मर्यादा पुरुषोत्तम प्रभु रामचन्द्रजी ने अपने पिता दशरथ का श्राद्ध वन में करके यह मर्यादा दिखलाई है कि श्राद्ध अवश्य करना चाहिए और वह मृतक पितरों का ही होता है। इस पुस्तक के रचयिता पं० कालूरामजी शास्त्री हैं और इसका मूल्य ११ है।

वेद व्याख्याता पं० भीमसेन के यहां की "श्राद्धमीमांसा ११" तथा "आर्यमत निराकरण प्रश्नावली ११" वा "दयानन्दमत विश्लेषण ११" भी मौजूद हैं मिलनेका पता—

हनुमानदास ब्रजवल्लभ

पुस्तकालय,

चौक बाजार, कानपुर।

भवदीय—

कामताप्रसाद दीक्षित,

अधरोधा (कानपुर)।

